ॐ

श्रीः

# कादम्बिनी

समीक्षाचक्रवर्ति
स्व. पं. श्रीमधुसूदनशर्म्ममैथिलाः ।

पत्रिका प्रकाशन
मूल्यः रु. 350/-

श्रीः

# कादम्बिनी

स्व० समीक्षाचक्रवर्ती पं० मधुसूदनशर्म्ममैथिलाः ।

॥ श्रीः ॥

जयपुर राजसभाप्रधान, समीक्षाचक्रवर्ती,

स्वर्गीय, विद्वद्वर पण्डित मधुसूदनजी शर्मा ओझा विद्यावाचस्पति

विरचित ।

वृष्टिविद्याबोधक

# कादम्बिनी

हिन्दी भाषानुवाद सहित

पण्डित श्री प्रद्युम्न शर्मा ओझा

ने

सम्पादितकर प्रकाशित किया

मुद्रक—

हरिमोहन प्रिंटिंग प्रेस, पुरानी बस्ती, जयपुर सिटी ।

प्रथमावृत्तिः १००० } विक्रम सं० १९९९

* श्रीः *

# प्राक्कथन

परम पूज्य पिताजी के स्वर्गवास से असह्य शोक सन्तप्त हृदय को धैर्यावलम्बन कराने का एकमात्र उपाय समझ कर अपने परमकर्त्तव्य धर्म के पालन को केवल जीवन का ध्येय मानता हुआ मैं उनके रचित ग्रन्थों के ( जो कि उनका कल्पान्त-स्थायी आत्मीय विकाश है, और अभी पूर्ण-रूप से संसार के समक्ष नहीं आया है ) संकलन तथा संपादन आदि कार्य में तन मन से सेवा के रूप में संलग्न हो गया हूँ।

प्रारम्भ में जब मैंनें उन गहन विषयों को उठाया तो वास्तव में मुझे बारंबार यही प्रतीत होताथा कि मुझ जैसे अकिंचन व्यक्ति का यह साहस सर्वथा अनुपयुक्त हुआ है, और मैं उस असहनीय शोक के साथ २ इस बड़ी चिन्ता में स्तब्धसा होगया कि यह कैसे पार पड़ेगा क्योंकि ग्रन्थों की सम्पन्न कापियां अथवा प्रेस कापियां विभिन्न लेखकों द्वारा लिखवाई गई थीं, उनमें न केवल अशुद्धियां ही थीं प्रत्युत अनेक स्थानों में पंक्ति की पंक्ति और कहीं कहीं तो वाक्यसंदर्भ भी लुप्त थे और क्रोडपत्र ( रफकापी ) इस प्रकार से यत्र-कुत्र तथा सब ग्रंथों के सामूहिक रूप में रखने वालों ने अव्यवस्थित ढंग से रख छोडे थे-और वह भी संपूर्णतः न मिलने से यह एक बड़ा ही दुस्साध्य कार्य मेरे सामने उपस्थित हुआ जिस के कारण ग्रन्थों के प्रकाशन में आवश्यकता से अधिक विलम्ब होना तो स्वाभाविक है । जिनकी प्रतिलिपि नहीं हुई हैं और मूलग्रन्थ का भी कुछ अश उनमें जो सम्पूर्ण अनुपलब्ध हैं उनमें अवश्य ही बडी कठिनाई है ।

अस्तु ! मैं अपने कर्त्तव्य पथपर धैर्य तथा दृढ़ता पूर्वक स्थिर रह कर " कर्मण्येवाधि-कारस्ते माफलेषु कदाचन " के सिद्धान्त पर ही अपना अधिकांश समय इसी कार्य में लगारहाहूँ !

आज कई महीने निरन्तर लगे रहने से ईश्वर की असीम कृपा साथ ही पूज्य पिताजी के आशीर्वाद से " गच्छन् पिपीलको याति योजनानां शतान्यपि " इस उक्ति के अनुसार मैं दो चार ग्रंथों को तैयार कर सकाहूँ जो मुद्रणार्थ विभिन्न प्रेसों में दिये जा चुके हैं।

श्रीमान् जयपुर नरेश ने पूज्य पिताजी के जीवन काल में ही उन के श्रीमद्भगवद्गीता के विज्ञानभाष्य प्रकाशित किये जाने के लिये जो द्रव्य प्रदान किया जिससे उसके दो काण्ड

( रहस्य और मूलकाण्ड ) मुद्रित हो चुके हैं और शेष दो यन्त्रालय में हैं। महाराज की इस उदारता के लिये मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। यह सर्व विदित है कि जयपुर राज्य से हमारा संबन्ध चिरकालीन है उसे पूज्य पिताजी ने भी अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया है। अतः इस विषय में विशेष लिखना व्यर्थ है, और अब भी मैं श्रीमान् जयपुराधीश की छत्र-छाया में ही रहता हूँ। मुझे हार्दिक विश्वास है कि ग्रन्थ प्रकाशन के इस सत्कार्य में श्रीमान् से मुझे पूर्ण सहायता मिलती रहेगी।

मुझे इन ग्रन्थों के प्रकाशन के हेतु आर्थिक सहायता के लिये जो सान्त्वना श्रीमान् अलवरेन्द्र से मिली है उसके लिये मुझे कोई शब्द दृष्टिगोचर नहीं होता जिससे मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर सकूं। मेरे व्यक्तिगत परिचय के अनुसार मुझे यह आशा है कि यद्यपि आप कार्य-क्षेत्र में अभी प्रविष्ट हुए हैं, तथापि आपका विद्या-प्रेम और अन्य सद्गुण आपके सुयश प्रसार में अवश्यमेव सहायक होंगे।

यहाँ यह कथन भी अवसर प्राप्त है कि हमारे मिथिलाधीश्वर श्रीमान् महाराजाधिराज दरभंगा ने ग्रन्थ प्रकाशन समिति के संरक्षक होने का सहर्ष वचन दिया है। श्रीमान तथा श्रीमान् के स्वर्गीय पिताजी का न केवल मुझ से और मेरे पूज्य पिताजी से ही किन्तु आपके पूर्वजों का मेरे अन्य पूर्वजों से भी यथेष्ट सम्बन्ध रहा है और तदनुसार उनने मेरे पूर्वजों की विद्वत्ता का उचित आदर किया है। दरभंगा विद्या का केन्द्र है और उनके सभी पूर्वज प्रायः विद्यानुरागी और विद्वान होते आये हैं इस लिये उनकी गुणग्राहकता के विषय में विशेष लिखना अनावश्यक है, किन्तु इतना कह देना पर्य्याप्त है कि आपने मुझे जिस तरह प्रोत्साहित किया है वह अवश्य ही मेरे लिये अविस्मरणीय है।

इन ग्रन्थों के संपादन तथा प्रकाशन के कार्य में म० म० पं० गिरिधरजी शर्म्मा चतुर्वेदी अध्यक्ष (प्रिंसिपैल) महाराजाज संस्कृत कालेज जयपुर, पं० आद्यादत्तजी ठाकुर एम० ए० काव्यतीर्थ प्रोफेसर लखनौऊ युनीवर्सीटी, जयपुरीय पं० बद्रीनाथजी शास्त्री एम्० ए० रिटायर्ड प्रोफेसर लखनौऊ युनीवर्सीटी, पं० सूर्यनारायणजी आचार्य संस्कृत प्रोफेसर महाराजाज कालेज जयपुर, पं० पुरुषोत्तम जी साहित्याचार्य धर्मशिक्षक व संस्कृत प्रोफेसर मेवोकालेज अजमेर, प० मदनलालजी प्रश्नवर व्याकरणाचार्य रिटायर्ड प्रोफेसर महाराजाज संस्कृत कालेज जयपुर तथा पं० जयचन्द्र झा जी वेद के प्रोफेसर महाराजाज संस्कृत कालेज जयपुर समय समय पर मुझे सत्परामर्श द्वारा पूर्ण प्रोत्साहित करते रहे हैं जिसके लिये इन विद्वज्जनों का मैं बड़ा उपकृत हूँ। साथ ही नन्दकिशोरजी शर्म्मा से जो पूज्य पिताजी के समय से ही मेरे यहाँ के लाईब्रेरियन हैं इन अमुद्रित ग्रन्थों के संकलन में मुझे बड़ी सहायता प्राप्त हुई है।

जो २ ग्रन्थ पूर्व में मुद्रित होचुके हैं उनमें कादम्बिनी जिसकी प्रथमावृत्ति सं० १९७९ वि० में प्रकाशित हुई थी तथा आशौचपंजिका जो पहिले सं० १९७५ वि० में प्रकाशित हुई थी इन दोनों का द्वितीय संस्करण भी अत्यावश्यक होगया है क्योंकि ये प्राय: अधिक उपयोगी हैं और इनके लिये बहुत मांगें भी बराबर आ रही हैं।

यह प्राय: सर्वविदित है कि पूज्य पिताजी यह वैज्ञानिक तत्त्व यद्यपि हिन्दी भाषा में भी भली प्रकार प्रतिपादन कर सकते थे तथापि उनकी संस्कृत में ही हार्दिक अभिरुचि थी इस लिये उन्होंने जो कुछ भी विवेचनायें किई वह संस्कृत भाषा में हैं। जैसा कि उन्होंने यह वैदिक विज्ञान का रिसर्च (Research) किया है, वह यदि हिन्दी में होता तो आज इसकी ख्याति संसार में द्रुतगति से होकर यह विशेष उपयोगिता में आता, परन्तु उनकी संस्कृत में प्रगाढ रुचि के कारण ही ऐसा नहीं होसका। इतने पर भी यद्यपि विषय तो अवश्य बहुत गहन और मार्मिक हैं तथापि संस्कृत भाषा उन्होने बहुत ही सरल रक्खी है। साथही विषयों को आधुनिक रीति से समझाते हुए आवश्यकतानुसार मान चित्र आदि भी देकर यथाशक्य सरल बनाया है जिससे संस्कृत भाषा के जाननेवाले उनकी विवेचना को भली प्रकार समझ सकें।

कुछ वर्ष हुए कादम्बिनी के भाषानुवाद के लिये प्रयाग के अर्थशास्त्राध्यापक श्रीयुत् दयाशंकरजी दुबे, एम.ए., एल.एल. बी., के आग्रह पुरस्सर पूर्ण अनुरोध करने पर पिताजी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। जिसके लिये उक्त दुबेजी ने यहाँ जयपुर के ही काङ्करोपाह्व पं० नवलकिशोरजी गौड को जो उन दिनों हमारे यहाँ ही पूज्य पिताजी के निरीक्षण में उनके रचित ग्रन्थों की प्रेसकापी आदि का उचित रूप से संपादन कराने का कार्य्य करते थे कादम्बिनी के अनुवाद के लिये समय समय पर पिताजी से अनुरोध करते रहने का भार दिया। काङ्करजी ने भी जब जब समय पाया पिताजी से निवेदन करके जितना कुछ वह कहते उसे लिखलिया। इस प्रकार अन्ततोगत्वा कादम्बिनी का हिन्दी अनुवादपूर्ण होगया। इसके अनन्तर इस ग्रन्थ की भूमिका के रूप में वृष्टि का ज्ञातव्य विषय भी पिताजी ने लिखा। श्रीयुत् दुबेजी की इच्छाथी कि वह स्वयं इस ग्रन्थ को छपवावें, परन्तु वह ऐसा न कर सके और इसी कारण से इसका प्रकाशन भी अभी तक नहीं हो पाया, किन्तु यह कहना होगा कि इस हिन्दीअनुवाद के तैयार कराने का श्रेय दुबेजी महोदय को ही है साथही पं० नवलकिशोरजी की भी तत्परता में कमी नहीं।

आज मैं उसी हिन्दी भाषानुवाद सहित कादम्बिनी को सुचारु रूप से संपादित करके पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ, मुझे यह पूर्ण आशा है कि पाठकवृन्द इसकी वृष्टि विषयक विवेचना से पूर्ण लाभ उठायेंगे।

अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि विद्या-प्रेमी संसार मुझे यह हार्दिक शुभाशीर्वाद देवें कि मैं अपने श्रद्धेय पूज्य पिताजी की कृतियों को प्रकाशित कर अपने कर्त्तव्य धर्म्म के पालन में सफलता प्राप्त कर सकूं।

विद्याधर का रास्ता
जयपुर सिटी
( राजपुताना )
ता० १ मार्च सं० १९४१ ई०

पं० प्रद्युम्न शर्म्मा ओझा



वेदविद्यासमुद्धारकस्वर्गीयपण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलाः

• श्रीः •

# समीक्षाचक्रवर्ती स्वर्गीय विद्वद्वर पं० श्री मधुसूदनजी ओझा महामहोपदेशक विद्यावाचस्पति का संक्षिप्त परिचय।

लेखक-म० म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी, प्रधानाध्यक्ष, महाराजाज़ संस्कृत कालेज, जयपुर।

**यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (गीता)**

इस भगवदुक्ति के अनुसार जब जब वैदिक सत्यविद्या अज्ञान धूमसे आवृत होने लगती है और मोह वश जनता का विश्वास हटने लगता है, तब परमेश्वर की प्रेरणा से कोई शक्ति प्रकट होकर सत्य-विद्या व सत्य-धर्म को राहुग्रास से मुक्तकर अज्ञान का नाश कर देती है। वेद एक सत्य-विद्या है और वैदिक धर्म सत्यधर्म है, अतएव इनकी रक्षाका आयोजन ईश्वर की ओर से समय समय पर सदा होता रहता है, जिसकी साक्षी इतिहास दे रहे हैं। वर्तमान समय भी वेद विद्या और वैदिक धर्म्म के लिये एक प्रचंड आपत्ति का समय है। पुराने इतिहास की खोज के लिये चाहे आज नाम मात्र को वेद का गौरव माना जाता हो, किन्तु वेद सत्यविद्या का निधान है, सब प्रकार के विज्ञानों का मूल स्रोत है, या भारतीय विज्ञान सूर्य्य के प्रकाश का पूर्ण विवरणात्मक इतिहास है, इस अटल सत्य को मानने के लिये आज की शिक्षित जनता तैय्यार नहीं। वैदिक धर्म्म एक वैज्ञानिक धर्म्म है, त्रिकालाबाध्य एक रस है, यह विश्वास आज पाश्चात्य क्रमसे शिक्षित जनता के अंतःकरण में स्थान नहीं पाता। पावे कहाँ से ? आज सत्य-विद्या या सत्य-धर्म्म की तौल होती है वस्तु-विज्ञान ( Science ) की तराजू पर ? वस्तुविज्ञान ही इस युग की मुख्य विद्या है। वस्तु विज्ञान को वर्त्तमान शैली के अनुकूल प्रस्फुटित करने वाला कोई वेद का भाष्य आजतक उपलब्ध नहीं। वैदिक धर्म्म का वस्तु-विज्ञानों से सम्बन्ध बताने के साधन कालसमुद्र की तरंगों में लीन हो चुके हैं, फिर विज्ञानराशि कहकर वेद का गौरव इस युग में किस आधार पर टिक सके ! बस, नाममात्र की श्रद्धा वेदकी बच गई है। "इलहामी पुस्तक" कहकर कुछ आस्तिक लोग "कुरान" आदि की तरह उस पर भी श्रद्धा कर लेते हैं; किन्तु श्रद्धा का आधार अंधकारमय है। यह निराधार श्रद्धा कितने दिन चल सकती है ? इस बीसवीं शताब्दी में अंधविश्वास का कहाँ ठिकाना ? भारत के कई योग्य आधुनिक विद्वानों ने वेद गौरव शिक्षा के लिये वस्तु विज्ञान से वेद का सम्बन्ध दिखाने का प्रयत्न किया, किन्तु भारतीय शास्त्रों की नियत परिभाषा के अनुसार क्रमबद्ध विज्ञान का मूल वेद में न बताया जासका और विना उसके वैज्ञानिकों का विश्वास उस विवरण

पर नहीं जम सकता था। वे इधर उधर की से उड़ी बातें कह कर ऐसे प्रयत्नों को उपहास काही स्थान मानते रहे। जब तक क्रमबद्ध रूप में वैज्ञानिकों को स्पष्ट न बता दिया जाय कि वेद में वस्तु विज्ञान की इतनी ऊँची परिभाषाएँ हैं कि जहाँ तक का बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों को स्वप्न भी नहीं आया। जब तक यह सिद्ध न कर दिया जाय कि आधुनिक वस्तुविज्ञान की बहुत सी उलझनें वैदिक-विज्ञान की शरण में आने से अनायास सुलझ सकती हैं तब तक वैज्ञानिक जगत् वेद का यथोचित गौरव नहीं मान सकता। किन्तु जगन्नियन्ता जगदीश्वर को यह कब सह्य होसकता था कि सत्यविद्या का गौरव विज्ञान के मध्याह्नकाल में छिपा रह जाय? उसने एक ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को संसार क्षेत्र में उतार दिया, जिसने उसी जगन्नियन्ता की प्रेरणा से अपनी सब आयु वैदिक-विज्ञान और वैदिक-इतिहास के अन्वेषण में लगाकर उक्त महत्व पूर्ण विज्ञान और इतिहास का एक क्रमबद्ध सूत्र तय्यार कर ही डाला, जिसके अतुल परिश्रम और अलौकिक प्रतिभा के प्रकाश से अनेक शताब्दियों से अमूल्य विज्ञान रत्नों को अपने उदर में छिपा रखने वाली गुहा का द्वार आज देखने में आगया और उसमें प्रवेश करने वालों को परम सौकर्य्य मिल गया। वही व्यक्ति हमारे ( चरित नायक ) गुरुवर जयपुर राज्य के प्रधान राज पंडित समीक्षा-चक्रवर्ती स्वर्गीय पं० श्री मधुसूदनजी ओझा विद्यावाचस्पति हुए। आपका वैदिक अन्वेषण सम्बन्धी कार्य जब पूर्ण रूपसे प्रकाश में आवेगा तब विद्वज्जन हमारी इन पंक्तियों की सत्यता का अनुभव करेंगे यह हमें पूर्ण विश्वास है।

अस्तु ऐसे महापुरुषों का पवित्र परिचय जाति की एक सम्पत्ति होती है, कार्य-क्षेत्र में उतरने वालों के लिये योग्यतम आदर्श होता है, और विद्या रसिकों के लिये कौतूहल वर्द्धक होता है। इस विचार से श्री पंडितजी महाराज का संक्षिप्त परिचय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

विहार प्रान्तमें मिथिला के मुजफ्फरपुर जिले के गाढ़ा नामक ग्राममें जोकि रेलवे स्टेशन सीतामढ़ी से दक्षिण की ओर दश मील की दूरी पर है पंडित श्री वैद्यनाथ ओझाजी के घर वि० सं० १९२३ में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी ( भा० कृ० ८ ) की रात्रिको १०½ बजे मृगशिरानक्षत्र में आपका जन्म हुआ।

आपकी जन्म-कुण्डली इस प्रकार है।



आपका कुल एक प्रसिद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठित पुरुषों का परम्पराका है। आपका बाल्य-काल स्वदेश में पिता के पास ही लालन-पालन व प्रारम्भिक शिक्षा में व्यतीत हुआ आपके पिता के बड़े भाई पं० राजीवलोचनजी ओझा जिनने जयपुर महाराज स्व० रामसिंहजी से अतुल सम्मान और पूर्ण जीविका प्राप्त की थी, उनके कोई सन्तान न थी इससे वे अपने छोटे भ्राता वैद्यनाथ झा के पुत्र श्री मधुसूदन झा जी को अपना दत्तक पुत्र बनाकर यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर वि० सं० १९३२ में अपने साथ जयपुर ले आये और जयपुर में ही उच्चकक्षा के विद्वानों के पास आपके पठन पाठन का प्रबन्ध किया गया। पं० श्री राजीवलोचनजी अपने साथ महाराजा साहिब के पास भी उक्त पंडितजी को लेजाया करते थे पण्डितजी बचपन से ही बड़े कुशाग्र बुद्धि थे अतः कभी कभी महाराज के प्रेम पूर्वक किसी प्रश्न का बड़ी मधुरता और बुद्धिमत्ता से उत्तर देते, जिससे महाराज इनको वात्सल्य पूर्ण प्रेम दृष्टि से देखते और पंडित राजीवलोचनजी से यह कहा करते कि यह लड़का बड़ा होनहार मालुम होता है।

पाँच छः वर्ष व्यतीत हुये थे उक्त पण्डितजी सिद्धान्तकौमुदी ही पढ रहे थे कि इस अवसर में आपके पितृव्य राजीवलोचन ओझा जी का स्वर्गवास होगया। इसके एक या डेढ़ वर्ष बाद ही महाराज रामसिंहजी का भी स्वर्गवास होगया। अतः इन घटनाओं से आपके जीवन क्रम का एकदम परिवर्तित होजाना एक स्वाभाविक बात थी किन्तु चरित्र नायक को स्वाभाविक विद्या का व्यसन था, आपको विद्याध्ययन के अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगता था। अब जयपुर में विद्या प्राप्ति का सुयोग न देखकर इन्हें अपनी पितृव्य पत्नी के साथ सं० १९३९ वि० में अपनी जन्म भूमि को प्रस्थान करना पड़ा, किन्तु वहाँ भी अध्ययन क्रम आपकी रुचि के अनुकूल नहो सका और आपकी विद्या पिपासा अति प्रबल थी, इस कारण आप अपने कुटुम्बियों को समझा बुझा कर अध्ययनार्थ काशी चले गये, वहाँ दरभंगा पाठशाला में स्वनाम धन्य म० म० स्वर्गीय श्री शिवकुमार मिश्र जी के समीप विद्याध्ययन करने लगे और लगातार ८ वर्ष तक वहाँ ही पढ़ते रहे। अपने उत्कट परिश्रम तथा अद्भुत् बुद्धि के कारण, व्याकरण, न्याय, साहित्य, मीमांसा, वेदान्त आदि के ग्रन्थों का आपने गुरु मुख से न केवल अध्ययन ही कर लिया प्रत्युत उन पर पूर्ण अधिकार भी प्राप्त कर लिया। आपने काशी में विद्याध्ययन के अतिरिक्त भगवान् कामेश्वर शंकर की उपासना भी बड़े मनो योग से की जिससे आपको विद्योन्नति में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

आपका विवाह १७ वर्ष की अवस्था में अलवर के राजगुरू पं० श्री चंचल ओझाजी मन्त्र शास्त्री की कन्या से वि० सं० १९४० में हुआ। इस समय चंचल झा के सुपुत्र पं० रामभद्र ओझाजी राज्य के लब्ध प्रतिष्ठ रिटायर्ड जुडीशियल मिनिस्टर हैं।

काशी में विद्याध्ययन पूर्ण कर पंडितजी बूँदी, कोटा, झालरापाटन, रतलाम आदि के नरेशों से मिले और पूर्ण सम्मानित हुए। अन्त में जयपुर राज्य से विशेष अनुरोध होने पर वि०सं० १९४६ में जयपुर चले आये।

जयपुर में आते ही पण्डितजी महाराजाज कालेज में संस्कृत प्रोफेसर नियुक्त हुए बीच में आपने कुछ समय संस्कृत कालेज में वेदान्त के प्रधान अध्यापक का कार्य भी किया था। इस अरसे में कई घटना ऐसी हुई जिनसे आपके प्रखर पाण्डित्य की महिमा भूतपूर्व जयपुर नरेश स्व० महाराज माधवसिंहजी के कानों तक पहुँची और गुणग्राहक महाराजने इन्हें अपने आत्मिक परिजनों में नियुक्त कर वि० सं० १९५१ में निजी पुस्तकशाला का प्रबन्ध इनके अधीन कर दिया व मौजमन्दिर ( धर्मसभा ) का सभापति बना दिया और राज्य के सर्व प्रधान पंडित मान कर परम आदर पूर्वक अपने पास रक्खा। श्रीमान् प्रायः नित्य ही कुछ समय इनसे शास्त्रीय वार्तालाप किया करते थे जिसका महाराज पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह पण्डितजी की अनुमति बिना कोई भी धार्मिक-कार्य नहीं करते थे।

पंडितजी महाराज न केवल शास्त्रों ही में नैपुण्य रखते थे अपितु शासननीति में भी आप पूर्ण प्रवीण थे, अतः समय२ पर महाराज के नैतिक विषयों में भी आप से वार्तालाप होता रहता था इस प्रकार पण्डितजी स्व० जयपुर नरेन्द्र के उच्चकोटि के कृपापात्रों में से बन गये और महाराज के नवरत्नों में आपकी गणना थी। जयपुर राज्य के उच्चसामन्तों के समान आप आदरणीय थे। और आपका प्रभाव राज्य वर्ग में तथा प्रजाजनों में बहुत विशेष था। आपको महाराज ने आजीविका भी पूर्ण दे रक्खी थी, इसलिये रईसों के समान ही आपका जीवन बीता।

सन् १९०२ ई० में भारत सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के समय जो ऐतिहासिक विलायत यात्रा हुई थी, उसका सब धार्मिक आयोजन पण्डितजी के सत्परामर्शानुसार ही हुआ था और महाराजाधिराज इन्हें भी अपने साथ लेगये थे। वहाँ संस्कृत के यूरोपियन विद्वान जब आपसे मिले तो बड़े प्रभावान्वित हुए और शीघ्र ही वहाँ आपकी कीर्ति फैलगई। वहाँ के आक्सफोर्ड के प्रसिद्ध विद्वान् मैकडोनैल्ड, कैम्ब्रिज के विद्वद्वर बैंडाल और इंडिया आफिस पुस्तकालयाध्यक्ष टामस पंडितजी से मिलकर इनकी वैज्ञानिक विवेचनाओं पर मुग्ध होगये और आपका बड़ा सम्मान सत्कार उनने किया। आपका वहाँ वेद धर्म पर एक बड़ा जोरदार व्याख्यान भी हुआ ( जो जयपुर के संस्कृत रत्नाकर मासिकपत्र में कई वर्ष पहले छप चुका है ) इससे वहाँ के सभी विद्वज्जन आश्चर्यान्वित हुये और आप के कारण वैदिक धर्म का डंका विलायत में गूंज उठा।

उक्त कथन की सत्यता प्रमाणित करने को विलायत से प्रकाशित होनेवाले समाचार पत्रों के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं।

## *The Westminister Gazette—26.7.02*

### A Hindoo savant in London.

In the back ground of the group of personages who have come to London for the Coronation, the presence has remained unnoticed of a hindoo savant, a great celebrity in India, a human store house of vedic wisdom and philosophy. This is a pundit Madhusudan Ojha a profound sanskrit scholar. The pundit's conversation in fluent Sanskrit greatly interested the Cambridge orientalist in his Eastern visitor.

### The Sun—23.7.02.

The Pundit visited ProfessorMacdonald of Oxford who was greatly pleased to cultivate his acquaintance. Last Sunday the pundit was invited to cambridge by Professor C. Bendall who with his wife gave him a warm reception. What interested the cambridge orientalist most was the conver sation of the Pundit in fluent Sanskrit which is a rare treat now even in India while he was deeply impressd by the deep learning of his eastern visitor.

सम्राट् के राज्याभिषेक के अवसर पर पंडितजी महाराजने कुछ पद्य बनाकर इङ्गलिश अनुवाद सहित छपाकर सम्राट् को समर्पित किये थे, जिनकी सादर स्वीकृति के साथ सम्राट् ने आपको मैडिल तथा एक लिखित धन्यवाद पत्र से सम्मानित किया था।

पण्डितजी महाराज सदा वैदिकविज्ञान की खोज में हीं लगे रहते थे। आपका संपूर्ण समय वेद रहस्य के उद्घाटन के प्रयत्न में ही बीतता था। आप अस्वस्थ होजाने की दशा में भी अपना कार्य करते ही रहते थे। अपने शरीर, स्वास्थ्य, आराम व अर्थोपार्जन आदि सब बातों की उपेक्षा कर यह महान् कार्य आपने आजीवन किया। आपके लगभग ५० वर्ष घोर तपस्या के रूप में बीते, जिस तपस्या के फल स्वरूप आपके लिखे हुए १२५ से भी अधिक ग्रन्थ विद्यमान हैं, जो संस्कृत विद्या, सनातनधर्म और भारतवर्ष का वैज्ञानिक युग में मस्तक ऊँचा करने के लिये पर्याप्त साधन है। आपने अपने हाथोंसे इन सब ग्रन्थों की पाण्डुलिपि साथही प्रतिलिपि लिखी है इनमें दो चार ग्रन्थों के अतिरिक्त प्रत्येक ग्रन्थ २०० से ५०० पृष्ठ तक के हैं और कोई कोई तो इससे भी अधिक हैं। इतनी मौलिक रचना करलेना कोई मामूली बात नहीं है। आपका लेख भी बड़ा सुन्दर छापे के सदृश होता था और आप चित्रकला में भी कुशल थे।

राजकार्य और ग्रन्थ लेखन व्यसन के कारण विशेष देश भ्रमण का अवसर पंडितजी को नहीं मिला इसीलिये आपके असाधारण पांडित्य व अलौकिक वैदिक रहस्योद्घाटन शैली और विषयों के प्रवचन की चतुरता का भारतीयों को विशेष परिचय प्राप्त नहो सका, किन्तु जब कभी भी ऐसा अवसर प्राप्त हुआ, तब श्रोतागणों को चित्रित् होता हुआ ही देखा और धीरे धीरे देश में आपकी ख्याति बढ़ती हो गई।

सन् १६०६ ई० में काशी में कांग्रेस सभा के अवसर पर और प्रयाग के सम्वत् १९६२ वि. कुम्भ के अवसर पर जो भारतधर्म महामण्डल के महाधिवेशन हुए थे, जिनमें सभी भारतीय नरेशों को सानुरोध निमन्त्रण भेजा गया था, वहां जयपुर राज्य की ओर से पण्डितजी महाराज गये थे। उस समय भूतपूर्व दरभंगा नरेश के सभापतित्व में आपका भाषण सुनकर न केवल विद्वन्मण्डली ही, किन्तु अंग्रेजी के बड़े २ विद्वान् और साधारण जनता भी मुग्ध तथा गद्गद होगये थे। बहुत दिनों तक यह आपकी ख्याति कई समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रही थी उसी अवसर पर भारतधर्म-महामण्डल की ओर से आपको विद्यावाचस्पति तथा महामहोपदेशक इन दो पदवियों से विभूषित किया गया था। इसके अतिरिक्त आपके अभिभाषण लाहौर, काशी, कलकत्ता आदि में भी बड़े जोरदार हुए थे, जिनसे उपस्थित जनता बहुत प्रभावान्वित हुई और आपको बड़े सम्मान पूर्वक अभिनन्दन पत्र समर्पित किये गये। आप वैदिक गहन विषयों के उद्घटनार्थ शास्त्रों का अवलोकन तथा लेखन का कार्य तो करते ही रहते थे साथ ही जिज्ञासु वर्गों को प्रायः नित्यही कुछ समय अनेक विषयों को समझाया भी करते थे। आपकी प्रवचन शैली बहुत ही उच्चकोटि की थी आप श्रोताओं के हृदय में वस्तुज्ञान पूर्ण रूपेण जमा देते थे श्रोतालोग अद्भुत विषयों को सुन कर चकित तथा मुग्ध होजाते। कोई भी विषय जब तक जिज्ञासुओं की समझ में पूरे तौर से न आजाता तब तक वह अनेक प्रकार से घंटों तक उस वस्तु की मीमांसा करते ही रहते थे। इस कार्य में उनका मस्तिष्क कभी नहीं थकता था। उनमें यह एक खास बात थी कि गूढ़तम तत्वों के विचार में इतना प्रबल परिश्रम अहर्निश करते रहने पर भी उनका मस्तिष्क अश्रान्त ही दीख पड़ता था। इस अत्यधिक परिश्रम के कारण पाचन शक्ति की कमी से उनका स्वास्थ्य तो ठीक नहीं रहत था और शरीर बड़ा कृश था, किन्तु लिखने या बोलने में वे कभी नहीं रुकते थे। वे बहुत ही स्वल्पाहारी थे, कभी २ तो वे अपनी इस धुन में भोजन करना तक भूल जाते थे, दो चार बार ताकीद करने पर भोजन के लिये जाना तो नित्य नियम साही था।

पण्डितजी महाराजके समीप जिज्ञासुओं के आने जाने की संख्याही क्या होसकती थी, देश विदेश से लोग नई नई शंकाओं को सुलझाने के लिये उपस्थित हुआ करते थे।

वर्तमान जयपुर नरेश महाराज श्री १०८ श्री मानसिंहजी को महाराज कुमार अवस्था में

हिन्दी संस्कृत की प्रथम शिक्षा का आरम्भ पंडितजी महाराज ने हीं कराया था। स्वर्गीय भूतपूर्व महाराज माधवसिंहजी के अनुसार वर्तमान जयपुरनरेन्द्र भी धार्म्मिक विषयों में सभी परामर्श पंडितजी से ही लिया करते थे, ये पंण्डितजी को बड़ी श्रद्धा तथा मानकी दृष्टि से देखते थे और उन के पांडित्य से बहुत प्रभावान्वित रहते थे।

अन्यान्य कई राजा महाराजा भी आपको बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखते थे। स्वर्गीय तथा वर्तमान श्रीमान् दरभंगा महाराज का आप पर बड़ा ही प्रेम प्रसाद था, साथ ही आपकी इस अद्वितीय विद्वत्ता को वे अपना निजी गौरव समझते थे। वर्तमान् अलवर नरेश ने तो अपने यज्ञोपवित के अवसर पर आप से ही दीक्षा ग्रहण की थी और आपको अपना सर्वश्रेष्ठ गुरू मानकर ये आपका बहुत ही सम्मान करते थे। स्व० महाराज किशनगढ, स्व० भूतपूर्व काशी नरेश तथा शाहपुराधीश भी आपके बड़े भक्त थे।

इतने पर भी एक विशेषता थी कि पंडितजी ने राजा महाराजा बड़े २ सेठ आदि किसी से भी कभी कोई याचना नहीं की। आप स्वतन्त्र प्रकृति और निरपेक्ष व्यक्ति थे। साथ ही आपकी प्रकृति अति शान्त और नितान्त सरल थी। आप का रहन सहन बहुत ही सादगी का था। संसार में रहकर भी संसार से अलग थे यह आप में एक अलौकिक गुण था। आपको किसी प्रकार का कोई शौक या वांछा कभी नहीं हुई यदि थी तो सर्वोपरि वही एक मात्र वैदिकविज्ञान के आविष्कार का पराकाष्ठा का व्यसन, और इसी में मनसावाचा कर्मणा अन्तश्वास तक वे तल्लीन भी रहे बल्कि प्राण वियोग के समय तक इसी का मनन रहा।

यों तो पंडितजी महाराज के शिष्यों की संख्या बहुत हैं, परन्तु जिनने नियम पूर्वक पुस्तक खोलकर आपसे विद्याध्यन किया से भी कम नहीं है। इन पंङ्क्तियों के लेखक ने प्राय: ४० वर्षकिसी रूप में उनके चरणों में बैठकर अध्ययन किया है। मृत्यु से ३ दिन पूर्व भी मेरा पाठ हुआ था और भी बहुत से प्रतिष्ठित विद्वान् उनके शिष्य हैं जिन में से कुछ विद्वानों के नाम निम्नलिखित हैं:--

१-राजगुरू पं० चन्द्रदत्तजी चौधरी रिटा० प्र० व्याकरणाध्यापक महाराजाज् संस्कृत कालेज जयपुर।
२-पं० सूर्यनारायणजी आचार्य प्र० संस्कृताध्यापक महाराजाज् कालेज जयपुर।
३-पं० कन्हैयालालजी न्यायाचार्य प्र० न्यायाध्यापक महाराजाज् संस्कृतकालेज जयपुर।
४-पं० मदनलालजी व्याकरणाचार्य रिटा० धर्मशास्त्राध्यापक " "
५-पं० मथुरानाथजी भट्ट साहित्याचार्य प्र० साहित्याध्यापक " "
६-पं० मोतीलालजी शास्त्री शतपथ संपादक बालचन्द्र यन्त्रालयाध्यक्ष "
७-स्वामी सुरजनदासजी वेदान्त, व्याकरणाचार्य दादूविद्यालय "
८-पं० केदारनाथजी साहित्यभूषण राज्यकीय ज्योतिषयन्त्रालयाध्यक्ष जयपुर।

९–पुरोहित गोपीनाथजी जोशी भूतपूर्व हैडमास्टर चांदपोल हाईस्कूल तथा पर्सनल एसिस्टेंट शिक्षा-विभागाध्यक्ष जयपुर।

१०–पं० आद्यादत्तजी ठाकुर एम्.ए. संस्कृत प्रोफेसर लखनऊ यूनीवर्सिटी।

११–पं० देवराजजी शास्त्री ( पंजाब )

१२–पं० पुरुषोत्तमजी साहित्याचार्य धर्मशिक्षक मेयो कालेज अजमेर।

१३–पं० अशेश्वरझा ( मिथला )

वि० सं० १९९३ में अखिल भारतवर्षीय संस्कृत-साहित्य सम्मेलन की ओर से जयपुर के गण्य मान्य सरदारों, विद्वानों और सेठ साहूकारों की स्वागत समिति के तत्वावधान में पंडितजी महाराज के ७०वें वर्ष के उपलक्ष में आचार्य प्रवर गोस्वामी श्री १००८ श्री गोकुलनाथजी महाराज शुद्धाद्वैत संप्रदायाचार्य बम्बई के सभापतित्व में रामनिवास बाग के अलबर्ट हाल में हीरकजयन्ती ( Diamond Jubilee ) मनाई गई थी जिसमें बाहर के अनेक प्रसिद्ध विद्वान् म० म० हाथी भाई शास्त्रीजी राजपण्डित जामनगर ( काठियावाड़ ), म० म० पं० मथुराप्रसादजी दीक्षित राजपंडित सोलन (पंजाब), विद्यामार्त्तण्ड पं० सीताराम शास्त्री भिवानी, पं० विद्याधर शास्त्रीजी एम. ए. प्रोफेसर डूंगर कालेज बीकानेर आदि भी सम्मिलित हुए थे। संस्कृतरत्नाकर मासिकपत्र का ( वेदाङ्क ) नाम का विशेषाङ्क और अभिनन्दनपत्र पंडितजी महाराज को समर्पित किया गया था। और इस अङ्क में संस्कृत तथा हिन्दी में पंडितजी महाराज का जीवन चरित्र भी प्रकाशित हुआ है इसके अतिरिक्त आपका जीवन चरित्र सुधा में छपा है। पूर्ण रूपेण आपका विस्तृत जीवन चरित्र पुस्तकाकार में प्रकाशित करने का भी विचार है।

वि० सं० १९९६ भाद्रपद शुक्ला १५ को केवल दो तीन दिन ही अस्वस्थ रहकर गुरुवर पंडितजी का अचानक स्वर्गवास हो गया। स्थानीय सिविल सर्जन का कथन था कि यह दिमागी उत्कट परिश्रम का आघात हृदय पर हुआ।

पंडितजी के परिवार में आपके सहोदर भाई भतीजे कोई भी न थे, आपकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास वि० सं० १९६२ में ही हो चुका था और फिर आपने विवाह नहीं किया। केवल एक मात्र पुत्र पंडित प्रद्युम्नजी उन दिनों अलवर नरेश के पास थे जिन्हें आपके अस्वस्थ होते ही तार द्वारा बुला लिया गया था। पंडितजी ने अपने अन्तिम समय में स्वरचित ग्रन्थों के प्रकाशित की एक मात्र इच्छा अपने पुत्र से प्रकट की जिसके लिए आपके सुपुत्र ने दृढ़ प्रतिज्ञा की।

उस दिन सम्पूर्ण नगर में शोक छाया हुआ था। राजकीय उच्च कर्मचारियों व राज के लवाजमा के साथ आपका शव विमान श्मशान पहुँचाया गया, वहाँ शव को स्नान कराकर विभूति तिलक धारण कर जो सूर्याभिमुख बैठाया गया तो मुख पर विज्ञान ज्योति का अद्भुत दर्शन

हुआ कि सब लोग आश्चर्य चकित हो प्रणाम करने लगे। यह वैदिकविज्ञान का प्रत्यक्ष चमत्कार था। आपका उत्तर क्रिया श्राद्धादिक शास्त्रीय विधि विधान तथा राज्य के सम्मान के अनुसार आप के सुपुत्र ने बड़ी श्रद्धा से किया। मासिक क्षयाह में ब्राह्मण भोजनादिक होते रह कर वार्षिक श्राद्ध के अनन्तरही पितृपक्ष में पं० प्रद्युम्नजी ने गयाश्राद्ध भी सविधि सम्पन्न कर डाला।

पंडितजी के स्वर्गारोहण के अवसर पर समाचारपत्रों में "वैदिकविज्ञान का सूर्य अस्त" यह हैडिङ्ग निकला था। अलवर दरभंगा आदि कई नरेशों तथा महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय, प्रयाग के वाइस-चांसलर डा० गङ्गानाथ झा आदि अनेक गण्य मान्य व्यक्तियों के सम वेदना सूचक बहुत से तार व पत्र आये थे और बहुत स्थानों में शोक सभाएँ हुई। जयपुर में भी राय-बहादुर पं० अमरनाथजी अटल एम्० ए०, फाइनेन्स मिनिस्टर के सभापतित्व में महाराजाज संसकृत कालेज में बड़े बड़े सरदारों उच्च कर्मचारियों विद्वानों तथा गण्य मान्य पुरवासियों की उपस्थिति में एक विराट् शोक सभा की गई।

पंडितजी महाराज के पुत्र पण्डित प्रद्युम्नजी ओझा का बाल्यकाल से अपने पूज्य पिताजी के पास ही अधिकांश रहन सहन व पठन पाठन का प्रबन्ध रहा था, यह अपने पिता के इकलौते पुत्र थे अतः इनका लालन पालन भी अत्यधिक प्यार से होता था। आपकी शिक्षा संस्कृत हिन्दी तथा अंग्रेजी में हुई। यह भी अपने पिता के साथ स्वर्गीय जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी के समीप जाया करते थे और महाराज भी इनको छोटे पण्डितजी के नाम से सम्बोधित कर बड़ा वात्सल्य प्रकट किया करते थे। ये बाल्यकाल से ही बड़े बुद्धिमान् और चंचल प्रकृति के हैं। इनकी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर महाराजाधिराज ने इन्हें अपने पास आने जाने के लिये स्वतन्त्र आज्ञा प्रदान कर रक्खी थी और इनके लिये भी अपने खासा अस्तबल से सवारी के लिये घोड़ा अलग नियुक्त कर दियाथा साथ ही जहाँ कहीं भी महाराज विदेश पधारते वहाँ आपके पूज्य पिताजी तो साथ होते ही थे ये भी महाराज की आज्ञानुसार बहुतसी यात्राओं में साथ रहा करते थे। जब यह कुछ बड़े हुये तो पंडितजी के स्वदेश आदि जाने पर या अस्वस्थ होने पर महाराज इन्हीं को पुस्तकशाला मौजमन्दिर ( धर्मसभा ) आदि कार्यों पर पंडितजी के स्थानापन्न नियुक्तकर कार्य लिया करते थे और उस समय के प्रधान मंत्री स्व० बाबू संसारचन्द्रसेनजी, सी० आई० ई० तथा स्व० नव्वाब मुम्ताजु-द्दौला सर फैयाजअलीखाँजी, के०सी० आई० ई०, एम्० वी० ओ० और राय बहादुर पुरोहित स्व० सर गोपीनाथजी, सी० आई० ई० इनके कार्य से परम संतुष्ट तथा प्रसन्न रहते थे इस प्रकार इनने पूर्ण नीतिकुशलता और सभाचातुरी प्राप्त करली और महाराज के कृपापात्र बन गये।

जब स्वर्गीय दरभंगा नरेश श्रीमान् श्री १०८ रमेश्वरसिंहजी जयपुर पधारे थे तो भूतपूर्व जयपुर नरेश ने इन्हीं पं० प्रद्युम्नजी ओझाको उनके आतिथ्यसत्कार पर प्रमुख नियुक्त किया था उस समय दरभगा नरेश इनके प्रबन्ध से बहुत प्रसन्न हुए थे और तब से वह इनको विशेष प्रेम और

कृपा की दृष्टि से देखने लगे। वर्त्तमान दरभंगा नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज श्री १०८ श्री कामेश्वर सिंहजी भी इनपर उसी प्रकार पूर्ण कृपा रखते हैं और इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में उन की भी सहानुभूति रहती है।

कुछ समय पं० प्रद्युम्नजी को अपनी संपत्ति के प्रबन्ध के लिये स्वदेश जाकर भी रहना पड़ा था वहाँ उच्च यूरोपियन आई० सी० एस्० आफिसर ने इनकी नीति निपुणता देख कर एक इलाके का इन्हें प्रेसीडेन्ट नियुक्त करदिया जिसमें दीवानी तथा फौजदारी विभाग का कार्य इन्होने कई वर्ष तक बड़े न्याय निपुणता से किया जिससे पबलिक बड़ी परितुष्ट रही और उस अरसे में जो जो यूरोपियन आफिसर बदल कर आये वे सभी इनके कार्य से परम संतुष्ट रहे और इसके लिये उन्होंने लिखित प्रमाण पत्र भी इन्हें दिये हैं साथ ही जब वहाँ बहुत से लाईसेंन्स प्राप्त लोगों से भी लाईसैन्स वापस लिया जाकर कमो की जा रही थी उस समय इनको सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिये दुनाली अँग्रेजी बन्दूक का लाईसैन्स देकर बिहार गवर्नमेन्ट ने इन्हें राजभक्त रूप से सम्मानित किया था।

पं० प्रद्युम्नजी अपने पिता के समक्ष वर्त्तमान श्रीमान् अलवर महाराज श्री १०८ श्री तेजसिंहजी के राज्य सिंहासनारोहण के अवसर से ही उनके बड़े कृपापात्र तथा पूर्ण विश्वास पात्र होकर उनके आत्मीय परिजनों में सम्मानित हुए और उनके पास ही रहा करते थे। वे धार्मिक सभी कार्य इनके परामर्शानुसार करते और समय समय पर अन्य विषयों पर भी परामर्श लिया करते थे, साथ ही शस्त्र तथा अश्व के कार्य में भी सुयोग्य होने के कारण इन्हें महाराज ने अपना ए. डी. सी. नियुक्त कर आखेट ( शिकार ) आदि में भी अपने साथ रखते थे।

पिता के अस्वस्थ होते ही पं० प्रद्युम्नजी को जयपुर आजाना पड़ा। वर्तमान श्रीमान् महाराजा जयपुर ने इनके पिताजी की जीविका इनको यथावत् प्रदान करदी।

श्रीमान् महाराज अलवर को पण्डितजी में पूर्णभक्ति और उनके पुत्र पं० प्रद्युम्नजी पर पूर्ववत् अतुल कृपा है और श्रीमान् पण्डितजी की इन महान् कृतियों से पूर्ण परिचित हैं अतः श्रीमान् का इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में पूर्ण सहयोग है।

पं० प्रद्युम्नजी ने अपने पिता के अन्तिम इच्छा ग्रन्थ प्रकाशन की उनके समक्ष प्रतिज्ञा कर उन्हें परितुष्ट किया था उस प्रतिज्ञा के अनुसार इस कार्य में प्राणपण से जुटे हुए हैं।

इन तीन वर्षों में आपने ६-७ ग्रन्थ प्रकाशित कर डाले हैं और कई विभिन्न प्रेसों में मुद्रणार्थ दिये जा चुके हैं, साथ ही आगे कार्य क्रम जारी कर रक्खा है।

जो कुछ सम्पत्ति पुज्य पण्डितजी ने छोड़ी है उसे ये एकमात्र ग्रन्थ प्रकाशन में हीं लगा रहे हैं, और तो क्या आपका यहाँ तक संकल्प है कि यदि द्रव्य का अभाव होगा तो मकान आदि बेच कर इस कार्य को यथा सम्भव सम्पन्न करेंगे। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या देश में गुणग्राहकता का इतना अभाव हो गया है कि वह ऐसा होने देगा? इसका उत्तर भविष्य देगा।

वेदज्ञमाविष्कृतदिव्यशक्तिं लोकेषु गीतार्जुनकीर्तिमर्च्यम् ।
प्रद्युम्नतातं समदर्शिनं च गुरुं भजे श्रीमधुसूदनार्यम् ॥
( पं० ब्रह्मदत्त शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य रचित, संस्कृतरत्नाकर के वेदाङ्क से उद्धृत )

१-जून सन्० १९४२ ई० सं० १९९९ वि०

॥ इति ॥

* ॐ तत्सत् *

# भूमिका

अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न संभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥

अन्न से भूत-प्राणियों का जीवन रहता है, अन्न पर्जन्य से पैदा होता है, और पर्जन्य यज्ञ से उत्पन्न होता है, तथा यह यज्ञ कर्म से समुद्भूत है । इति ।

इस सिद्धान्त से यही सिद्ध होता है कि कर्म समुद्भूत यज्ञही अन्न जल आदिका और प्राणियों के जोवन का हेतु है । यज्ञ की इसी शक्ति को लक्ष्यमें रखकर यह भी कहा गया है कि—

"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्व मेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्" ॥ इति ॥

तथा-"सर्वेषां देवानामात्मायद्यज्ञः" इत्यादि ( श० ब्रा० १४।३।१ )

यह यज्ञ क्या वस्तु है जिस से सभी की मनोवृत्ति की पूर्ति होती है । आजकल इस के विषयमें भिन्न-भिन्न मतानुयायियोंने भिन्न-भिन्न प्रकार से सिद्धान्त स्थिर कर रक्खे हैं । इसी लिए इसकी वैज्ञानिक उपपत्ति न जानकर और भिन्न-भिन्न सिद्धान्त सुनकर भोलोभाली साधारण जनता इसका तिरस्कार करने का सहसा साहस कर बैठती है, और अपनी ही त्रुटि से अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करसकती ।

आज हम यहां पर्जन्य के विषयमें कुछ लिखते हुए प्रसंगागत इस यज्ञ के विषय पर वैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रतिपादन करते हुए कि यज्ञ से जनमनोवृत्ति की पूर्ति कैसे होती है, और वह क्या वस्तु है तथा आगे क्रमशः वर्षा का यज्ञ के साथ संबन्ध, आप् ( जल ) की याज्ञिकता और उत्पत्ति एवं स्वरूप अर्थात् जल कहाँ से, किस रूप से कब कैसे पैदा होता है, और पृथ्वी पर कैसे

आता है, तथा इसके आने के कौन-कौन से निमित्त हैं और वे कैसे जाने जा सकते हैं- इत्यादि विषयों का दिग्दर्शन पाठकों के आगे संक्षेप में रखते हैं।

वास्तवमें " अग्नौसोमा हुतिर्यज्ञः " इस वैदिक परिभाषानुसार अग्नि में सोम की आहुति डालनेही को यज्ञ कहते हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न शास्त्रकारों ने " अन्नोर्के प्राणानामन्योन्य परिग्रहो यज्ञः ", " वाचश्चित्तस्योत्तरोत्तरि क्रमो यज्ञः "- इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने-अपने ग्रन्थों में यज्ञ की परिभाषायें लिखी हैं, किन्तु उन सब का समन्वय हमारी पूर्वोक्त परिभाषा में सुसंगत हो जाता है; क्योंकि अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत इन तीनों ही जगह अग्नि में सोम आहुत होता रहता है और इन तीनों से पृथक् कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती।

पृथ्वी पिण्ड से २१ वें अहर्गणपर, जो कि लगभग ६ करोड़ मील की दूरीपर है, " बृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्तः " इस श्रुति के अनुसार सूर्य स्थित है। यह सूर्य अग्निस्थ है। इसके चारों ओर सोम समुद्र है, जिसे कि वेदमें पारमेष्ठ्यमंडल कहा गया है। उस अग्निमय सूर्य में उस का स्वरूप रक्षक यह पारमेष्ठ्य सोम अनवरत आहुत होता रहता है। इसी से सूर्य को 'अग्निहोत्र' कहा गया है, और उसके प्रकाशमंडल ( Solar-system ) को ' संवत्सरयज्ञ ' कहते हैं। समित्येकीभावे। सम् = एकत्र वसन् सरतीति संवत्सरः। अथवा " त्सरछद्मगतौ "। सर्वत्रत्सरतीति संवत्सरः। सप्तदशो वै संवत्सरः। यानी १७ स्तोम को व्यासमान कर जो एक वृत्त खींचा जाय वह संवत्सरवृत्त कहलाता है। इसी संवत्सर रूप अधिदैवत यज्ञ में 'अग्नि' की न्यूनाधिकता से ऋतु परिवर्तन होता है जिस से चातुर्मास्य कहते हैं। यह हुआ आधिदैवतयज्ञ।

हम जो प्रतिदिन सायंप्रातः अपनी शारीराग्नि में अन्नमय सोम की आहुति देते हैं इसको अध्यात्म यज्ञ कहते हैं। संसार का प्रत्येक भौतिक पदार्थ अग्निमय है और वह भी सर्वत्र व्याप्त ' ऋत ' सोम को आहुति लेकर ही अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो रहा है जब तक यज्ञ है, तभीतक इन तीनों की सत्ता है। उक्त सौर यज्ञ के कारण ही सौर प्राणदेवता मर्त्यत्व से विमुक्त होकर अमृतत्व को पहुँच जाता है, जैसाकि श्रुति कहती है—

" सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम।
दिवं पृथिव्या अध्यारुहामा विदामदेवान् स्वर्ज्योतिः" ॥ इति ॥

हमारा आध्यात्मिक यज्ञ पार्थिव प्राण की प्रधानता से मर्त्यभावानुगृहीत है। आध्यात्मिक प्राणदेवताओं को उसी वैधयज्ञ के द्वारा आधिदैविक प्राणदेवताओं के साथ युक्त कर अमृत

भाव को प्राप्त करलेना ही कर्मप्रधान भौतिक यज्ञ का फल है । इसी कारण से मनुष्यों की मनोवृत्ति की पूर्ति यज्ञ द्वारा हुआ करती है ।

अब हमें बताना यह है कि अग्नि और सोम कहते किसे हैं । वेद में दो तरह के पदार्थ माने हैं— ऋत् और सत्य । इनमें अग्नि सत्य पदार्थ है और सोम ऋत् पदार्थ है । सहृदय और सशरीर पदार्थ सत्य है और हृदय शून्यपदार्थ ऋत है । संसार में जितने पिण्ड हैं उनके एक प्रकार का केन्द्र ( Centre ) होता है. अतः ये सब सत्य पदार्थ हैं और इन का मूल कारण अग्नि है, सोम द्रव पदार्थ है इसके कोई केन्द्र नहीं होता । यही सोम जब अग्निसात् होजाता है तब अग्नि पिण्ड रूपमें परिणत हो जाता है । अर्थात् यह समझना चाहिए कि सोमगर्भित अग्नि ही पिण्डरूप है । पृथ्वी भी एक पिण्ड है और पिण्ड अग्नि का बनता है, अतएव यास्काचार्य लिखते हैं— " अग्निः पृथ्वीस्थानः " ( निरू० दैवत कां० ७।५।२ ) इति । जिस पदार्थ पिण्डको साधारण जनसमूह दृश्य समझता है, वह वास्तव में अदृश्य है । उसका तो केवल हमें स्पर्श होता है, प्रत्यक्ष करण तो एकमात्र उस वस्तु के वेदमय रश्मिमंडल ही का होता है । इस का विवेचन हमारे 'वेद समीक्षा' नामक ग्रंथ में देखना चाहिए । यहां पर इतना ही हमें बताना है कि पिण्डसे निकलने वाली किरणें अपने नियत देश से हटती नहीं । उदाहरणार्थ किसी वस्तु पिण्ड को सामने रख लीजिए । जैसे-सामने एक पुस्तक रक्खी हुई है, उससे चारों ओर अनन्त वेदमय किरणें- जिनका स्पर्श हमारी आंखें करती हैं— निकलरही हैं । सब का प्रदेश नियत है । यदि हम किसी भी तरफ़ उन किरणों के रोकने के लिए कुछ भी अवरोधक वस्तु रखदेंगे तो उस तरफ़ जाती हुई वे किरणें उस अवरोधक वस्तु से टकरा कर प्रतिफलित होती हुईं, उसी नियत देश से जिस से वह जारहीं थी, वापस लौट आवेंगी किन्तु इधर उधर विरुद्ध मार्ग का अनुगमन कदापि नहीं करेंगी । इस से यह होगाकि उधर की तरफ़ बैठा हुआ व्यक्ति उस वस्तु को किरणों के वापस लौट जाने के कारण नहीं देख सकेगा । बस, इसी नियत भाव के कारण अग्नि को सत्य कहते हैं ।

सोम इस अग्नि से विरुद्ध अवस्था वाला ऋत है । पानी, वायु और सोम ये तीनों एक जाति की वस्तु हैं । घनावस्थाका सोम 'पानी' कहलाता है, तरलावस्था वाला वायु' और विरलावस्था वाला "सोम" 'सोम' ही कहलाता है । सोम और वायु को हम आंख से देख नहीं सकते । इसका एक मात्र कारण इन में अत्रिप्राण का अभाव होना है । अत्रिप्राण की विवेचना हमारे 'ऋषिरहस्य' और 'अत्रिख्याति' नामक ग्रंथों में देखनी चाहिए । अत्रि प्राण की अधिकमात्रा होने के कारण हम पानी में- जोकि एक प्रकार से सोम ही है— ऋतभाव को देख सकते हैं । जैसे- जल बहता हुआ कहीं जा रहा है, उस बहते हुए जल के आगे यदि कुछ अवरोध के लिये

पत्थर वगैरह रखदिया जाय तो वह जल उपर्युक्त उस पुस्तक की किरणों की तरह उससे टकराकर वापस नहीं लौटेगा, प्रत्युत उस पत्थर के इधर उधर हो कर आगे निकल आवेगा। कारण यही है कि आग्नेय पिण्डों की तरह जल का कोई केन्द्र नहीं, यह हृदय शून्य है केन्द्र के न होने सेही पानी तथा वायु और सोममें सत्यत्व उत्पन्न नहीं होता है। इस उदाहरण से पाठकों को यह विदित हो गया होगा कि अग्नि सत्य है और सोम ऋत है। " अग्नीषोमात्मकं जगत् " इस श्रुति वाक्यानुसार संसार अग्नि और सोम मय है और अग्नि में सोमके आहुत होने को यज्ञ कहते हैं।

पाठक-वृन्द अब समझगये होंगे कि यज्ञ किसे कहते हैं, इसका विशद विवेचन अस्म द्रचित " **यज्ञमधुसूदन** " में किया गया है।

प्रकृत में अब हमें यहां इस यज्ञ से पानी की उत्पत्ति बतानी है। सोम की अवस्था विशेष का नाम ही पानी है। इस पानी की उत्पत्ति बताने के लिए वैदिक सृष्टि प्रकरण का कुछ अंश निरूपण करना आवश्यक है।

**" प्रजापतिस्त्वेवेदं सर्वमसृजत, यदिदं किञ्च "** । ( शत० ब्रा० ६।१।११ )
**" प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीदेक एव "** ( ६।१ ३।१ ) इत्यादि।

श्रुति सूक्तियों से सिद्ध होता है कि समस्त विश्व को प्रजापतिने बनाया है। इस प्रजापति के दो भाग हैं— मर्त्य और अमृत। जैसाकि लिखा है—

**" तस्य ह प्रजापतेः अर्धमेव मर्त्यमासी दर्धममृतम् "** ( श. ब्रा. १०।२।२ )
तथा **" उभयं हैतदग्रे प्रजापतिरास, मर्त्यं चैवामृतंच "** ( १०।१।४ )

इन दोनों में से मर्त्यभाग विश्व है और अमृतभाग सत्य है अर्थात् सत्य और यज्ञ भेद से दो तरह का प्रजापति होता है उस में यज्ञ प्रजापति द्वारा यज्ञाधार सत्य प्रजापति का ही वितान होता है। यह बात— " **यज्ञंकृत्वा सत्यं तनवामहै** "– इस श्रुति वाक्य से सिद्ध होती है। इसी सत्यात्मा को षोडशी पुरुष कहते हैं। अव्यय, अक्षर और क्षर की पांच-पांच कलायें तथा एक परात्पर इन्हीं १६ की समष्टि को षोडशी पुरुष कहते हैं। इनमें ज्ञान स्वरूप अव्यय संसार का आलम्बन, कर्मस्वरूप अक्षर निमित्त कारण और अर्थस्वरूप क्षर उपादान कारण है, परात्पर इन तीनों से परे है। पर अव्यय को कहते हैं, यह परसे भी परे है अतः इसे " परात्पर " कहते हैं, हम यहां जल की उत्पत्ति बताने के लिये केवल क्षर आत्मा का ही विवेचन करते हैं।

पुराणों में "ब्रह्मा" शब्द इसी क्षर के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसकी प्राण, आप्, वाक्, अन्न और अन्नाद ये पांच कलायें विश्वसृड् ब्रह्म के नाम से कहलाती हैं। येही कलायें ब्रह्मा के पाँच मुख हैं। इनमें अन्नाद अग्नि है और अन्न सोम है। सोम के अग्निसात् होजाने से ब्रह्मा चतुर्मुख ही बन जाता है। वेद में अग्नि को रुद्र नाम से भी कहा है- "रुद्रो वा एष यदग्निः" इति। रुद्र के द्वारा ब्रह्मा के शिरश्छेद वाली पौराणिक गाथा इसी उक्त विज्ञान के आधार पर रची हुई है। अस्तु। ब्रह्मा की इन पांचों कलाओं का पंचीकरण होता है। अर्थात् पांचों पांचों में आहुत हो जाती हैं। इन पंचीकृत प्राण, आप्, वाक्, अन्न और अन्नाद क्षरों को पंचजन कहते हैं। ये पांचों ( पंचजन ) पांचों में पांचोंकी आहुति होने से पैदा होते हैं अतः इसे सर्वहुत यज्ञ भी कहते हैं। इन पंचजनों का पुनः परस्पर यज्ञ होता है। इस यज्ञ से पांच पुरंजन पैदा होते हैं। इसी को लक्ष्य में रखकर कहागया है— "यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवाः" ( यजुः ) इति। ये उत्पन्न हुए पांच पुरंजन— स्वयंभू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी- इन नामों से कहलाते हैं। इनमें स्वयंभू प्राणमय, परमेष्ठी आपोमय, सूर्यवाङ्मय, चन्द्रमा अन्नमय और पृथ्वी अन्नादमयी है। प्राणमय स्वयंभू से वेदसृष्टि होती है, आपोमय परमेष्ठी से लोकसृष्टि होती है, वाङ्मय सूर्य से देवसृष्टि और अन्न—अन्नादमय चन्द्र—पृथ्वी से भूतसृष्टि होती है। स्वयंभू की वेदसृष्टि प्राणसृष्टि कहलाती है और इसेही- ईश्वर की मानसी सृष्टि कहते हैं। स्वयंभू मंडल में वेदत्रयी ( ऋक्, यजुः, साम ) की सत्ता है। इसमें यजु के यत् भाग को प्राण कहते हैं और जू भाग को वाक्। ये दोनों अन्तरिक्ष वायु के नाम से वेद में प्रसिद्ध हैं, और इन दोनों में एक के विना एक नहीं रह सकता। प्रतिसंचर क्रम में ये अन्तरिक्षवायु शेष रह जाते हैं और ये— प्राण, वाक्, मन के बिना सर्वथा अनुपपन्न है। मन की इच्छा से अन्तरिक्षालम्बन पर ब्रह्माग्निरूप वायु में क्षोभ उत्पन्न होता है और क्षोभ के कारण उस समय वायु में स्वत एव घर्षण होने लगता है। इस घर्षण होने के कारण उस प्राणाग्नि से पानी पैदा होजाता है। अथवा यों समझिए कि वह प्राणाग्नि पानी के स्वरूप में बदल जाता है। अग्नि के कारण ही पानी का संघात और विलयन होता है— इस बात को दार्शनिक भी मानते हैं। जैसे- "अपां संघातो विलयनं च तेजः संयोगात्" ( वैशेषि. ) इति। वेद में भी "अग्नेरापः" इसीलिये कहा है। अस्तु। हमें यहां बताना यही था कि स्वयंभू के ब्रह्माग्नि रूप प्राण से सर्व प्रथम पानी की सृष्टि होती है। इसी सृष्टि विज्ञान को लक्ष्य में रखकर मनुभगवान कहते हैं—

" सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीज मवा सृजत् " ॥ इति. ॥

( मनुस्मृ० १।८ )

हम पहले कह चुके हैं कि स्वयंभू की सृष्टि मानसी सृष्टि है; किन्तु उससे अब यह पानी की सृष्टि विजातीय प्राणों के संगम से पैदा होने के कारण मैथुनी सृष्टि कहलाने लग गई। प्राण मय स्वयंभू से पैदा होने वाले इस आपोमयमंडल को " परमेष्ठी " कहते हैं। यह मंडल जिसे कि कहींपर सरस्वान् समुद्र के नाम से भी कहा है, स्वयंभू से नीचे है और इससे अब आगे सूर्याण्ड ( ब्रह्माण्ड ) की उत्पत्ति होती है। यह आपोमयमण्डल सूर्याण्ड से परम स्थान में है, अतः इसे परमेष्ठी कहते हैं। आप् की उत्पत्ति एवं निरुक्ति बताती हुई श्रुति इस प्रकार उपर्युक्त प्रकरण की पुष्टि करती है।

" आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त कथं नु प्रजायेमहीति। ता अश्राम्यँस्तास्तपोऽतप्यन्त, तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्मयमाण्डं संबभूव। "

( शत० ११।१।६।१ )

अन्यच्च–"सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत—भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्, स तपोऽतप्यत। सश्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। सैवास्मै प्रतिष्ठाऽभवत्। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत। सेदं सर्वमाप्नोद्यदिदं किञ्च। यदाप्नोत्तस्मादापः। यदवृणोत् तस्माद्वाः। सोऽकामयत। आभ्योऽद्भ्योऽधिप्रजायेयेति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्तत आण्डं समवर्तत " ( शत० ६।१।१ ) इति।

अपिच–" ता अर्चन्त्यः श्राम्यन्तश्चेरुः। तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्योयज्ञमपश्यत्............स आपोऽभवत्। आपो वा इदं सर्वम्, ता यत् परमेस्थाने तिष्ठन्ति। परमाद्वा एतत्स्थानाद्वर्षति यद्दिवस्तस्मात् परमेष्ठी नाम "। ( शत० ११।१।६ ) इति।

परमेष्ठी के इस पानी को- जिसे हम पीते हैं- वह पानी नहीं समझना चाहिये। परमेष्ठी के इस पानी को प्रारम्भ में बताया हुआ ऋत तत्त्वही समझना चाहिये। यह ऋत तत्त्व इस मंडल का मनोता है। भृगु, अंगिरा और अत्रि-यही इसका स्वरूप है। इनमें भृगु की जो घन,

तरल और विरल ये ३ अवस्थायें हैं, इन्हीं को क्रमसे आप्, वायु और सोम कहते हैं। इसीलिये कहा भी है—

" आपो भृग्वङ्गिरो रूपमापो भृग्वङ्गिरो मयम् ।
अन्तरेते त्रयो वेदा भृगूनङ्गि रसः श्रिताः " ॥

तथा—" तृतीयस्यां वै दिवि सोम आसीत् " ।

तथा—" ऋतमेव परमेष्ठी, ऋतं नात्येति कश्चन ।
ऋते समुद्र आहित, ऋते भूमिरियं श्रिता " ॥ इति ॥

उपर्युक्त आप्-वायु-सोम में जो आप् है वह भी वायु रूप ही है। केवल आप् ( पीने के जल ) के आरंभक होने के कारण इसे आप् कह दिया गया है। असल में सूर्य मण्डल से ऊपर वाले इस आप् को " अंभः " कहते हैं और पीनेवाले जल को ' मर ' कहते हैं। पुराणों में सूर्य-मण्डल ब्रह्माण्ड नाम से कहा गया है। यह अंभः पानी परमेष्ठि मण्डल से ब्रह्माण्ड का भेदन करके इस पृथ्वीलोक में आता है। परमेष्ठिलोक, विष्णुलोक कहलाता है। बस, यही विज्ञान गङ्गोद्गम का मूल समझना चाहिये। इसका विशद विवेचन हमारे अन्य ग्रंथों में देखना चाहिये। गंगा-जल में यही अंभः पानी है। यद्यपि इसका संपर्क सभी पानियों में है, किन्तु गंगाजल में सब से अधिक मात्रा में है और गंगाजल का साक्षात् संबन्ध इसी पारमेष्ठ्य अंभः सोम से है। इस अंभः पानी के और इस परमेष्ठी लोक के पवमान नामक वायु के मेल से यह मर नामक स्थूल पानी ( पीने का पानी ) बनता है। इन्हीं को आज कल पाश्चात्य विज्ञान में हाइड्रोजन ( Hydrogen ) और आक्सीजन ( Oxygen ) कहते हैं। प्रकृति के अनुसार यह सर्व प्रथम स्वतः इस परमेष्ठि-लोक से इससे नीचे वाले सूर्यलोक में आता है और सूर्याण्ड ( ब्रह्माण्ड ) का भेदन करके सीधा पृथ्वीलोक की तरफ आने के लिए सूर्य-किरणों में प्रतिष्ठित होजाता है। सूर्य आग्नेय होने के कारण इस आये हुये विजातीय पानी को अपनी उष्णरश्मियों से धक्का देकर फैंक देता है। उत्तर में सोममय चन्द्रमा है और दक्षिण में यमाग्नि है, अत एव यह पानी दक्षिण में न जाकर सजातीय आकर्षण के कारण उत्तर में चन्द्रमंडल में ठहर जाता है और फिर यहाँ से चान्द्ररश्मियों से चूकर भूलोक में अवतीर्ण होता है। भूलोक में आया हुआ यह पानी प्रति संचर क्रम से फिर सूर्यरश्मियों द्वारा भाप के रूप में उड़ाया जाकर ऊपर आकाश में सूर्य-किरणों के अन्दर प्रतिष्ठित होजाता है और फिर यह पानी आठ मास तक वहां रहकर तथा आकाश वायु से इतस्ततः दिशा-

ओं में फैलाया जाकर समय समय पर भिन्न भिन्न स्थानों में कई निमित्तों से अल्प और अधिक मात्रा में पृथ्वी पर बरस जाता है। इसीलिये उपर्युक्त क्रम को लक्ष्य में रखकर यह कहा गया है–

" अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टि र्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः " ॥ इति ॥

तैत्तिरीय संहिता में भी इसी विज्ञान के उद्देश्य से यह कहा गया है—

" अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति मरुतः सृष्टां नयन्ति ।
यदा खलु वा असावादित्योन्यङ्रश्मिभिः पर्यावर्त्तते अथ वर्षति " ।

( तै० सं० २।४।१० ) । इति ।

इसी वर्षा के जानने के लिये निमित्त ज्ञान की आवश्यकता होती है। संसार में निमित्त के सहारे से ही सब कार्य होते रहते हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि कोई भी घटना बिना किसी निमित्त के नहीं होती है। उसका कोई न कोई निमित्त अवश्य ही होता है। घटना के निमित्त का पहले से ही यदि ज्ञान रहे तो मनुष्य निमित्त के उपस्थित होने पर घटना से लाभ उठाने के लिए सन्नद्ध हो सकता है। निमित्त ज्ञान के आधार पर ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य रूप ज्ञान के बोधक धर्म्म शास्त्र की भी उपपत्ति है। सर्व शास्त्रों का आधार भूत यह शास्त्र सब में प्रधान है।

व्यवहार के विविध विषयों के विविध निमित्तों के सम्बन्ध से निमित्त शास्त्र विविध प्रकार का है। एक प्रकरण ऐसा भी है, जिसमें अन्नों का परस्पर सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकरण का ज्ञाता-व्यक्ति एक नियत क्षेत्र में और नियतकाल में अन्न विशेष की उत्पत्ति करके कह सकता है कि विविध प्रकार की भूमियों में भिन्न भिन्न प्रकार के अन्न कितनी कितनी मात्रा में बोये गये हैं और ये कितनी कितनी मात्रा में अन्न की प्राप्ति करायेंगे। यह प्रकरण अन्न विद्याबोधक निमित्त शास्त्र है। इस प्रकार भिन्न भिन्न निमित्त शास्त्र ६४ प्रकरणों में विभक्त हैं। इन निमित्त शास्त्रों में वृष्टि के निमित्तों का बोध कराने वाला एक "वृष्टि विद्या बोधक निमित्त शास्त्र " भी है। हम पहिले कह आये हैं कि सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी पर से जल को ऊपर खींच लेता है अर्थात् सूर्य की गरमी से जल के परमाणु सूक्ष्म बनकर ऊँचे चले जाते हैं और उन के साथ आकाश वायु के परमाणु आदि मिलकर बादल बन जाते हैं फिर वे बादल वायु की प्रेरणा से जिस जिस देश में तथा जिस जिस काल में जितना जितना जल बरसना होता है उतना उतना वहाँ बरसते हैं। परन्तु किस समय का खींचा हुआ जल कितने समय के पीछे कितने दिन तक कितना

किस समय कहाँ कहाँ बरसेगा— इत्यादि बातों का बतानेवाला यह ऊपर कहा हुआ "वृष्टिविद्या बोधक निमित्तशास्त्र" है।

इस शास्त्र में वर्षा के निमित्त-भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र-इन ४ भेदों में विभक्त हैं-

१— देश, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग प्रभृति भौतिक चीजों के द्वारा वर्षा के ज्ञान होने को भौतिकनिमित्त कहते हैं।

२— वायु, बादल, विद्युत्, गर्जन, तर्जन, सन्ध्या, दिग्दाह, प्रतिसूर्य, तारा, कुण्डल, आँधी, गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष, वायुधारणा आदि से वर्षा के ज्ञान होने को आन्तरिक्षनिमित्त कहते हैं।

३— सूर्य-चन्द्रग्रहण, पुच्छलतारे, सूर्य के चिन्ह, सप्तनाड़ीचक्र, ग्रहों का उदयास्त संक्रान्ति आदि से वृष्टि के ज्ञान प्राप्त करने को दिव्यनिमित्त कहते हैं।

४— कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनों के प्रत्येक दिनों के तथा विशेष रूप से खास-खास अक्षयतृतीया, आषाढ़ीपूर्णिमा, होलिका आदि के शकुनों तथा उपर्युक्त चिन्हों से वर्षा के ज्ञान करने को मिश्रनिमित्त कहते हैं।

इन निमित्तों में भौमनिमित्त की अपेक्षा आन्तरिक्षनिमित्त, और आन्तरिक्ष की अपेक्षा दिव्यनिमित्त- इस तरह उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक बलवान है। क्योंकि भौमनिमित्त का फल बहुधा थोड़ीही दूरतक, आन्तरिक्ष का फल एक जिलेतक, दिव्यनिमित्त का फल एक प्रान्ततक और मिश्रनिमित्त का फल सर्वत्र होता है। इनमें प्रायः भौमनिमित्तों से सद्योवृष्टि का ज्ञान हो जाता है।

इन चारों निमित्तों के लिए— विशेष कर दिव्य और मिश्रनिमित्तों की परीक्षा के लिए सर्वप्रथम खगोलीय ग्रहनक्षत्र स्थिति जानना परमावश्यक है। इसके ज्ञान बिना सहसा कोई निमित्त निश्चित कर लेना दुष्कर है। अतः पाठकों के आगे खगोलविद्या के संबन्ध में कुछ ग्रहनक्षत्र-स्थिति का दिग्दर्शन करादेना अप्रासंगिक न होगा।

वेदशास्त्र में पृथ्वी का घूमना और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य का स्थिर रहना मानागया है। इस विषय का विशेष विवेचन अस्मद्रचित "अहोरात्रवाद" में देखना चाहिये। यह पृथ्वी जिस अपने निश्चित मार्ग पर सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, उसे "क्रान्तिवृत्त" कहते हैं। अर्थात् यह पृथ्वीपिण्ड सूर्य को केन्द्र बनाकर जिस वृत्त पर चारों ओर चक्कर लगाता है, वह "क्रान्तिवृत्त" कहलाता है। परिभ्रमणवृत्त के बीचों बीच एक रेखा की कल्पना की गई है, जिसे वेद में "बृहति

(वृत्त )" छन्द और ज्यौतिष में विषुवद् वृत्त, तथा अंग्रेजी में इक्वेटरलाइन ( Equator line ) कहते हैं। सूर्य इसी विषुवद्वृत्त के, जिसे बृहतीवृत्त भी कहते हैं, मध्यमें तपता है। अतएव वेद में यह कहा गया है।

" सूर्यो बृहतिमध्यूढस्तपति " तथा " स वा एष संवत्सरो बृहतिमभिसंपन्नः " ( शत० १२।७।१ )

यहां इस सूर्य में कितना प्रचंड उष्णत्व है; इसका अनुमान करना भी दुरूह है। सूर्य से आई हुई उष्णता का पृथ्वी पर लगभग चारखरबवाँ अंश है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि सौर-जगत् में जितनी उष्णता फेंकी जाती है, उसका दशकरोड़वाँ हिस्सा ग्रहों को मिलता है। इस प्रचण्ड-मार्त्तण्ड की उष्णता से हम लोग भस्मसात् क्यों नहीं हो जाते, इसका एक मात्र कारण यही है कि हम सूर्य से करीब १,१६,१२,५०० योजन के फासले पर हैं। अस्तु, हमें बताना यही था कि यह सहस्रदीधिति भगवान् अपने पूर्णतेज से इस विषुवद्वृत्त के मध्यमें तपते हैं। खगोल इस विषुवत् से आधा उत्तर में और आधा दक्षिण में है। इसके उत्तर भाग में १२,८, ४ क्रमशः इन अंशों के अन्तर पर क्रान्ति-वृत्त को काटते हुये तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं और इसी तरह इस विषुवत् के दक्षिण भाग में क्रान्तिवृत्त को काटते हुए १२, ८ और ४ अंशों के अन्तर पर क्रमशः तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं। इस प्रकार कुल ६ पूर्वापर वृत्त बनजाते हैं, सातवाँ स्वयं विषुवत् है। इस तरह सब मिलाकर सात पूर्वापर वृत्त हो जाते हैं। इन्हीं को अहोरात्रवृत्त कहते हैं। येही सातों वेद में गायत्री, उष्णि-क्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती– इन छन्दों के नाम से सूर्य के सात घोड़े प्रसिद्ध हैं। क्रान्तिवृत्त नाम का सूर्य के रथ का एक पहिया है। छन्दः और वृत्त ये दोनों शब्द एकार्थ-वाची हैं, अतः सप्तवृत्त या सप्तछन्द ये दोनों ही शब्द प्रयोग में आते हैं। उत्तर में सब से बड़ा जगती और दक्षिण में सब से छोटा गायत्री–छन्द नाम का घोड़ा है, बीचवाला बृहतीछन्द सब से बड़ा है। यद्यपि मध्य का बृहतीछन्द ( विषुवद्वृत्त ) सब से बड़ा है, एवं दक्षिण तथा उत्तर के छन्द एक दूसरे के बराबर हैं, तथापि दृश्यमण्डल के अनुरोध से जगती को सब से बडा और गायत्री को सब से छोटा माना है। छन्दः की अक्षर गणना से भी देखा जाय तो जगतीछन्द ४८ अक्षरों का और गायत्रीछन्द २४ अक्षरों का ही होता है।

अस्तु, हमें यहाँ इस वैदिक प्रणाली के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं। हमें तो बताना यही था कि क्रान्तिवृत्त को काटते हुए जो सात पूर्वापर वृत्त बनते हैं, इनको खगोल विद्या में क्रम से कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन और मकरवृत्त कहते हैं। इनमें उत्तर भाग का सब से आख़िरी कर्कवृत्त कहलाता है और दक्षिण भाग का सब से अन्तिम मकरवृत्त

नाम से प्रसिद्ध है। इसी के संबन्ध से मकरसंक्रान्ति होती है। हम ऊपर लिख आए हैं कि विषुवद्वृत्त से उत्तर और दक्षिण में १२, ८ और ४ अंशों के अन्तर पर तीन तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं। इन वृत्तों के सब अंशों को यदि जोड़लिया जाय तो दोनों भागों के कुल मिलकर ४८ अंश होजाते हैं। इस ४८ अंशात्मक भाग की आखिरी सीमा को घेरता हुआ जो दीर्घवृत्त बनता है इसे ही ऊपर बताया हुआ क्रान्तिवृत्त समझना चाहिये। अश्विनी आदि २८ नक्षत्र तथा बुध, बृहस्पति, शुक्र प्रभृति ग्रहराशिगण इसी ४८ अंश के परिसर के भीतर घूमा करते हैं। इन २८ नक्षत्रों में अभिजित् संधिभाग में पड़जाता है। अतः कुल २७ नक्षत्र माने जाते हैं। ये नक्षत्र दक्षिण भाग में छोटे, मध्यभाग में मध्यम और उत्तरभाग में स्थूल हैं। ये अश्विन्यादि २८ नक्षत्र जिस वृत्तपर हैं, उस चान्द्रकक्षा को 'दक्षवृत्त' कहते हैं। दशों दिशाओं से प्रस्तुत '**प्रचेता**' नामक रसों के संयोग से पैदा होने वाला दिक्सोममय प्राचेतसप्राण "दक्ष" कहलाता है। इस दक्ष के ६० कन्यायें हैं। "**अग्निर्वृषा, योषा सोमः**' इस परिभाषानुसार योषा रूप प्राण समूह दक्ष-वृत्त के ६० हिस्से ही ६० कन्या मानी गई हैं। अतएव "**ददौ स दश धर्माय, कश्यपायत्रयोदश**" इत्यादि पौराणिक वचनानुसार पृथक् पृथक् धर्म्म-कश्यपादि योषा प्राण के उपभोगानुरोध से सौम्य-प्राणमय यह दक्षवृत्त २७, १०, १३, २, २, २, ४ इन सात विभागों में विभक्त हैं। चन्द्रमा के अनुरोध से २७ विभाग ही अश्विनी आदि २७ नक्षत्र समझने चाहिए। अरिष्ट के हिसाब से इस नक्षत्र मण्डल के ४ विभाग किए गए हैं। जैसा कि वेद में कहा है—

> "**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।**
> **स्वस्ति न स्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातुः**" ॥

यहाँ वृद्धश्रवा से चित्रा नक्षत्र अभिप्रेत है, जो कि पूर्व खस्वस्तिक माना गया है। पूषा रेवती है, यह पश्चिम खस्वस्तिक है। उत्तर खस्वस्तिक तार्क्ष्य है। '**त्रयाणां ऋक्षाणां समूहस् तार्क्ष्यम्**' तीन नक्षत्रों के समूह को तार्क्ष्य कहते हैं, यह तार्क्ष्य श्रवणतारा है। इसी प्रकार दक्षिण खस्वस्तिक बृहस्पति ( लुब्धक बन्धु ) है। इन चार खस्वस्तिक में संपूर्ण नक्षत्र मण्डल विभक्त हैं। यह एक दूसरा नक्षत्र सन्निवेश का क्रम है। इसी तरह यह मण्डल दैव और आसुर भेद से भी विभक्त है। इस क्रम में अश्विनी से चित्रा तक देवमंडल है। इसमें उत्पन्न हुआ प्राणी दैवी संपत्तिवान् होता है। जैसा कि गीता में लिखा है—

> "**दैवीसंपद् विमोक्षाय, बन्धनायासुरीमता ।**
> **दैवीसंपत्ति मभिजातोऽसि**" । इत्यादि ॥

( वृत्त )" छन्द और ज्यौतिष में विषुवद्वृत्त, तथा अंग्रेजी में इक्वेटरलाइन ( Equator line ) कहते हैं। सूर्य इसी विषुवद्वृत्त के, जिसे बृहतीवृत्त भी कहते हैं, मध्यमें तपता है। अतएव वेद में यह कहा गया है।

" सूर्यो बृहतिमध्यूढस्तपति " तथा " स वा एष संवत्सरो बृहतिमभिसंपन्नः " ( शत० १२।७।१ )

यहां इस सूर्य में कितना प्रचंड उष्णत्व है; इसका अनुमान करना भी दुरूह है। सूर्य से आई हुई उष्णता का पृथ्वी पर लगभग चारखरबवाँ अंश है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि सौर-जगत् में जितनी उष्णता फेंकी जाती है, उसका दशकरोड़वाँ हिस्सा ग्रहों को मिलता है। इस प्रचण्ड-मार्त्तण्ड की उष्णता से हम लोग भस्मसात् क्यों नहीं हो जाते, इसका एक मात्र कारण यही है कि हम सूर्य से करीब १,१६,१२,५०० योजन के फासले पर हैं। अस्तु, हमें बताना यही था कि यह सहस्रदीधिति भगवान् अपने पूर्णतेज से इस विषुवद्वृत्त के मध्यमें तपते हैं। खगोल इस विषुवत् से आधा उत्तर में और आधा दक्षिण में है। इसके उत्तर भाग में १२,८, ४ क्रमशः इन अंशों के अन्तर पर क्रान्ति-वृत्त को काटते हुये तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं और इसी तरह इस विषुवत् के दक्षिण भाग में क्रान्तिवृत्त को काटते हुए १२, ८ और ४ अंशों के अन्तर पर क्रमशः तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं। इस प्रकार कुल ६ पूर्वापर वृत्त बनजाते हैं, सातवाँ स्वयं विषुवत् है। इस तरह सब मिलाकर सात पूर्वापर वृत्त हो जाते हैं। इन्हीं को अहोरात्रवृत्त कहते हैं। येही सातों वेद में गायत्री, उष्णि-क्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती– इन छन्दों के नाम से सूर्य के सात घोड़े प्रसिद्ध हैं। क्रान्तिवृत्त नाम का सूर्य के रथ का एक पहिया है। छन्दः और वृत्त ये दोनों शब्द एकार्थ-वाची हैं, अतः सप्तवृत्त या सप्तछन्द ये दोनों ही शब्द प्रयोग में आते हैं। उत्तर में सब से बड़ा जगती और दक्षिण में सब से छोटा गायत्री–छन्द नाम का घोड़ा है, बीचवाला बृहतीछन्द सब से बड़ा है। यद्यपि मध्य का बृहतीछन्द ( विषुवद्वृत्त ) सब से बड़ा है, एवं दक्षिण तथा उत्तर के छन्द एक दूसरे के बराबर हैं, तथापि दृश्यमण्डल के अनुरोध से जगती को सब से बडा और गायत्री को सब से छोटा माना है। छन्दः की अक्षर गणना से भी देखा जाय तो जगतीछन्द ४८ अक्षरों का और गायत्रीछन्द २४ अक्षरों का ही होता है।

अस्तु, हमें यहाँ इस वैदिक प्रणाली के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं। हमें तो बताना यही था कि क्रान्तिवृत्त को काटते हुए जो सात पूर्वापर वृत्त बनते हैं, इनको खगोल विद्या में क्रम से कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन और मकरवृत्त कहते हैं। इनमें उत्तर भाग का सब से आखिरी कर्कवृत्त कहलाता है और दक्षिण भाग का सब से अन्तिम मकरवृत्त

नाम से प्रसिद्ध है। इसी के संबन्ध से मकरसंक्रान्ति होती है। हम ऊपर लिख आए हैं कि विषुवद्वृत्त से उत्तर और दक्षिण में १२, ८ और ४ अंशों के अन्तर पर तीन तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं। इन वृत्तों के सब अंशों को यदि जोड़लिया जाय तो दोनों भागों के कुल मिलकर ४८ अंश होजाते हैं। इस ४८ अंशात्मक भाग की आखिरी सीमा को घेरता हुआ जो दीर्घवृत्त बनता है इसे ही ऊपर बताया हुआ क्रान्तिवृत्त समझना चाहिये। अश्विनी आदि २८ नक्षत्र तथा बुध, बृहस्पति, शुक्र प्रभृति ग्रहराशिगण इसी ४८ अंश के परिसर के भीतर घूमा करते हैं। इन २८ नक्षत्रों में अभिजित् संधिभाग में पड़जाता है। अतः कुल २७ नक्षत्र माने जाते हैं। ये नक्षत्र दक्षिण भाग में छोटे, मध्यभाग में मध्यम और उत्तरभाग में स्थूल हैं। ये अश्विन्यादि २८ नक्षत्र जिस वृत्तपर हैं, उस चान्द्रकक्षा को 'दक्षवृत्त' कहते हैं। दशों दिशाओं से प्रस्तुत '**प्रचेता**' नामक रसों के संयोग से पैदा होने वाला दिक्सोममय प्राचेतसप्राण "दक्ष" कहलाता है। इस दक्ष के ६० कन्यायें हैं। "अग्निर्वृषा, योषा सोमः' इस परिभाषानुसार योषा रूप प्राण समूह दक्ष-वृत्त के ६० हिस्से ही ६० कन्या मानी गई हैं। अतएव "**ददौ स दश धर्माय, कश्यपायत्रयोदश**" इत्यादि पौराणिक वचनानुसार पृथक् पृथक् धर्म्म-कश्यपादि योषा प्राण के उपभोगानुरोध से सौम्य-प्राणमय यह दक्षवृत्त २७, १०, १३, २, २, २, ४ इन सात विभागों में विभक्त हैं। चन्द्रमा के अनुरोध से २७ विभाग ही अश्विनी आदि २७ नक्षत्र समझने चाहिए। अरिष्ट के हिसाब से इस नक्षत्र मण्डल के ४ विभाग किए गए हैं। जैसा कि वेद में कहा है—

" स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति न स्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातुः" ॥

यहाँ वृद्धश्रवा से चित्रा नक्षत्र अभिप्रेत है, जो कि पूर्व खस्वस्तिक माना गया है। पूषा रेवती है, यह पश्चिम खस्वस्तिक है। उत्तर खस्वस्तिक तार्क्ष्य है। '**त्रयाणां ऋक्षाणां समूहस् तार्क्ष्यम्**' तीन नक्षत्रों के समूह को तार्क्ष्य कहते हैं, यह तार्क्ष्य श्रवणतारा है। इसी प्रकार दक्षिण खस्वस्तिक बृहस्पति (लुब्धक बन्धु) है। इन चार खस्वस्तिक में संपूर्ण नक्षत्र मण्डल विभक्त हैं। यह एक दूसरा नक्षत्र सन्निवेश का क्रम है। इसी तरह यह मण्डल दैव और आसुर भेद से भी विभक्त है। इस क्रम में अश्विनी से चित्रा तक देवमंडल है। इसमें उत्पन्न हुआ प्राणी दैवी संपत्तिवान् होता है। जैसा कि गीता में लिखा है—

" दैवीसंपद् विमोक्षाय, बन्धनायासुरीमता ।
दैवीसंपत्ति मभिजातोऽसि " । इत्यादि ॥

यज्ञ जन्य दैवात्मा का स्वरूप यथावत् सिद्ध करने के लिए यज्ञ यागादि दैविक कार्य इसी दैवमण्डल में करने चाहिए । इसीलिये यजमान यज्ञारंभ में— "अश्विनोर्बाहुभ्यांपूष्णो हस्ताभ्यां त्वां ऽऽ ददे नार्य्यसि" यह मन्त्र पढ़कर दैवमण्डल को ध्यान में लाता है ।

इस दैवमण्डल के प्रतिपक्ष में विशाखासे भरणी तक आसुरमण्डल है । अतः इसमें आसुरमण्डल की प्रधानता है । इसमें उत्पन्न हुआ प्राणी आसुरसंपत्ति की प्रधानता से क्रूरकर्मा होता है । मारणोच्चाटनादि तंत्रोक्त क्रूरकार्य इसीलिये इस मण्डल में किये जाते हैं ।

ये कुल नक्षत्र १- तारानक्षत्र[५] २- ताराव्यूहनक्षत्र[४] ३- खदेशनक्षत्र,[३] ४- गतिनक्षत्र[२] और ५- सांपातिकनक्षत्र[१] इन भेदों से पाँच प्रकार के होते हैं ।

१-जिस नक्षत्र पर वसन्तसंपात होता हो उससे शुरू करके, जितनी प्रतिदिन की चंद्र-गति होती है उतनी दूर के प्रदेश को सांपातिक नक्षत्र कहते हैं । ये २८ नक्षत्र होते हैं । इस संपात-विन्दु के अस्थिर होने के कारण यह नक्षत्र प्रदेश का विभाग अस्थिर समझा गया है । क्योंकि शतपथ निर्म्माण काल में कृत्तिका नक्षत्र पर वसंतसंपात मानागया है, इसके बाद कौषितक-ब्राह्मण के रचनाकाल में रोहिणी पर वसंतसंपात समझा गया, फिर किसी समय पर मृगशिर-नक्षत्र पर वसन्तसंपात माना जाने लगा और अब आजकल कृत्तिका से ५ नक्षत्र हटकर उत्तरा-भाद्रपद पर यह वसन्तसंपात माना जाता है । जिस समय जहां से संपात होता है, वहीं से वर्षा-रंभ होता है । यह हुआ सांपातिक नक्षत्रों का क्रम ।

२-दूसरे गतिनक्षत्र हैं, ये प्रतिदिन की चान्द्रगति के प्रदेश के हिसाब से २७ माने जाते हैं, क्योंकि इसमें अभिजितनक्षत्र के प्रदेश के अत्यल्प रहजाने के कारण यह गणना किई गई है ।

३-यदि किसी नियत बिन्दु से नियताकाश को सम विभाग से नियत परिमाण में विभक्त किया जाय तो उस नियत प्रदेश में रहने वाले नक्षत्र को खदेश नक्षत्र कहेंगे । जैसेकि १३ अंश २० कला के प्रदेश को नक्षत्र मानकर रेवत्यन्त अंशावच्छिन्न प्रदेश से क्रान्तिवृत्त के १८० अंश की कल्पना करके २८ विभागों में विभक्त कियाजाय तो उस नियत प्रदेश में स्थित नक्षत्रों को खदेश नक्षत्र कहेंगे । नियताकाश में स्थित रहने के कारण ये स्थिर नक्षत्र कहलाते हैं ।

४-असंख्य ताराओं में तत्तन्नक्षत्रों को पहिचानने के लिए तत्तन्नक्षत्र समष्टि से कल्पित मूर्तिमय नक्षत्रव्यूह को ताराव्यूह कहते हैं । जैसे तीन तारावाले अश्विनी नक्षत्र को पहिचानने

के लिये अश्वमुखाकृति की कल्पना करली गई है। इसी तरह भरणी, कृत्तिका आदि में भी समझ लेना चाहिये।

५-अनेक ताराओं से कल्पित ताराव्यूह में रहने पर भी इन प्रत्येक ताराओं का योगतारा एक ही माना जाता है। इस योगतारा को तारानक्षत्र कहते हैं, जैसे शतभिषा के सौ तारे होने पर भी उसका योगतारा एक शतभिषा माना जाता है। इस तरह यह नाक्षत्रिक विभाग समझना चाहिये।

इन नक्षत्रों को समझाने के लिये आचार्यों ने ज्यौतिषशास्त्र में पूर्वोक्त विषुवद्वृत्त के दक्षिणोत्तर में १२, ८, ४ अंशों के अन्तर पर बने हुए तीन तीन पूर्वापर वृत्तों के ४८ अंशवाले मार्गके तीन मार्ग बना डाले हैं- १- ऐरावत, २- जरद्गव और ३- वैश्वानर। ये तीन मार्ग बड़े हैं। इन में तीन तीन नक्षत्रों के हिसाब से फिर ६ छोटे मार्ग बनाए गये हैं जिन्हें वीथियाँ ( गलियाँ ) कहते हैं। येही ६ वीथियाँ ९ नाड़ीवृत्त हैं। जिस प्रकार सूर्य रथ का संबन्ध सात पूर्वापर अहोरात्रवृत्तों से है उसी तरह चन्द्रमा के रथ का संबन्ध इन ६ नाड़ी वृत्तों से है। इन वीथियों के नाम तथा इनमें नक्षत्रों का सन्निवेशक्रम इस प्रकार है—

१-भरणी, कृत्तिका, स्वाति की नागवीथी; २- रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा की गजवीथी; ३- पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा की ऐरावतवीथी; ४- मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी की वृषवीथी; ५- पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी की गोवीथी; ६- श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा की जारद्गववीथी; ७- अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल की मृगवीथी; ८- हस्त, चित्रा, बिशाखा की अजवीथी; और ९- पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ की वैश्वानरवीथी होती है। क्रान्तिवृत्त के दक्षिण भाग की आखिरी सीमा वैश्वानरवीथी है और क्रान्तिवृत्त के उत्तर भाग की आखिरी सीमा नागवीथी समझनी चाहिये। इन ऊपर बताई हुई नाग, ऐरावत, गज इन तीन वीथियों का उत्तरमार्ग; वृष, गो, जारद्गव-इन वीथियों का मध्यमार्ग और मृग, अज, वैश्वानर इन वीथियों का दक्षिणमार्ग है। इन प्रत्येक मार्गकी तीन तीन वीथियोंमें भी पहिलीवीथी उस मार्ग के उत्तर में, दूसरी उस मार्ग के मध्य में और तीसरी उस मार्ग के दक्षिण में समझनी चाहिये। क्रान्तिवृत्त के उत्तर भाग में ४२ अंश का अन्तरिक्ष धर्मशास्त्र-पुराण आदि में वर्णित "देवयान" मार्ग है। इस के आगे ही सप्तर्षिमण्डलकी स्थिति है। विषुवद्रेखा से ९० अंश उत्तर की ओर उत्तरीय ध्रुवकी स्थिति है और उसी रेखा से ९० अंश दक्षिण की ओर दक्षिण ध्रुव की स्थिति है। यह सप्तर्षिमण्डल इस उत्तरीय ध्रुव से २४ अंश के अन्तर पर घूमता है। यहांतककी देवयान की स्थिति समझनी चाहिये। वैश्वानर-

वीथी क्रान्तिवृत्त की अन्तिम सीमा है। इसके आगे ४२ अंशात्मक " पितृयाण " मार्ग है। दक्षिण-ध्रुव से २४ अंश उत्तर की ओर अगस्त्य का तारा है, इस अगस्त्यतारा से उत्तर एवं वैश्वानर-वीथी से दक्षिण पितृयाण की स्थिति समझनी चाहिये। इसीलिये भगवान् वेदव्यास लिखते हैं—

" उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयाणः सवै पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः ॥
नागवीथ्युत्तरं यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयान इति स्मृतः ॥ " इति।

अस्तु। विषय का विस्तार बहुत बढगया, अतः इस प्रकरण को यहां ही समाप्त करते हैं। हमें केवल यही बतानाथा कि वृष्टि-विद्या संबन्धी निमित्तशास्त्र में प्रवेश करने के पूर्व ग्रह नक्षत्र प्रभृति की स्थिति जानलेना अत्यावश्यक है, जिसका कि कुछ दिग्दर्शन हमने पाठकों के सौकर्य के लिये यहां कर दिया है।

प्राचीन समय में इस विद्या के विद्वान् उपर्युक्त चार निमित्तों के आधार पर सद्यः होनेवाली एवं विलम्ब में होनेवाली वर्षा का तथा इसी के आश्रय से सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, महामारी आदि का भी बहुत समय पूर्वही निश्चय करलिया करते थे कि अमुक अमुक देशों में अमुक अमुक समय पर, इतनी मात्रा में, वर्षा होगी और इस प्रकार का सुभिक्ष, दुर्भिक्ष होगा। इतना ही नहीं, बल्कि वेतो अवर्षा, अल्पवर्षा, अधिक वर्षा आदि दैवकोप की शान्ति के लिये ठीक ठीक प्रबन्ध भी कर लिया करते थे। आजकल के पाश्चात्य विद्वान्, जोकि हमारे चारों निमित्तों के कई पदार्थों में से केवल आन्तरिक्षनिमित्त के एक वायु के ही ज्ञान को ( संभवतः वह भी पूरा नहीं. ) केवल सद्यो वृष्टिमात्र बताने वाले एक भाग को जानने में पर्याप्त धन खर्च कर बैठते हैं, इनकी तरह हमारे प्राचीन नैमित्तिक दैवज्ञों को इतने अपव्यय करने की न आवश्यकता ही होती थी और न इतना परिश्रम ही उन्हें उठाना पड़ता था। वे विद्वान् कार्तिकशुक्ला प्रतिपदा से कार्तिककृष्णा अमावास्यातक के बारह महीनों की एक डायरी रखते थे, जिस में प्रतिदिन के प्रत्येक समय के चारों निमित्तों को यथावत् लिखते रहते थे और फिर उसी के अनुसार फल बता दिया करते थे। परन्तु आजकल कुछ समय से इन नैमित्तिक विद्वानों को राजा महाराजाओं आदि से सहायता न मिलने के कारण यह विद्या भारतवर्ष से लुप्तप्राय होगई है, और प्रायः सबही विद्वान् इस विद्या को छोड़ बैठे। अतः आजकल वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदि का ज्ञान केवल पंचाङ्ग के आधार पर ही रह गया। अब भी यदि हमारी वृष्टिविद्या के चारों निमित्तों के आधार पर वृष्टिफल के देखने का पुनः प्रयत्न किया जाय, एवं एतदर्थ स्कूल, कालेजों आदि

में ज्यौतिष आदि अन्य विषयों के साथ साथ इस विद्या के पढ़ाने का भी पाठ्यक्रम नियत किया जाय तो मुझे आशा ही नहीं, बल्कि पूरा विश्वास है कि विद्वान् लोग इस में पूरी सफलता प्राप्त करके इस देश में इस विद्या को फिर से चमका सकते हैं। और धन तथा मान प्राप्त कर सकते हैं।

हाँ, यह बात अवश्य है कि ऋषि, महर्षियों के इस विद्या के सिद्धान्त भिन्न भिन्न ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रणाली से प्रतिपादित हैं, उनमें से कई तो अब अलभ्य ही हैं; जो हैं उनमें भी प्राचीन पद्धति के अनुसार विषयों का प्रतिपादन बडे दुरूह क्रम से किया हुआ है, जिससे कोई सहसा लाभ नहीं उठा सकता और न सहसा उसके पढ़ने का साहस ही कर सकता है। ज्यौतिषशास्त्र के कई लभ्य ग्रन्थ ऐसे हैं. जिनमें इस विषय का भी प्रतिपादन किया गया है; किन्तु उनमें भी कई जगह मत भेद सा दीख पड़ता है। जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष का प्रायः सबही ग्रन्थों में झगड़ा देखने में आता है। कारण यह है कि कई तो पुराणाचार्य अमान्तमास मानते हैं और कई पूर्णिमान्त मास के पक्षपाती बनते हैं। इनमें शुक्लपक्षतो दोनों ही का एक मिल जाता है, परन्तु कृष्णपक्षमें एक महीने का अन्तर पड़ जाता है। क्योंकि कृष्णपक्ष की आदि से मासारंभ मानने वालों ने जहाँ चैत्रकृष्ण लिखा है; उसी को शुक्लपक्ष की आदि से मासारंभ मानने वालोंने फाल्गुनकृष्ण लिखा है। इस तरह कई जगह उसकी परिभाषा जाने बिना यह संदेह होजाता है कि कौनसा पाठ कृष्णपक्षादि से है और कौनसा शुक्लपक्ष के प्रारम्भ से है। यह निश्चितरूप से जाने बिना तिथियों के फल देखने में बहुत संदेह रह जाता है और फल भी ठीक ठीक नहीं मिलता।

यह प्रस्तुत पुस्तक, मैंने इन्हीं उपर्युक्त झगड़ों के दूर करने के लिये प्राचीन वृष्टिविद्या-संबन्धी निमित्तशास्त्रों के साररूप में एक नये ढंग से लिखी है। यह पुस्तक मेरे लिखे हुए **"पर्जन्यशास्त्र"** का एक भाग है। जिसका कि नाम **"कादम्बिनी"** रक्खा गया है। कादम्बिनी निमित्तशास्त्र है। कादम्बिनी का अर्थ होता है—मेघमाला। मेघमाला से वर्षा का बोध होता है। आकाश में छायी हुई मेघमाला को देखकर, इस निमित्त के आधार पर यह ज्ञान होजाता है कि वृष्टि होगी। जैसे वृष्टि होने का निमित्त मेघमाला है, वैसे मेघमाला के होने का भी कुछ न कुछ निमित्त अवश्य होता है जिससे जान लिया जाता है कि आकाश मेघों से घिर जावेगा। इस तरह के वृष्टि विषयक निमित्तों की बोधरूप से वर्षा करानेवाला यह "कादम्बिनी" निमित्तशास्त्र मेघमाला के समान है। जिस प्रकार स्त्री के पेट में रहा हुआ गर्भ समय पर प्रसूत होता है, ठीक इसी प्रकार द्यौरूपी स्त्री के पेट में सूर्यरश्मियों के द्वारा रहा हुआ गर्भ आठ मास के बाद प्रसूत होता है। इसके इस प्रसवकाल को ही वर्षा ऋतु या चातुर्मास्य कहते हैं। इसीलिये शास्त्रों में भी लिखा है कि—

"अष्टमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
रसं सर्वसमुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्" ॥ इति ।

इस पुस्तक में उक्त सिद्धान्तानुसार वृष्टियोनि, गर्भकाल, गर्भप्रसवकाल, गर्भविमान, गर्भोपघातक, गर्भदोहद इत्यादि सब विषय क्रमशः प्रतिवादित किये गये हैं।

यह इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण है। प्रथम संस्करण केवल मूलमात्र काही प्रकाशित हुआ था किन्तु इस संस्करण में इस पुस्तक का भाषानुवाद भी संमिलित कर दिया गया है। हमें आशा है कि इस अनुवाद से जनता को अवश्यमेव पूर्णलाभ होगा।

अन्त में हम पाठक सज्जनों से, मनुष्य स्वभाव सुलभ, त्रुटि आदि के लिये क्षमा-याचना कर ते हुए यह लेख समाप्त करते हैं।

जयपुर
१-१-३८

पं० मधुसूदन शर्म्मा ओझा,
विद्यावाचस्पतिः

* श्रीः *

# विषय-सूची

| विषयाः | पृष्ठः |
|---|---|


| विषयाः | पृष्ठ |
|---|---|


इति

॥ श्रीः ॥

# कादम्बिनी ।

## पर्जन्यविद्याबोधकं निमित्तशास्त्रम् ।

विद्यावाचस्पतिश्रीमन्मधुसूदनसूरिणा ।
इयं कादम्बिनी विश्वहितार्थाय वितन्यते ॥ १ ॥

यस्याप्तस्य वचः सत्यं नियतिप्रसमीक्षितुः ।
तद्दिष्टेन पथा गच्छन्नभीष्टां सिद्धमश्नुते ॥ २ ॥

शिवं बृहस्पतिं गर्गं वसिष्ठं काश्यपं भृगुम् ।
स्मरामि सहदेवज्ञं मिहिरं च पराशरम् ॥ ३ ॥

एभिरेव यथा वेदं तपसा भावितात्मभिः ।
यदुक्तं वृष्टिविज्ञानं तदिहानुब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥

तदुक्तौ लेखदोषेण कालदोषेण वा क्वचित् ।
अन्यथात्वं च संजातं तद्विशोध्यं परिज्ञया ॥ ५ ॥

* देवान् वसव्यान् शर्मण्यान् सपीतीन् मरुतोऽपि च ।
अभ्यर्थये वशे येषामेषा वृष्टिः प्रवर्तते ॥ ६ ॥

अग्निं वायुं रविं सोमं मन्महे सम्भवत्यपाम् ।
उत्थानं प्रत्युपस्थानं धर्षणं वर्षणं यतः ॥ ७ ॥

---

* देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्य । देवा शर्मण्या मित्रा वरुणार्यमन् । देवाः सपीतयोऽपांनपादाशुहेमन् ॥ १ ॥ उद्नो दत्तो दधिं भिन्त दिवः पर्जन्यादंतरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याऽवत ॥ २ ॥ दिवा चित्तमः कृण्वंति पर्जन्येनोदवाहेन । पृथिवीं यद् व्युन्दन्ति ॥ ३ ॥ आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः । वि पर्जन्याः सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यान्ति वृष्टयः ॥ ४ ॥ उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः । न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं याता मनुरथा अवृत्सत ॥ ५ ॥ सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः

ग्रन्थ के आरंभ में मांगलिक शब्द का प्रयोग करना "समाप्तिकामो मंगल माचरेत्" इत्यादि शिष्टाचार नियम से आवश्यक माना गया है। अतएव श्रीविद्यावाचस्पतिजी ने निर्विघ्न ग्रन्थ समाप्ति के लिये ईश्वरवाचक अपने नाम का प्रयोग करके ग्रन्थ लिखने का प्रयोजन भी इसी प्रथम पद्य के द्वारा बता दिया है। संपादक।

१-विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदनजी ओझा, वृष्टि-विद्या बतानेवाली इस कादम्बिनी नामक पुस्तक को, सब संसार के हित के लिये निर्माण करते हैं।

२-३-प्रकृति की परीक्षा करनेवाले जिन श्रद्धेय आचार्य चरणों ने सिद्धान्त निश्चित किए हैं, उनके निर्दिष्ट पथपर चलने से मनुष्य अपने अभीष्ट को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। इसीलिए मैं ( ग्रन्थकार ) वृष्टि-विद्या के आचार्य-शिव, बृहस्पति, गर्ग, वसिष्ठ, काश्यप, भृगु, सहदेव, वराह-मिहिर और पराशर प्रभृति का स्मरण करता हूँ।

४-५- वेदानुसार अपने उग्र तप के प्रभाव से इन आचार्यों ने जो वृष्टि-विज्ञान निश्चित किया है उसी का यह अनुवचन है।

इन आचार्यों ने वैदिक-विज्ञान द्वारा समस्त विषयों में पूर्णज्ञान प्राप्त किया है, और उनका यह अटल सिद्धान्त है कि "विदितवेदितव्यावयम्"। "ब्रह्म विद्ययैव सर्वं भविष्यन्तो मन्यन्ते" इत्यादि किन्तु यदि इनके सिद्धान्तों में इस समय काल वा लेख दोष से कहीं पर विपरीतता दिखाई देती होतो परीक्षा करके अवश्य ही उसका संशोधन कर लेना चाहिये।

६-वसव्य, शर्मण्य, सपीती, मरूत आदि जिन देवताओं के कारण वृष्टि होती है, उनकी मैं प्रार्थना करता हूँ।

इन देवताओं का वृष्टि के साथ जो सम्बन्ध है, वह तैत्तिरीय-संहिता में विशेष करक दिखाया गया है।

---

समुद्रं पृण। अब्जा असि प्रथमजा बलमसि समुद्रियम् ॥ ६ ॥ उन्नम्भय पृथिवीं भिन्धीदं दिव्यं नभः। उद्नो दिव्यस्य नो देहीशानो विसृजा दृतिम् ॥ ७ ॥ ( तै. सं. २। ४। ८ कारीरीष्टिः ) ॥ वायुर्वै वृष्ट्या ईशे ( देवा वसव्याःशर्म्मण्याः सपीतयः-एता वै देवता वृष्ट्या ईशते ॥ ) ( " अहोरात्रे वै मित्रावरुणौ २। ४। ६। अहोरात्राभ्यां वै पर्जन्यो वर्षति। नक्तं वाहि दिवा वा वर्षति-मित्रावरुणा वेवास्मा अहोरात्राभ्यां पर्जन्यं वर्षयतः ॥ अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति। मरुतः सृष्टां नयन्ति। यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ्रश्मिभिः पर्यावर्तते अथ वर्षति। एता वै देवता वृष्ट्या ईशते ॥ ( तै. सं. २। ४। १० ) ॥

७-अग्नि, वायु, सूर्य और सोम की मैं प्रार्थना करता हूँ, जिनके द्वारा जल आकाश में जाता है, ठहरता है, स्थान से च्युत होता है और बरसता है । सोम ( रस ) आर्द्रभाग जल है । यह अग्नि द्वारा ऊपर जाता है और सूर्य इसे वृष्टि के अधिष्ठाता वायु ( पर्जन्य ) के द्वारा यहाँ बरसाता है । जैसा कि वेद में लिखा है—

" समान मेतदुदक मुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः " ( ऋ० सं० १।१।२।५१ )
अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति । मरुतः सृष्टां नयन्ति ।
यदा खलु वा ऽसावादित्यो न्यङ्रश्मिभिः पर्यावर्तते, अथ वर्षति ॥
( तै० सं० २।४।१० )

यह जल समान रूप में वर्त्तमान अहर्गण के द्वारा ऊपर जाता है और नीचे आता है । पर्जन्य इसे पृथ्वी पर पहुँचाते हैं और अग्नि द्युलोक में अर्थात् पर्जन्य के द्वारा वृष्टि होती है और अग्नि के द्वारा यह जल द्युलोक में जाता है । ( ऋ० सं० १ । १ । २ । ५१ )

यहां से अग्नि वृष्टिको ऊपर भेजता है और मरुत् (पर्जन्य वायु) उत्पन्न हुई वृष्टि को लाता है । जब यह आदित्य किरणों द्वारा नीचे को पर्यावृत्ति करता है तब वृष्टि होती है। (तै० सं०२।४।१०)

## वृष्टियोनिः ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥८॥ (मनुः)
अष्टमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
रसं सर्वसमुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥९॥ (वाल्मीकिः)
विवस्वानष्टभिर्मासैरादायापो रसात्मिकाः ।
वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादमखिलं जगत् ॥ १० ॥
आदत्ते रश्मिभिर्यत्तु क्षितिसंस्थं रसं रविः ।
तमुत्सृजति भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धये ॥ ११ ॥

सरित्समुद्रभूमिस्थास्तथापः प्राणिसम्भवाः ।
चतुःप्रकाराः भगवानादत्ते सवितांशुभिः ॥ १२ ॥
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतीजलम् ।
सोमं पुष्णाति सोमस्तु वायुनाडीमयैर्दिवम् ॥ १३ ॥
जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्तिषु ।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ॥ १४ ॥
( ब्रह्मपुराणे विष्णुपुराणे च )

चन्द्राद् द्यौर्गर्भमाधत्ते वातेनाभ्रेण विद्युता ।
गर्जितेनाल्पवृष्ट्या च स गर्भः पंचलक्षणः ॥ १५ ॥

८—आग में डाली हुई आहुति आदित्य ( सूर्य ) को मिलती है । और सूर्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा का पालन होता है । ( आग में डाली हुई आहुति की वस्तु गर्मी के कारण विशकलित हो जाती है- अर्थात् उस वस्तु के प्रत्येक परमाणु अलग अलग होजाते हैं। और इन्हें सूक्ष्म तथा हलके होने से आदित्य अपने किरणों में उठा लेता है, तब इस वृष्टि से अन्न पैदा होता है और अन्न से प्रजा जीवित रहती है । बस, इसी विज्ञान को लक्ष्य में रखकर मनु महाराज ने उपरिलिखित "अग्नौ प्रास्ता०" यह श्लोक लिखा है । )

९–उपरिलिखित भाव को लेते हुये आदि कवि वाल्मीकिजी ने भी रामायण में यह श्लोक लिखा है । वर्षा ऋतु का वर्णन है—

आकाश सूर्य की किरणों द्वारा आठ महीने ( कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा से आषाढ शुक्ला प्रतिपदा ) तक गर्भ रूप में धारण किये हुए समस्त समुद्रों के रसायन रूप जल को जन्म देरहा है अर्थात् वृष्टि करता है ।

जब सूर्य शीतकाल में समुद्र के ( खस्वस्तिक के ) ऊपर रहता है तब वह अपनी तीव्र किरणों से समुद्रके जलको तपाकर हलका बना लेता है और हलके होने के कारण वह अपनी किरणों में धारण भी कर लेता है । इसी धारण किये हुए जल को फिर वह आकाश में फैला देता है । इस तरह आकाश में वह सूर्य द्वारा फैलाया हुआ जल ८ मास के बाद अर्थात् चातुर्मास्य में

बरस जाता है। इस प्रकार यहाँ सूर्य को गर्भ धारण कराने वाला पुरुष मानकर आकाशरूपी स्त्री से जल का प्रसव होना बताया गया है। यह भाव ब्रह्म-पुराण और विष्णु-पुराण के निम्नलिखित चार श्लोकों में भी हैं।

१०-सूर्य आठ महीनों तक मौलिकजल ( हाईड्रोजन ) लेकर उसे इस पेयजल में परिणत करके बरसाता है, इस से अन्न होता है, और अन्न से समस्त संसार जीवित रहता है।

११-सूर्य पृथ्वी में स्थित जिस रस ( मौलिकजल ) को किरणों द्वारा ग्रहण करता है, उसे वह धान्य पैदा होने के लिये एवं प्राणियों की पुष्टि के लिये फिर वापिस बरसा देता है।

१२-सूर्य भगवान् अपनी किरणों द्वारा नदी, समुद्र, पृथ्वी में एवं प्राणियों के शरीर में स्थित इस तरह चार प्रकार के-जल को ग्रहण करता है।

१३-१४-अपनी तीक्ष्ण किरणों से सूर्य पृथ्वी के ( से ) जल को लेकर सोम को पुष्ट करता है, और वह सोम वायु नाड़ियों में विद्यमान जल के द्वारा आकाश में धूम-अग्नि और हवा की मूर्ति वाले बादलों में इधर उधर घूमता फिरता है, तथा बादलों का जल वायु से प्रेरित होकर पृथ्वी पर गिरता है।

१५-आकाश चन्द्रमा से वायु, सफेद बादल, बिजली, गर्जना एवं अल्पवृष्टि के द्वारा गर्भ धारण करता है। अर्थात् उपरिलिखित इन पाँचों लक्षणों के दिखाई देने से आकाश में गर्भ धारण समझना चाहिये। इन पाँचों में से जितने भी कम लक्षण हों उतनी ही गर्भ में कमी होती है।

(चन्द्रमा सोम के कारण शीत प्रकृति का है। जिस नक्षत्र काल में सूर्य की किरणों द्वारा जल आकाश में गया है, यदि उसी नक्षत्र पर चन्द्रमा भी है तो वह जल उसी शीत के प्रभाव से वहाँ स्थिर होजाता है इसी को गर्भ धारण होना कहते हैं। हाँ, यदि सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में अग्निसम्बन्धी ग्रह जैसे मंगल, अथवा वायुसम्बन्धी ग्रह जैसे शनि आदि आजावे तो चन्द्रमा उस गर्भ को धारण नहीं कर सकता, क्योंकि इन अग्नि-वायुसम्बन्धी ग्रहों के कारण उसका प्रभाव कम होजाता है, और यदि उस समय गर्भ रह भी गया तो कुछ दिनों में उसका पात हो जायगा। चन्द्रमा गर्भ धारण करवाता है इसीलिए वेद में भी लिखा है कि " सोमोवैरेतोधाः " शत० इति।)

## गर्भोपक्रमकालः ।

मार्गशीर्षात् ततश्चैत्राच्छ्रावणाच्च पुरा क्वचित् ।
शीतोष्णवर्षाकालानां चातुर्मास्यानि चद्यते ॥ १६ ॥
कार्तिकात् फाल्गुनात् तद्वदाषाढात्प्रतिभान्ति तु ।
शीतोष्णवर्षाकालानां चातुर्मास्यानि संप्रति ॥ १७ ॥
शीतकाले तु गर्भः स्यात् परिपाकस्तदुत्तरे ।
वर्षाकाले तु गर्भाणां प्रसूतिः क्रमतो भवेत् ॥ १८ ॥
ज्येष्ठासन्ना त्वमावास्या ज्येष्ठासन्ना च पूर्णिमा ।
आभ्यां विभागमिच्छन्ति गर्भप्रसवकालयोः ॥ १९ ॥
मूलोत्तरार्द्धगादर्कादर्कादार्द्रागतादपि ।
आभ्यां विभागमिच्छन्ति गर्भप्रसवकालयोः ॥ २० ॥
दक्षिणायनगात् पातादुत्तरायणगादपि ।
आभ्यां विभागमिच्छंति गर्भप्रसवकालयोः ॥ २१ ॥
स्वात्यर्कतो वा स्वात्यर्कचन्द्रसंयोगतोऽपि वा ।
स्वात्यर्कोर्ध्वाश्विनी चन्द्रान्मैत्रार्कोर्ध्वाप्यचंद्रतः ॥२२॥
मूलार्कतश्च पंचैते गर्भाणां सन्त्युपक्रमाः ।
पूर्वे मन्दफला मूलार्कतस्तु सुदृढा मताः ॥ २३ ॥

इस प्रकरण में वर्षा के गर्भकाल, दोहदकाल और प्रसवकाल का वर्णन किया गया है। शीतकाल को गर्भ का, उष्णकाल को दोहद ( गर्भपोषण ) और वर्षाकाल को प्रसव का समय माना जाता है। किस महीने से शीतकाल और किस महीने से उष्णकाल और वर्षाकाल माना जाय इस विषय में जितने मतभेद हैं वे क्रम से बताये जाते हैं।

१६-किसी का मत है कि-मार्गशीर्ष से चार महीने फाल्गुन तक शीतकाल, चैत्र से चार महीने आषाढ तक उष्णकाल और श्रावण से चार महीने कार्त्तिक तक वर्षाकाल होता है।

१७-इस समय में कार्त्तिक से माघ तक शीतकाल, फाल्गुन से ज्येष्ठ तक उष्णकाल और आषाढ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता है।

१८-शीतकाल में गर्भ धारण होता है, इसके बाद उष्णकाल में उसका परिपाक ( पोषण ) होता है और वर्षाकाल में वह प्रसूत होजाता है, अर्थात् बरस जाता है।

१९-ज्येष्ठा नक्षत्र के आस पास जब अमावस्या होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठानक्षत्र के आस पास जब पूर्णिमा होवे तब प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिये। यह भी किसी का मत है।

मार्गशीर्ष की अमावस्या को और ज्येष्ठ की पूर्णिमा को प्रायः ज्येष्ठा नक्षत्र आया करता है।

२०-कई विद्वान् निम्नलिखित हिसाब से गर्भ और प्रसवकाल का विभाग मानते हैं-मूल नक्षत्र के उत्तरार्द्ध में सूर्य के आने से गर्भकाल और आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य आने से प्रसवकाल होता है। अर्थात् मूल नक्षत्र पर जब सूर्य आवे तब से ६ दिन बाद से ४ मास तक गर्भकाल और आर्द्रा पर आवे तब से ४ मास तक प्रसवकाल माना जाय।

मूल पर सूर्य पौष के महीने में और आर्द्रा पर आषाढ में प्रायः आया करता है, और १३ दिन तक रहता है।

२१-कई कहते हैं कि-जिस पात से सूर्य दक्षिणायन हो वह गर्भकाल का प्रारंभ और जिस पात से उत्तरायण हो वह प्रसवकाल माना जाता है।

२२-२३-गर्भकाल के प्रारंभ का दिन मानने के विषय में किसी ग्रन्थ का यह मत है कि स्वाति पर सूर्य के आने से, या स्वाति के सूर्य में स्वाति नक्षत्र पर चन्द्रमा के होने से वा स्वाति के सूर्य पर अश्विनी के चन्द्रमा होने से, अथवा अनुराधा के सूर्य में अनुराधानक्षत्र पर चन्द्रमा के आने से, या मूल पर सूर्य के आने से गर्भकाल का प्रारंभ होता है। इन पाँचों में मूलार्क से उत्तरके दृढ़ फल वाले हैं और पहिले के मन्द फल हैं।

## गर्भप्रसवकालः

सूर्ये दक्षिणगोलस्थे गर्भितं चोत्तरायणे ।
नक्षत्रमष्टमावृत्तौ गत्वा चन्द्रः प्रवर्षति ॥ २४ ॥

न सूर्यो न च नक्षत्रं न चन्द्रस्तत्र कारणम् ।
वायुनैवोद्धृतं तोयं वायुरेव प्रवर्षति ॥ २५ ॥

सूर्ये दक्षिणगोलस्थे तस्मादब्धेरवुत्थितिः ।
तत्तोयं वायुना क्षिप्तं देशे देशे प्रवर्षति ॥ २६ ॥

वायुनाक्षिप्तमभ्रं तु दिवि यत्रावतिष्ठते ।
नक्षत्रं द्युतलस्थास्य क्रियते तूपलक्षणम् ॥ २७ ॥

चन्द्रो यद्भं गतो गर्भं कुर्यादावर्तनेऽष्टमे ।
शतेऽह्नां पंच नव ते तद्भं गत्वा स वर्षति ॥ २८ ॥

सितपक्षभवः कृष्णे कृष्णपक्षभवः सिते ।
अहर्जातो निशि निशाजातस्त्वहनि वर्षति ॥ २९ ॥

यस्मिन् पक्षे भवेद्गर्भस्ततः पक्षे चतुर्दशे ।
स गर्भदिवसात् सार्द्धषण्मासान्त्येऽह्नि वर्षति ॥ ३० ॥

कृष्णे वर्षति वैशाखे गर्भः कार्तिकशुक्लजः ।
चैत्रशुक्लोद्भवः कृष्णे त्वाश्विने मासि वर्षति ॥ ३१ ॥

पूर्वोत्थितः पश्चिमायां पूर्वस्यां पश्चिमोत्थितः ।
एवं विपर्ययो मेघवातयोः शेषदिक्ष्वपि ॥ ३२ ॥

इस प्रकरण में विशेष करके गर्भ के प्रसव ( वर्षा ) काल का ही वर्णन किया जायगा।

२४–सूर्य दक्षिणगोल में ही हो, किन्तु उत्तरायण हो चुका हो ऐसे समय में जिस नक्षत्र

पर पहिले लिखे हुए वायु, बादल आदि पाँच प्रकार से गर्भस्थिति होजाय तो उसी नक्षत्र पर चन्द्रमा के आठवीं बार आने पर वर्षा होती है।

२५-कई वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र इन में से कोई भी वर्षा होने में कारण ( सबब ) नहीं बनता। केवल वायु से उठाया हुआ जल वायुद्वारा ही बरसाया जाता है।

( वास्तव में देखा जाय तो पृथ्वी पर से पदार्थों के आकाश में उठाने का कार्य अग्नि (तेज) ही करता है, इसलिये इसका नाम वन्हितम ( भारवाही-हव्यवाहक ) प्रसिद्ध है।

इस जल को भी पृथ्वी पर से यही अग्नि [ तेज ] सूर्य की किरणों द्वारा आकाश में उठाता है, जैसा कि हम पहिले भी लिख चुके हैं। किन्तु यह अग्नि आकाश में जाकर वायुरूप में बदल जाता है। इसको वेद में सवृत्तिवायु कहते हैं। यह स्वाति नक्षत्र से प्रकट होती है। इस वायु के चलने से वर्षा भी होती है। अतएव वेद में कहा जाता है कि-"सविता वै देवानां प्रसविता"- इत्यादि। बस, इसी विज्ञान को लेकर वायुद्वारा जल का उठाना और बरसाना यहाँ पर कहा गया है।)

२६-सूर्य के दक्षिणगोल में रहने के कारण तपे हुए समुद्र से जल उठता है और वह वायु द्वारा आकाश में फैलाया हुआ जल देश देश में बरसता है।

जब सूर्य दक्षिणगोल में रहता है तो उत्तरगोल में इसकी किरणें बहुत कम तज वाली रहती हैं। और दक्षिणगोल में विशेष तपती हैं। इसी कारण दक्षिणीसमुद्र का तपा हुआ जल भाप बन करके आकाश में किरणों द्वारा उठा लिया जाता है। और फिर वह वायु द्वारा समय पर बरसाया जाता है।

२७-आकाश में वायुद्वारा इधर उधर फेंका जाने वाला बादल ठहर जाता है, वह बादल जिस नक्षत्र के नीचे होता है उसी नक्षत्र पर समझा जाता है।

२८-जिस नक्षत्र पर चन्द्रमा के रहते हुए गर्भस्थिति हुई हो, उसी नक्षत्र पर आठवीं बार चन्द्रमा के आने से अर्थात् १९५ दिन में, उस दिन की गर्भस्थिति का जल बरस जाता है।

२९-शुक्लपक्ष का रहा हुआ गर्भ कृष्णपक्ष में, कृष्णपक्ष का गर्भ शुक्लपक्ष में और दिन का गर्भ रात्रि में तथा रात्रि का गर्भ दिन में बरसता है।

( कारण यह है कि यद्यपि जिस पक्ष या जिस समय आकाश में गर्भ रहता है, बरसनेके समय भी उसी पक्ष और उसी समय के आकाश में रहता है, किन्तु वह आकाश पृथ्वी की चाल के कारण छः महीने बाद उलटा दिखाई पडता है। अर्थात् उस गर्भस्थिति के समय का आकाश यदि शुक्लपक्ष का है तो छः महीने बाद वह कृष्णपक्ष में पडेगा, या कृष्णपक्ष का है तो छः महीने बाद शुक्लपक्ष में। इसी तरह दिन का होगा तो वह आकाश छः महीने बाद रात्रि में और रात्रि का होगा तो वह छः महीने बाद दिन में पड़ेगा।)

३०-३१-जिस पक्ष में गर्भस्थिति हो, उससे चौदहवें पक्ष में अर्थात् गर्भस्थिति से साढे छः महीने के अन्त के दिन में वर्षा होती है। जैसे—

कार्त्तिकशुक्ल में रहा हुआ गर्भ वैशाखकृष्ण में और चैत्रशुक्ल का गर्भ आश्विन में बरसेगा।

३२-पूर्व की दिशा से उठा हुआ बादल और वायु पश्चिम दिशा में और पश्चिम दिशा से उठा हुआ बादल और वायु पूर्व की दिशा में जल बरसाता है। इसी तरह अन्य दिशाओं का भी यह हिसाब इसी विपरीत क्रम से जानना चाहिये।

## गर्भविमानम्।

ब्राह्मी प्रोष्ठपदाषाढा गर्भाः स्युर्बहुतोयदाः।
आर्द्रा श्लेषा मघास्वाती वारुण्यो बहुवासराः॥ ३३॥

षट्सु मार्गादिमासेषु पञ्चानामेकभस्य च।
अष्ट-षट्-षोडश-जिन-विंशति-त्रीण्यहानि हि॥ ३४॥

काले वर्षति गर्भस्तु पञ्चात्मा शतयोजनम्।
एकैकहान्या परितस्तदूर्ध्वार्द्धार्द्धकल्पनम्॥ ३५॥

त्रीण्याढकानि वातेन विद्युता पूणनवाभ्रकैः।
द्वादश स्तनितेनाथ पञ्चभिर्द्रोणपञ्चकम्॥ ३६॥

शुभग्रहयुते चन्द्रेऽर्के च गर्भाः सुवृष्टिदाः ।
क्रूरग्रहयुते वज्रकरकामत्स्यवर्षदाः ॥ ३७ ॥

गर्भकालेऽतिवृष्टिस्तु गर्भनाशाय जायते ।
द्रोणाष्टांशाधिके वृष्टे गर्भस्रावोऽवधार्यते ॥ ३८ ॥

पञ्चरूपस्तु यो गर्भो गर्भकालेऽतिवर्षति ।
स नष्टः प्रसवे काले सीकरं क्वापि मुञ्चति ॥ ३९ ॥

गर्भः पुष्टोऽपि चेत् काले ग्रहदोषान्न वर्षति ।
तदात्मधारणाकाले करकां वर्षति ध्रुवम् ॥ ४० ॥

चिरकालधृतं क्षीरं यथा काठिन्यमृच्छति ।
कालातीतं तथा तोयं काठिन्यं दिवि गच्छति ॥ ४१ ॥

इस प्रकरण में गर्भ के जल की नाप का वर्णन है ।

३३-रोहिणी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में रहा हुआ गर्भ बहुत वृष्टि करता है । आर्द्रा, अश्लेषा, मघा, स्वाति और शतभिषा नक्षत्र के गर्भ से झड़ लगते हैं अर्थात् कई दिन तक थोड़ा थोड़ा जल रात दिन बरसा करता है ।

३४-मार्गशीर्ष से छः महीनों में उपरिलिखित आर्द्रा अश्लेषा आदि पांचों नक्षत्रों में से यदि किसी में गर्भ रहे तो क्रम से उन छः महीनों में आठ, छः, सोलह, चोबीस, बीस और तीन दिन तक वृष्टि होती है । अर्थात् मार्गशीर्ष में आठ, पौष में छः, माघ में सोलह, फाल्गुन में चोबीस, चैत्र में बीस और वैशाख में तीन दिन तक वृष्टि होती है ।

३५-पहिले बताये हुये वायु, बादल आदि पाँच प्रकार से रहा हुआ गर्भ समय पर अर्थात् ६॥ महीने बाद सौ योजन (४०० कोस) के घुमेर में बरसता है । इन पांचों में एक एक लक्षण की कमी से गर्भ रहने पर उस सौयोजन के घुमेर में भी एक एक भाग के योजन की कमी करलेनी चाहिये । अर्थात् पाँचों लक्षणों से रहा हुआ गर्भ १०० योजन के घुमेर में, चार लक्षणों का ७५ योजन में, तीन का ५० में और दो या एक का २५ योजन के घुमेर में बरसता है ।

३६-इन पांचों लक्षणों में भी केवल हवा से रहा हुआ गर्भ तीन आढक*, बिजली से छः आढक, बादलों से नव आढक और गर्जना से बारह आढक और पांचों ( वायु, विद्युत्, बादल, गर्जना, अल्पवृष्टि ) से रहा हुआ गर्भ पाँच द्रोण जल बरसाता है।

३७-चन्द्रमा और सूर्य के सौम्य ग्रहों ( चंद्र, रवि, शुक्र, बुध, गुरु ) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वर्षा अच्छी होती है। और क्रूर ग्रहों ( शनि, मंगल, राहु, केतु, एवं वक्र हुआ बुध ) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो, वज्रपात, ओले, मत्स्य आदि के सहित वृष्टि होती है।

३८- गर्भकाल के समय अतिवृष्टि होने से गर्भनाश हो जाता है। इस में द्रोण के आठवें भाग से अधिक वर्षा होने से गर्भस्राव ( पात ) समझना चाहिये।

३६—गर्भकाल के दिनों में पाँचों प्रकार से रहा हुआ भी गर्भ उस समय अधिक वर्षा होने से नष्ट होजाता है। इसका बचा हुआ जल वर्षा ऋतु में कहीं कहीं कुछ बूँदें गिरा देता है।

४०- सब तरह से पुष्ट हुआ गर्भ यदि प्रसव ( वर्षाऋतु ) के समय ग्रहों के दोष से नहीं बरसे तो उसी गर्भ धारण किये हुए दिन में ओले बनकर गिरता है।

४१-बहुत समय तक रक्खा हुआ दूध जिस तरह जम कर गाढ़ा होजाता है उसी तरह बहुत समय तक गर्भ [ आकाश ] में रक्खा हुआ जल भी कठिन अर्थात् ओले के रूप में परिणत हो जाता है।

## गर्भोपघातकाः ।

अथ गर्भोपघाताः स्युरुत्पातास्त्रिविधा अपि ।
भूकम्पोल्कारजोवृष्टिदिग्दाहाशनिकीलकम् ॥ ४२ ॥

---

* पचास पल ( तोला ) का एक आढक होता है, चार आढक का १ द्रोण।

( कादम्बिनी द्वादश अ० श्लोक ३१३ )

खपुरं केतवो युद्धं निर्घातः परिघो धनुः ।
उपरागो गर्भमासप्रोक्तलिंगविपर्ययः ॥ ४३ ॥
एवं गर्भोपघात्युक्तो दुर्निमित्तसमुच्चयः ।
पोषयन्ति तु ये गर्भं वच्मि तान् गर्भदोहदान् ॥ ४४ ॥

इस प्रकरण में गर्भ के नाश करनेवाले उपद्रवों का वर्णन है ।

४२-४३-गर्भ के नाश करनेवाले उत्पात तीन प्रकार के हैं । पार्थिव, आन्तरिक्ष्य और दिव्य । इन निम्नलिखित उत्पातों के होने से गर्भ का स्राव होजाता है, अथवा समय पर बरसता नहीं, वा कम बरसता है इत्यादि । वे उत्पात ये हैं- भूचाल का होना, कील गिरना, गन्धर्वपुर, धूमकेतु, ग्रहों का युद्ध, निर्घात, परिघ धनुष का दीखना और सूर्य-चन्द्रमा का ग्रहण होना या गर्भमास के चिह्नों का बदल जाना ।

भूचाल चार प्रकार के होते हैं- आग्नेय, ऐन्द्र, वारुण और वायव्य । पृथ्वी की अग्नि की गति से आग्नेयकंप होता है, इस कंप में कहीं से जमीन तोड़कर आग की ज्वाला निकलती है । ग्रहों की चाल से ऐन्द्रकंप होता है । जब पृथ्वी के एक तरफ शनि हो, और दूसरी तरफ मंगल हो तो ये दोनों उस क्षण में सारी पृथ्वी को एकदम घुमा देते हैं । यही कंप सब से भयंकर और समस्त पृथ्वी भाग में होने वाला है । तीसरा कंपवारुण है, अर्थात् जल से होने वाला है, यह समुद्र के आस पास के देशों में विशेष होता है । चौथा वायु की गति से वायव्यकंप होता है । उल्कापात में रात्रि के समय आकाश में प्रकाश की एक लंबी लाइन सी दीखती है किन्तु वह प्रारंभ में मोटी और पुच्छ भागों में पतली होती है । रजोवृष्टि में दिन के समय आकाश बिलकुल धुंधला दिखाई देता है । दिग्दाह से सुबह-शाम दिशाओं में आग जलती हुई दिखाई देती है । वज्र दो तरह के होते हैं- वज्र और महावज्र । वज्र त्रिकोण और महावज्र षट्कोण होता है । कीलपात में पश्चिम से पूर्व तक एक लम्बी लोहे के समान रेखा आकाश में दीखने लगती है । गन्धर्वपुर से आकाश में बादलों के नगर, मकान आदि दीखते हैं । आकाश में धूमकेतु नामक नये तारे उगते हैं । इनमें कई तारों का झुण्ड होता है । रणमें एक पुच्छलतारा भी होता है । निर्घात होने से बड़े जोर की आवाज आती है । परिघ होनेसे उदय और अस्त के समय सूर्यबिम्ब के तीन तरफ काली रेखा दीखने लगती है । धनुः- इन्द्रधनुष को कहते हैं ।

४४-इस तरह से गर्भ के नष्ट करने के दुर्निमित्त कहे गये हैं, अब आगे जिन से गर्भ का पोषण होता है वे निमित्त कहे जाते हैं ।

## गर्भदोहदाः।

मृदुः प्रसादको वायुः सोमेशानेन्द्रदिग्भवः।
परिवेषः सितः स्निग्धो विपुलः शशिसूर्ययोः॥ ४५॥

विद्युदिन्द्रधनुर्मन्द्रगर्जितं प्रतिसूर्यकम्।
स्निग्धो व्यापी पृथुर्मेघः सुप्रसन्नेन्दुभं नभः॥ ४६॥

स्निग्धाः पुष्टा नोपसृष्टाः प्रदक्षिण चराग्रहाः।
अनाकुलरवा हृष्टा निसर्गान्मृगपक्षिणः॥ ४७॥

एते सर्वर्तुजातानां गर्भाणां पुष्टिकारकाः।
अथ ये मासभेदेन विशेषास्तानपि ब्रुवे॥ ४८॥

सन्ध्यारागः परीवेषो बार्दलं मार्गपौषयोः।
नातिशीतं मार्गशीर्षे पौषेऽतिहिमसम्भवः॥ ४९॥

माघे तु प्रबलो वायुस्तुषारकलुषाग्रहाः।
शैत्याधिक्यं समेघस्य भानोरस्तोदयौ तथा॥ ५०॥

फाल्गुने पवनश्चण्डो रूक्षः स्निग्धाभ्रसंप्लवः।
परिवेषा असम्पूर्णास्ताम्रो वा कपिलो रविः॥ ५१॥

फाल्गुनेऽतिखरो वायुर्वाति पत्राणि पातयन्।
दक्षिणोऽतिमृदुश्चैते मेघगर्भहिताय सः॥ ५२॥

चैत्रे वायुः परीवेषो वृष्टिरभ्रं च शस्यते।
वैशाखे पवनो विद्युद्वृष्टिरभ्रं च गर्जितम्॥ ५३॥

गर्भोपघातको न स्युर्यदि स्युर्गर्भदोहदाः।
तदा वर्षति पर्जन्यस्तत्रानन्दः प्रवर्तते॥ ५४॥

४५—गर्भ के दोहद [ पोषण ] काल में अर्थात् उष्णकाल में उत्तर, ईशान और पूर्व की वायु चले और वह वायु कोमल और हृदय को प्रसन्नता देती हुई हो तो इससे गर्भ पुष्ट होता है। तथा सूर्य और चन्द्रमा के चौतरफ सफ़ेद, चिकना और बड़ा मण्ड्ल हो तो वह गर्भ को पुष्ट करनेवाला है।

पृथ्वी अपने स्थान पर ( गिर्द ) घूमती हुई पश्चिम से पूर्व को चलती रहती है और सूर्य के चारों ओर घूमती हुई ईशान-कोण की तरफ झुकी हुई उत्तर को जाया करती है। पवन सामने की दिशाओं से उत्तर, ईशान और पूर्व से आता हुआ प्रतीत होता है। यह इधर की हवा परमेष्ठी ( आकाश में सोमपदार्थ के एक मण्ड्ल ) से ध्रुव तक की ठंड्क को लिए हुए होती है, इसलिये यह गर्भ पुष्ट करती है।

४६—विजलियाँ, इन्द्रधनुष, धीमीगर्जना और सूर्य के बिंब के आगे छोटे छोटे बृत्त मण्ड्ल ( कुण्ड्लना ) के होने से, तथा स्निग्ध फैले हुए बड़े बड़े बादलों के होने से और कभी साफ़ चन्द्रमा वाले आकाश के दिखाई देने से भी गर्भ पुष्ट हुआ समझना चाहिये।

४७-रवि, भौम, बुध आदि ग्रहगण भी स्निग्ध गति के हों, पुष्ट हों अर्थात् इनके तारों का प्रकाश खूब चमकीला एवं स्निग्ध हो और ग्रहण से युक्त न हो तथा सूर्य के दक्षिण की तरफ़ इनकी गति हो तो यह भी गर्भ के पुष्ट करनेवाले होते हैं। इसी तरह यदि पशु-पक्षि-गण भी स्वभाव से ही बिना घबराये हुए की तरह सुन्दर आवाज़ करते हों और प्रसन्न दिखाई दें, तो गर्भ पुष्ट हुआ समझना चाहिये।

४८-उपरिलिखित ये सब लक्षण सब ऋतुओं के गर्भों की पुष्टि करनेवाले कहे गये हैं। अब महीनों के क्रम से ख़ास ख़ास लक्षण हैं, वे आगे कहे जाते हैं।

४९-मार्गशीर्ष और पौष में सन्ध्या के समय ललाई का होना, सूर्य, चन्द्रमा के कुण्डलना होना और बादलों का होना गर्भ पुष्टि का लक्षण है।

मार्गशीर्ष में अधिक ठंड् न पड़कर, पौष में अधिक ठंड् पड़े, तो यह भी गर्भ पुष्टि का अच्छा लक्षण है।

५०-माघ में विशेष वायु चले, पाला गिरने से ग्रहों के तारों का प्रकाश कम हो, विशेष ठंड् पड़े और सूर्य के उदयास्त समय बादल हों तो गर्भ पुष्ट हुए समझने चाहिये।

५१-५२-फाल्गुन मास में रूखी और जोर की हवा चले, स्निग्धता को लिये हुए सफेद बादल दिखाई दें, सूर्य-चन्द्रमा के चौतरफ अधूरे चक्र हों और सूर्य कपिल या ताम्रवर्ण का हो तो ये गर्भ पुष्टि के लक्षण हैं। तथा फाल्गुन में वृक्षों के पत्तों को गिराता हुआ तेज पवन चले और चैत्र में दक्षिण दिशा का अत्यन्त मधुरवायु बहे, तो वह भी गर्भ की पुष्टि करता है।

५३-चैत्र में वायु चले, कुण्डलना हो, कुछ वर्षा तथा सफेद बादल हों तो गर्भ को पुष्ट हुआ समझना चाहिये।

वैशाख में वायु, बिजली, वृष्टि, सफेद बादल और गर्जना होना गर्भ पुष्टि का लक्षण है।

५४-ऊपर लिखे हुए प्रकारों से गर्भ पुष्टि के लक्षण तो हों और गर्भ के नष्ट करनेवाले उत्पात नहीं हों, तो वहाँ अच्छी वर्षा होती है और आनन्द प्रवृत्त होता है।

## पाहिला गर्भाध्याय समाप्त हुआ।

## अथ द्वादशमासिकाध्यायः।

वृद्धिः सर्वेषु मासेषु नक्षत्राणां समृद्धये।
बहुक्षीरघृता गावः प्रजाश्च निरुपद्रवाः॥ १॥
वर्षर्तौ त्रिषु मासेषु नक्षत्रं यदिवर्धते।
तिथिर्वा वर्द्धते तत्र शुभः समय इष्यते॥ २॥
कृष्णपक्षोदिता धर्माः सम्भवेयुर्न्न तत्र चेत्।
पूर्वस्मिन्नुत्तरस्मिन् वा मासे कृष्णे भवन्ति ते॥ ३॥
नियतास्तिथयः काश्चिद्गर्भध्रुवकसंज्ञकाः।
तत्राभ्रसम्भवः सर्गादनभ्रं प्रतिबन्धतः॥ ४॥

१—सब महीनों में नक्षत्रों का बढ़ना अच्छा है। क्योंकि नक्षत्र वृद्धि से गायें बहुत घी दूध वाली होती हैं, और प्रजा में उपद्रव नहीं होते।

२—वर्षा ऋतु के तीनों महीनों में अर्थात् आर्द्रा नक्षत्र पर जब सूर्य आवे उस दिन से ६० दिन तक नक्षत्र बढ़े या तिथि बढ़े, तो अच्छा समय कहना चाहिये।

तिथि या नक्षत्र के बढने और घटने का कारण। ज्यौतिषशास्त्र में माना गया है कि एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक ६० घड़ी अर्थात् २४ घंटे होते हैं और तिथि तथा नक्षत्र भी ६० घड़ी ( २४ घंटे ) के ही हुआ करते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द घूमता हुआ सर्पिलगति में रहता है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी स्थिर नहीं है, किन्तु सूर्य के गिर्द घूमती हुई अपने स्थान से कुछ २ आगे बढ़ती जाती है। सर्पिलगति में घूमता हुआ चन्द्रमा अठाईसवें वर्ष में उसी बिन्दु पर आजाता है जिस विन्दु से कि उसकी गति का प्रारंभ माना जाय। इस गति में चन्द्रमा कभी तो पृथ्वी के समीप आजाता है और कभी दूर चलाजाता है, किन्तु यह याद रखना चाहिये कि चन्द्रमा की अपनी चाल सदैव एकसी रहती है। लेकिन जब वह पृथ्वी के समीप होता है तब उसकी गति तीव्र मालुम होती है और चन्द्रमा पृथ्वी से दूर चला जाता है तब उसकी चाल धीमी मालुम देने लगती है। अर्थात् जब चन्द्रमा के घूमने का मार्ग संकुचित होता है तब उसकी गति तेज़ प्रतीत होती है और जब उसके घूमने का मार्ग बड़ा होता है तब धीमी चाल प्रतीत होने लगती है। धीमी चाल के कारण कभी कभी तिथि और नक्षत्र बीच में ही समाप्त हो जाते हैं, सूर्योदय के समय नहीं रहते, तब इस देश में तिथि या नक्षत्र का क्षय मान लिया जाता है। तीव्र गति के समय कभी कभी एक ही नक्षत्र या तिथि दो सूर्योदय काल तक रह जाते हैं। इस दशा में तिथि या नक्षत्र की वृद्धि मानी जाती है। तथा ज्यौतिष का सिद्धान्त भी यही है कि नक्षत्र तथा तिथि वही मानी जाती है जोकि सूर्योदय काल में रहे। बस, इस तरह तिथि या नक्षत्र घटा-बढ़ा करते हैं।

३—कृष्णपक्ष की कही हुई बातें अगर नियत दिनों में नहीं मिले, तो उस पक्ष के आगे के या पीछे के कृष्णपक्ष में उनकी परीक्षा करनी चाहिये। पहिले कई ग्रन्थ अमान्तमास के हिसाब से लिखे गये हैं तथा आजकल विशेष व्यवहार पूर्णिमान्तमास का है, अतः कहीं कहीं इस से विरुद्ध फल हो जाता है। आजकल महीने का आरंभ कृष्णपक्ष से मान कर उसकी समाप्ति पूर्णिमा पर मानी जाती है। लेकिन वास्तव में देखा जाय तो शुक्लपक्ष से मास का प्रारंभ करके, कृष्णपक्ष की अमावस्या को उस मास की समाप्ति माननी चाहिये। जिसे कि अमान्तमास कहते हैं। इस से चन्द्रमा का विशेष सम्बन्ध है। देखिए-पूर्णिमा के रोज़ चन्द्रमा पूर्ण अपनी यौवन अवस्था पर रहता है। फिर वह शनैः शनैः नित्य क्षीण होता हुआ अमावस्या को सर्वथा नष्ट हो जाता है। अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है। और पुनः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से वह जन्म लेता है। इस तरह अमान्तमास

में जन्मसे मृत्यु पर्यन्त चन्द्रमाकी एक आयु पूर्ण हो जाती है। अतः यही अमान्तमास मानना उचित है। और इसीलिये पहलेके ग्रन्थ इस मासके हिसाबसे लिखे गये हैं।

आज कल कई विद्वान् कहते हैं कि पूर्णमासी शब्दमें मास शब्द महीनेका वाचक है और मासके पूर्ण होनेके कारण ही इस तिथिको पूर्णमासी कहते हैं। किन्तु इस तरह मानना उनकी भूल है। यहाँ मास शब्द महीने का वाचक नहीं है, किन्तु मसी परिणामे धातुसे सिद्ध हुआ 'मास्' नाम है चन्द्रमा का, ( मस्यति परिणमते-इति माः ) अतः पूर्णमासी उसी तिथिका नाम है कि जिस दिन चन्द्रमाकी कलायें पूर्ण हो गई हों।

अमान्तमास पूर्णिमान्तमाससे पन्द्रह दिन पीछेसे आरंभ होता है। इसलिये शुक्लपक्ष तो दोनोंमें एकसा ही रहता है। लेकिन कृष्णपक्ष अमान्तमासके हिसाबमें पूर्णिमान्तमासकी अपेक्षा पिछले महीने पड़ता है। इसलिये अमान्तमासके अनुसार कृष्णपक्षमें कहे हुए धर्म यदि पूर्णिमान्तमासके अनुसार निर्दिष्ट मासमें नहीं मिलें तो आगेके मासमें समझ लेने चाहिये। और यदि पूर्णिमान्त मासके अनुसार किसी ग्रन्थमें कृष्णपक्षके धर्म कहे गये हैं तो अमान्तमास के अनुसार पीछेके महीने में जान लेने चाहिये।

४—कई ऐसी तिथियाँ हैं कि जिनमें नियमित रूपसे गर्भ हुआ ही करते हैं। इनमें गर्भ का होना स्वाभाविक है। अगर उन तिथियोंमें गर्भ के लक्षण दिखाई नहीं दें तो इसमें किसी ग्रह की रुकावट समझनी चाहिये।

## कार्तिकः ।

कार्तिकस्य द्वितीया वा तृतीया वापि वर्षति ।
भाविवर्षे बहुजलं न चेत्तस्मिन्नवर्षणम् ॥ ५ ॥
द्वितीयायां तृतीयायां नवम्यां कार्तिके सिते ।
एकादश्यां त्रयोदश्यां वृष्टिर्मेघोऽतिवृष्टये ॥ ६ ॥
अब्दविंशोपकावारैः पञ्चम्यां शुक्लकार्तिके ।
दिङ्नखाष्टादित्यधृतिनृपबाणमिताः क्रमात् ॥ ७ ॥

कार्तिकेऽभ्रध्रुवा शुक्ला द्वादश्येकादशी तिथिः ।
न गर्जति न तत्राभ्रं तदा वर्षो न शोभनः ॥ ८ ॥

एकादश्यां तु शुक्लायां द्वादश्यां वापि कार्तिके ।
अभ्रच्छन्नं यदि नभस्तदाषाढेऽतिवर्षति ॥ ९ ॥

द्वादश्यां कार्तिके रात्रौ विद्युद्वृष्टिश्च गर्जितम् ।
पञ्चवर्णास्तथा मेघाः पुष्पहानिस्तदोच्यते ॥ १० ॥

द्वादश्यां कार्तिके शुक्ले निरभ्रा रजनी यदि ।
पूर्णिमायामनभ्रं चेत् पुष्पबन्धः स उच्यते ॥ ११ ॥

कार्तिक्यां कृत्तिकापूर्णा सुभिक्षायोपदिश्यते ।
कृत्तिका यदि वर्द्धेत तद्वर्षे बहुवर्षणम् ॥ १२ ॥

भरणी यदि पूर्णा स्यात् कार्तिकीपूर्णिमादिने ।
कुत्रचित् साधुवृष्टिः स्यादवृष्टिः कुत्रचिद्भवेत् ॥ १३ ॥

कार्तिक्यां पूर्णिमायान्तु यदि प्राप्नोति रोहिणी ।
असामंजस्यमाप्नोति प्रजा दुर्भिक्षापीडिता ॥ १४ ॥

कार्तिके मासि संक्रांतौ यदि वर्षति वासवः ।
मध्यमं जायते सस्यं पौषे मासि सुभिक्षता ॥ १५ ॥

कार्तिके यदि संक्रांतेः पर्य्यंते दिवसद्वये ।
महावृष्टिस्तदावृष्टिः शुभा भाविनि वत्सरे ॥ १६ ॥

चतुर्थ्यां कार्तिके कृष्णे मेघाः स्युर्मृगशीर्षिणिभे ।
यद्यत्र जलपातः स्यात्तदाषाढे सुवर्षति ॥ १७ ॥

अष्टम्यां कार्तिके कृष्णे दृश्यन्ते यदि विद्युतः ।
तदा तु श्रावणे मासि वृष्टिर्नूनं भविष्यति ॥ १८ ॥

५—कार्तिक शुक्ला द्वितीया या तृतीयाके दिन वर्षा होनेसे उस वर्षमें बहुत जल बरसता है और यदि उन दोनों दिनोंमें न बरसे तो उस वर्षमें वृष्टि नहीं होती।

६—कार्तिक शुक्लामें द्वितीया, तृतीया, नवमी, एकादशी और त्रयोदशीके दिन वर्षा होने से या काले बादल होनेसे उस वर्षमें खूब वृष्टि होती है।

७—कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको यदि रविवार हो तो १० विस्वा, सोमवार हो तो १२ विस्वा, मंगलवार हो तो ८ विस्वा, बुधवार हो तो १२ विस्वा, वृहस्पतिवार हो तो १८ विस्वा, शुक्रवार हो तो १६ विस्वा और शनिवार हो तो ५ विस्वा वृष्टि कहनी चाहिये।

८—कार्तिक शुक्ला एकादशी और द्वादशी तिथि 'अभ्रुध्रुवा' कहलाती है। अर्थात् इन दोनों दिनोंमें स्वाति या विशाखा नक्षत्र पर सूर्य रहते हुये अश्विनी या रेवती अवश्य आया करती है और इस योगसे बादल भी हुआ करते हैं। बादल वगैरह के होने से पूर्वोक्त गर्भ के लक्षण संपन्न हो जाते हैं। यदि किसी कारण इन दोनों दिनोंमें गर्जना न हो और बादल भी न हों तो वह वर्ष खराब समझना चाहिये।

९—कार्तिक शुक्ला एकादशी वा द्वादशीके दिन यदि आकाश बादलोंसे ढका हुआ हो तो आषाढमें अति वृष्टि होती है।

१०-कार्तिक शुक्ला द्वादशीकी रात्रिमें बिजली, वर्षा, गर्जना तथा पचरंगी बादलोंके होने से गर्भ का रजःपात ( गिरजाना ) समझना चाहिये।

११-कार्तिक शुक्ला द्वादशीकी रात्रिमें यदि बादल न हों तथा पूर्णिमा को भी बादल न हों तो पुष्पबन्ध ( गर्भ का ठहर जाना ) समझना चाहिये।

१२-कार्तिककी पूर्णिमाके दिन कृत्तिकानक्षत्र पूरी ६० घड़ी हो तो सुभिक्ष का लक्षण है। और यदि कृत्तिकाकी इस दिन वृद्धि अर्थात् दो कृत्तिका हो जांय तो वर्षा विशेष समझनी चाहिये।

१३-कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको भरणीनक्षत्र के ६० घड़ीके होनेसे उस वर्षमें कहीं अच्छी वृष्टि होती है और कहीं होती ही नहीं।

१४-कार्तिककी पूर्णिमा तिथि को रोहिणीनक्षत्रके होनेसे प्रजामें चैन नहीं रहता और दुर्भिक्ष होता है।

१५-कार्तिक मासकी तुला-संक्रान्तिके दिन वर्षाके होनेसे धान्य साधारण ही पैदा होता है और पौषमें ( कुछ ) सुभिक्षता होती है।

१६–कार्तिक मास की संक्रान्ति के आखिरी दो दिनमें खूब वर्षा हो जाय तो आगे वर्षाऋतु में अच्छी वर्षा होती है ।

१७–कार्तिक मास के कृष्णपक्ष (अर्थात् प्रचलित व्यवहारसे मार्गशीर्ष कृष्ण) की चतुर्थीको मृगशीर्षनक्षत्र हो और उस दिन वर्षा जहाँ जहाँ होजाय, वहाँ वहाँ आषाढमें अच्छी वर्षा होती है ।

१८–कार्तिक कृष्णा (मार्ग० कृ०) अष्टमीको यदि बिजलियाँ दिखाई दें तो श्रावण में वृष्टि अवश्य होगी ।

## मार्गशीर्षः ।

तुषारमलिनौ ताम्रौ चन्द्रार्कौ मार्गतस्त्रये ।
आषाढशुक्लसप्तम्यारब्धे वृष्टिर्दिनत्रये ॥ १६ ॥

मार्गशीर्षप्रतिपदि न विद्युन्न च गर्जितम् ।
न वृष्टिश्चेत्तदा गर्भे कुशलं कुशला विदुः ॥ २० ॥

मार्गशुक्लद्वितीयातो दिवसा गर्भधारणाः ।
यद्देशे यत्रभे गर्भो वृष्टिस्तत्रैव तत्रभे ॥ २१ ॥

मार्गशुक्लद्वितीयायां दक्षिणः पवनो यदि ।
शनिवारोऽपि वा तत्र तदा क्लेशावहो नृणाम् ॥ २२ ॥

दशम्यां मार्गशुक्लायामहोरात्रप्रवाहिणा ।
वातेनोत्तरजातेन गर्भधारणयोग्यता ॥ २३ ॥

मार्गशुक्लदशम्यां तु यदि गर्जति वारिदः ।
ज्येष्ठकृष्णे श्रावणे वा तदा वृष्टिर्भविष्यति ॥ २४ ॥

मार्गस्य शुक्लद्वादश्याममायां यदि वर्षति ।
तदा तत्र शुभा वृष्टिर्भवेद्भाविनि वत्सरे ॥ २५ ॥

मार्गकृष्णे चतुर्थ्याद्यास्तिथयो गर्भधारणाः ।
गर्भे तत्राहिते नूनं वर्षत्याषाढशुक्लके ॥ २६ ॥

मघायां मार्गकृष्णायां स विद्युन्मेघदर्शने ।
आषाढशुक्ले पर्जन्यश्चतुर्थ्यां वर्षति ध्रुवम् ॥ २७ ॥

मार्गे चतुर्थ्यां पंचम्यां षष्ठ्यां श्लेषामघाभगः ।
गर्भिताः पूर्वफल्गुन्यां त्रिरात्रं वृष्टिदाः शुचौ ॥ २८ ॥

उत्तराहस्तचित्रास्तु सप्तम्यादिषु गर्भिताः ।
मार्गेऽष्टम्यां शुचौ स्वात्यां त्रिरात्रं भूरिवृष्टिदाः ॥ २९ ॥

मार्गस्य कृष्णसप्तम्यां निशीथे गर्जितं शुभम् ।
मार्गकृष्णाष्टमी विद्युच्छ्रावणे मासि वर्षति ॥ ३० ॥

कृष्णाष्टम्यां मार्गमासे पूर्ववायुः सुभिक्षकृत् ।
अन्यतः पवनः कुर्य्याद् दुर्भिक्षं भाविवत्सरे ॥ ३१ ॥

मार्गकृष्णाष्टमी स्वातिचित्राभ्यां यदि युज्यते ।
तत्राभ्रे सति चाषाढे तस्मिन्नृक्षे प्रवर्षति ॥ ३२ ॥

मार्गस्य कृष्णे सप्तम्यां नवम्यामीशदिग् यदि ।
मेघच्छन्ना तदा स्तोकं वृष्टिर्वातोऽथवा वहेत् ॥ ३३ ॥

दशम्यां मार्गकृष्णायां रात्रौ वर्षति वारिदः ।
तदा भाद्रपदे मासे वृष्टिर्भवति भूयसी ॥ ३४ ॥

एकादश्यां मार्गकृष्णे दक्षिणः पवनो यदि ।
विद्युच्च वार्द्दलं तत्र तदा दुर्भिक्षसंभवः ॥ ३५ ॥

दशम्यादित्रये मार्गे चित्रास्वातिविशाखभे ।
गर्भे सति शुचौ तद्भे त्रिरात्रं वृष्टिसंभवः ॥ ३६ ॥

द्वादश्यां च त्रयोदश्यां चतुर्दश्याममातिथौ ।
वायुः सार्वदिशीकश्चेन्मार्गेऽषाढे स वर्षति ॥ ३७ ॥

मार्गशीर्षे चतुर्दश्यां दर्शे वा दृश्यते यदि ।
मेघैराच्छादितो भानुस्तदा सस्यमहार्घता ॥ ३८ ॥

अमामूलेऽल्पमूल्यत्वममाशाक्रे महार्घता ।
शन्यर्ककुजवारेण हन्त्यमा शलभादिभिः ॥ ३९ ॥

मार्गशीर्षेऽपि संक्रांतौ यदि वर्षति कर्हिचित् ।
मध्यमं जायते सस्यं पौषमासे सुभिक्षता ॥ ४० ॥

१९–मार्गशीर्ष, पौष और माघमें यदि सूर्य और चन्द्रमा बर्फके गिरनेसे मैले हों, ताँबेके रंग के समान हों तो आषाढ शुक्ला सप्तमीसे तीन दिन तक वृष्टि समझनी चाहिये।

२०–मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाको यदि बिजली, गर्जना और वर्षा न हो तो गर्भ को संपन्न समझना ऐसा पण्डितोंका मत है।

२१–मार्गशीर्ष शुक्लामें द्वितीयासे ( ११ दिन तक ) गर्भ धारणके दिन हैं। इन दिनों में जिस नक्षत्र के रोज जहाँ वृष्टि हुई हो, वहाँ उसी नक्षत्र पर सूर्यके आने पर वर्षा होगी।

जैसे मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्थीको पुष्यनक्षत्र हो और इस दिन यहाँ वर्षा हुई हो तो जब सूर्य इस पुष्य नक्षत्र पर आवेगा तब यहाँ वर्षा होगी। एक एक नक्षत्र पर सूर्य १३ दिन रहा करता है।

२२–मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीयाको यदि दक्षिणका पवन चले और शनिवार भी होवे तो वह वर्ष मनुष्यों के लिये क्लेश देनेवाला जानना चाहिये ।

२३–मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीको यदि सारे रात दिन उत्तरी पवन चले तो गर्भ धारण हुआ समझना चाहिये।

२४–मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीको यदि बादलोंकी गर्जना होवे तो ज्येष्ठ या श्रावणकृष्ण ( प्रचलित व्यवहार से आषाढकृष्ण वा भाद्रकृष्ण ) में वर्षा होती है ।

२५-मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी और अमावस्या के रोज़ यदि वर्षा हो जावे तो आगे वर्षा-काल में अच्छी वर्षा होवे।

२६-मार्गशीर्ष कृष्ण (पौषकृष्ण) में चतुर्थी से ( ६ दिन तक ) गर्भ धारणकी तिथियाँ हैं। इन दिनों में गर्भके पूर्वोक्त लक्षण दिखाई देने से आषाढशुक्ला में निश्चयपूर्वक वर्षा होती है।

२७-मार्गशीर्ष कृष्ण ( पौषकृष्ण ) में मघानक्षत्रके दिन बिजलियों सहित काले बादलों के दिखाई देने से आषाढ शुक्ला चतुर्थी को निश्चय से वृष्टि होती है।

२८-मार्गशीर्ष कृष्ण ( पौषकृष्ण ) में चतुर्थीके दिन अश्लेषानक्षत्रके होने पर, पञ्चमी को मघाके और षष्ठीको पूर्वाफाल्गुनीके होने पर यदि पूर्वोक्त पांच प्रकारसे गर्भ धारण होवे तो आषाढ में पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके आने पर तीन राततक वृष्टि होती है।

२९-मार्गशीर्ष कृष्ण ( पौ० कृ० ) में सप्तमीके दिन उत्तराफाल्गुनीके होने पर अष्टमीको हस्तके और नवमीको चित्राके होने पर जो गर्भ रहता है, उससे आषाढ में अष्टमीको* स्वातिनक्षत्र के आने से तीन राततक खूब वर्षा होती है।

३०- मार्गशीर्ष कृष्ण ( पो० कृ० ) सप्तमीकी अर्द्धरात्रि में गर्जना होना उत्तम है। और मार्गशीर्ष कृष्ण ( पो० कृ० ) अष्टमीको बिजलियाँ चमकने से श्रावण मास में वर्षा होती है।

३१- मार्गशीर्ष कृष्ण ( पो० कृ० ) अष्टमीको पूर्वकी हवासे सुभिक्ष होता है। और इसके अलावा अन्यदिशाओंकी वायुसे दुर्भिक्ष पड़ता है।

३२- मार्गशीर्ष कृष्ण (पो० कृ०) अष्टमीको स्वाति और चित्राके योग होने पर यदि बादल दिखाई दें तो आषाढमास में इन्हीं दोनों नक्षत्रोंके दिन वर्षा होगी।

३३- मार्गशीर्ष कृष्ण ( पौ० कृ० ) सप्तमी और नवमीको यदि ईशान-कोण में काले बादल खूब हों तो उस वर्ष वृष्टि या हवा कम होय।

३४- मार्गशीर्ष कृष्ण ( पौ० कृ० ) दशमी की रात्रि में वर्षा के होने से भाद्रपद मास में खूब वर्षा होती है।

---

* यह स्वातिनक्षत्र आषाढ शुक्ला अष्टमीको कभी हो आता है। प्रायः यह प्रतिवर्ष नवमी ( भडल्या नवमी) को आया करता है।

३५- मार्गशीर्ष कृष्णा ( पौष कृष्णा ) में एकादशीके दिन दक्षिणका पवन चले, बादल बिजलियाँ भी होवें तो दुर्भिक्ष पड़ता है ।

३६- मार्गशीर्ष कृष्णा ( पौ० कृ० ) में दशमीको चित्रानक्षत्रके, एकादशीको स्वातिके और द्वादशीको विशाखानक्षत्रके होने पर यदि गर्भ रहे तो आषाढके महीनों में उन्हीं नक्षत्रोंके आने पर तीन राततक वृष्टि होती है ।

३७- मार्गशीर्ष कृष्णा ( पौष कृष्णा ) में द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या को चौतरफी हवाके चलनेसे आषाढमें वर्षा होती है ।

३८- मार्गशीर्ष कृष्णा ( पौ० कृ० ) में चतुर्दशी या अमावस्याको यदि सूर्य बादलों से ढका हुआ होतो धान्य की महँगाई रहे ।

३९- मार्गशीर्ष कृष्णा ( पौ० कृ० ) अमावस्याको मूलनक्षत्रके होने से सस्ताई और ज्येष्ठानक्षत्रसे महँगाई होती है। तथा इस दिन शनि, रवि, मंगलवारके होने से टीडियों आदि द्वारा अकाल पड़ता है ।

४०- मार्गशीर्षमें भी संक्रान्ति-प्रवेशके दिन वर्षाके होने से साधारण धान्य पैदा होता है और पौषमासमें सस्ताई रहती है ।　　इति मार्गशीर्षः ।

## पौषः ।

पौषे मूलाद् भरण्यन्तं चन्द्रचारेण गर्भति ।
आर्द्रादिभे विशाखान्ते सूर्यचारेण वर्षति ॥ ४१ ॥

पौषशुक्लादितो गर्भो यदा दशतिथिष्वपि ।
चातुर्मास्यं सुवृष्टिः स्याद् गर्भपातो मधौ न चेत् ॥४२॥

पूर्वाषाढागतो भानुर्जीमूतैर्यदि वेष्टितः ।
वर्षत्यार्द्रादिमूलान्तं प्रत्यक्षं प्रत्यहं तदा ॥ ४३ ॥

रेवत्यर्के तु वृष्टिश्चेद्दशर्क्षेषु न वर्षति ।
गर्भपातः स विज्ञेय इत्युक्तं नारदर्षिणा ॥ ४४ ॥
पौषशुक्ले द्वितीयायां विद्युद्घनघटा हिमम् ।
मेघच्छन्नं नभो वापि सम्पन्नः श्रावणस्तदा ॥ ४५ ॥
पौषशुक्लचतुर्थ्यां तु विद्युद्घनघटा शुभा ।
मेघच्छन्नं नभः श्रेष्ठं मत्स्येन्द्रधनुरादि च ॥ ४६ ॥
विद्युन्मेघो धनुर्मत्स्यो यद्येकोऽपि न जायते ।
अवर्षणं तदा ज्ञेयं प्रावृट्काले बुधा विदुः ॥ ४७ ॥
पौषशुक्ले शतभिषग् विद्युन्मेघाष्टमारुतैः ।
कृष्णाषाढचतुर्थीतः सप्ताहं द्रोणवृष्टिकृत् ॥ ४८ ॥
पौषशुक्ले पूर्वभाद्रां विशेषेण प्रतीक्षयेत् ।
परिवेषतडिद्वृष्टिगर्जितैर्वृष्टिरुत्तमा ॥ ४९ ॥
पौषस्य यदि पञ्चम्यां शुक्लायां हिमवर्षणम् ।
तदा स्यान्महती वृष्टिः प्रावृट्काले न संशयः ॥ ५० ॥
पौषे मेघः शुक्लषष्ठ्यां श्रावणे तर्हि वर्षणम् ।
यदि वृष्टिः पौषषष्ठ्यां भाद्रकृष्णे घनोदयः ॥ ५१ ॥
पौषशुक्ले तु सप्तम्यामष्टम्यां नवमीतिथौ ।
यदि गर्जति पर्जन्यः शुभो गर्भस्तदा ध्रुवः ॥ ५२ ॥
रेवत्यादित्रये पौषे सप्तम्यादिदिनत्रये ।
हिमपातैः शुभैर्वातैर्विद्युद्भिर्गर्भसम्भवः ॥ ५३ ॥
अष्टम्याश्च नवम्यां च पौषशुक्लेऽश्विनी यदि ।
सप्तम्यां रेवतीविन्दुहिमवातैः शुभावहा ॥ ५४ ॥
एकादश्यां पौषशुक्ले विद्युद्घनघटाहिमम् ।
यदि स्याद्रोहिणीयोगः सजलस्तर्हि भाव्यते ॥ ५५ ॥

एकादश्यां नवम्यां च पौषशुक्ले वलाहकाः ।
पूर्वस्यां दिशि गर्जंतो जायन्ते सस्यघातकाः ॥ ५६ ॥
पौषे त्रयोदशी शुक्ला शनिशुक्रकुजैर्युता ।
यदि वर्षति गोधूमाद्यन्नदुर्भिक्षसम्भवः ॥ ५७ ॥
प्रभूतं जलमाषाढेऽमावास्यायां प्रवर्षति ।
सम्पत्तिः सर्वधान्यानां दुग्धवत्यश्च धेनवः ॥ ५८ ॥
पौषशुक्लचतुर्दश्यां विद्युद्दर्शनमुत्तमम् ।
तेनाषाढे कृष्णपक्षे भवेन्मेघमहोदयः ॥ ५९ ॥
पर्जन्यः सूर्यमाच्छाद्य गर्जेदैरावतान्वितः ।
विद्युन्नृत्यति चेत्तत्र तदा गर्भः शुभावहः ॥ ६० ॥
उत्तरस्यां यदा विद्युत् स्वर्णवर्णा प्रदीप्यते ।
सा विद्युज्जलदा ज्ञेया शीघ्रं मेघमहोदयः ॥ ६१ ॥
ऐन्द्री तु जलदा विद्युदाग्नेयी जलनाशिनी ।
यामी चाल्पफला विद्युन्नैर्ऋत्या निर्मला मता ॥ ६२ ॥
वारुणी सस्यसम्पत्त्यै वातकृद्वायवी तथा ।
कौवेरी क्षिप्रवर्षाय सदैशानी शुभावहा ॥ ६३ ॥
यत्र देशे सुभिक्षं स्याद्विद्युत्तत्रैव गच्छति ।
पौषशुक्लचतुर्दश्यां विद्युद्भेदा इमे स्मृताः ॥ ६४ ॥
पौषमासे पूर्णिमायां चन्द्रमा नैव दृश्यते ।
उत्तरस्यां दक्षिणस्यां यदा विद्युत् प्रकाशते ॥ ६५ ॥
अभ्रच्छन्नं नभो वापि जलयोगोऽयमुत्तमः ।
अमायां श्रावणे मासि महावृष्टिर्भविष्यति ॥ ६६ ॥
पौषस्य पूर्णिमा विद्युत्सम्पन्ना वा हिमान्विता ।
अभ्रच्छन्नं नभो वा स्यादाषाढे मा प्रवर्षति ॥ ६७ ॥

यद्येकलक्षणो वापि गर्भः पौषे न जायते ।
तदा वदन्ति दैवज्ञा वर्षाकाले ह्यवर्षणम् ॥ ६८ ॥
पौषस्य कृष्णपंचम्यां यदि मंगलवासरः ।
तस्यां मेघाः प्रवर्षंति तदा प्रचुरधान्यता ॥ ६९ ॥
पौषस्य कृष्णपंचम्यां नभो विमलतारकम् ।
स्वात्यां च हिमपातः स्याच्छ्रावणे तत्र वर्षति ॥ ७० ॥
पौषस्य कृष्णसप्तम्यां निशीथे यदि वर्षति ।
तदा प्रावृषि पर्जन्यः परं गर्जति वर्षति ॥ ७१ ॥
पौषस्य कृष्णसप्तम्यां स्वातियोगः सुभिक्षकृत् ।
अभ्रच्छन्ने जलं स्वल्पं जलपाते महाजलम् ॥ ७२ ॥
पौषस्य कृष्णसप्तम्यां स्वात्यां पतति चेद्धिमम् ।
यदि गर्जति पर्जन्यस्तदा सस्यैः प्रजासुखम् ॥ ७३ ॥
पौषस्य कृष्णसप्तम्यां स्वातीभं यदि दृश्यते ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तदा सर्वत्र जायते ॥ ७४ ॥
पौषस्य कृष्णसप्तम्यां वृष्ट्याद्यैरष्टमारुतैः ।
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां स्वातिभं साधु वर्षति ॥ ७५ ॥
अष्टम्यां पौषकृष्णायां निशीथे यदि गर्जति ।
तदा वदन्ति दैवज्ञाश्चातुर्मास्यं सुवर्षति ॥ ७६ ॥
अष्टम्यां पौषकृष्णायां यदि वृष्टिर्न जायते ।
तदार्द्रार्कसमायोगे महावृष्टिर्भविष्यति ॥ ७७ ॥
पौषकृष्णदशमी यदि गर्जति ।
श्रावणशुक्ला दशमी वर्षति ॥ ७८ ॥
पौषकृष्णदशम्यां स्याद्विशाखा निशि वा दिवा ।
शुभयोगोऽयमाख्यातः प्रावृषि प्रौढवृष्टिदः ॥ ७९ ॥

दशम्यां पौषकृष्णायां विद्युद्घनघटा यदि ।
तदा भाद्रपदे वृष्टिः पूर्णिमायां भविष्यति ॥ ८० ॥
पौषकृष्णे त्रयोदश्यां चतुर्दश्याममातिथौ ।
यदि मेघघटाविद्युत् श्रावणे तर्हि वर्षति ॥ ८१ ॥
पौषेऽमायां यदा विद्युत् पूर्वस्यां दिशि दृश्यते ।
हिमं वा श्रावणे तर्हि श्रावणी चातिवर्षति ॥ ८२ ॥
अमायां यदि पौषस्य शन्यादित्यारवासराः ।
तदा याति महार्घत्वं धान्यं द्वित्रिचतुर्गुणम् ॥ ८३ ॥
पौषेऽमायाश्चतुःपादैः प्रावृण्मासचतुष्टयम् ।
प्रकल्प्य वृष्टिमेघाद्यैस्तत्तन्मासस्थितिं वदेत् ॥ ८४ ॥
पौषे द्वादशमासाः स्युः सार्द्धद्वयहविभागतः ।
पौषादिषु यथा येषु तथा तेषूपपद्यते ॥ ८५ ॥
पौषसंक्रमणे धान्यमूल्यं द्वित्रिचतुर्गुणम् ।
रविणा शनिनाऽऽरेण वारेण च भविष्यति ॥ ८६ ॥
समता बुधशुक्राभ्यां मूल्यार्द्धं गुरुसोमतः ।
इत्थं वारानुसारेण फलं केचिद्वदन्ति हि ॥ ८७ ॥

४१-पौषमें चन्द्र-गति द्वारा मूलनक्षत्रसे भरणीनक्षत्र तक पूर्वोक्त पाँच प्रकारसे गर्भ रहे तो, सूर्यकी गतिसे आर्द्रानक्षत्र पर जब सूर्य आवे तबसे विशाखानक्षत्र पर जावे तब तक वर्षा होती है ।

पौषमें मूलनक्षत्र ( अर्थात् मूलनक्षत्र पर चन्द्रमा ) प्रायः अमाको आता है और आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य आषाढमें आया करता है । एवं १३ दिन तक उसी नक्षत्र पर रहता है । इस तरह प्रत्येक नक्षत्र को १३ दिन क्रम से भोगता हुआ कार्तिक में विशाखानक्षत्र पर जाता है ।

४२-पौष शुक्लामें प्रतिपदासे दशमी तक गर्भ रह जाय तो भी चातुर्मास्यमें अच्छी वृष्टि होती है । यदि इस गर्भका चैत्रमें पतन न होवे तब ।

४३-पौषमें पूर्वाषाढनक्षत्रका सूर्य यदि बादलों से ढका हुआ होवे तो आषाढमें आर्द्रा पर जब सूर्य आवे तब मूलनक्षत्र पर्य्यन्त नित्य वर्षा होय ।

४४-रेवतीके सूर्यमें अर्थात् चैत्रमें वर्षा हो जावे और रेवतीके आगेके अश्विनी आदि दश नक्षत्रों में नहीं होवे तो गर्भपात समझना-यह नारद ऋषिका मत है ।

४५-पौष शुक्ला द्वितीयाको बिजली, बादलों की घटा और पाला ( बर्फ ) के होने से अथवा केवल आकाशमें बादलों के आच्छादित होने से ही श्रावणका महीना सम्पन्न समझना चाहिये ।

४६-पौष शुक्ला चतुर्थीको आकाशमें बिजली, बादलों की घटा, मत्स्य, इन्द्रधनुष वगैरह का होना उत्तम है ।

४७-यदि उपर्य्युक्त तिथिमें बिजली, मेघ, मत्स्य और इन्द्रधनुष वगैरह में से एक भी न होवे तो वर्षाऋतुमें अनावृष्टि समझनी चाहिये । ऐसा पडितोंने कहा है ।

४८-पौष शुक्लामें शतभिषानक्षत्रके दिन बिजली, कालेबादल और आठों दिशाकी हवा चले तो आषाढ कृष्ण ( प्रचलितव्यवहार से श्रावण कृष्ण) चतुर्थी से सात दिन तक द्रोण प्रमाण में वर्षा होय ।

४९- पौष शुक्लामें पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रकी विशेष परीक्षा करनी चाहिये । इस दिन सूर्य चन्द्रमाकी कुण्डलना होने से, बिजली, वर्षा और गर्जना होने से वर्षा ऋतु में अच्छी वृष्टि होती है ।

५०- पौष शुक्ला पंचमीको यदि हिम ( पाला ) गिरे तो वर्षा ऋतु में निःसन्देह अर्थात् मंगल आदि विरोधी ग्रह हों तो भी खूब वर्षा होती है ।

५१- पौष शुक्ला षष्ठीको केवल बादलों के होने से श्रावणमें वर्षा होती है और यदि इस दिन वृष्टि होजावे तो भाद्रपद कृष्णा अर्थात् आश्विन कृष्णामें वर्षा होगी ।

५२- पौष शुक्ला में सप्तमी, अष्टमी और नवमी इन तिथियों में बादलों की गर्जना होने से निस्सन्देह गर्भ अच्छा समझना चाहिये ।

५३- पौष शुक्लामें सप्तमीके दिन रेवतीनक्षत्रके, अष्टमीको अश्विनीके और नवमी को भरणीनक्षत्रके होने पर बिजली चमके, बर्फ गिरे या अच्छी हवा चले अर्थात् पूर्व, उत्तर ईशान, पश्चिमकी हवा चले तो गर्भका होना समझना चाहिये ।

५४- पौष शुक्लामें सप्तमीके दिन रेवतीनक्षत्रके और अष्टमी, नवमीको अश्विनी नक्षत्रके होने पर जलकी बूंदें, बर्फ ( पाला ) और पूर्व या उत्तरकी हवाका चलना उत्तम है।

५५- पौष शुक्ला एकादशीको बिजली, बर्फ और बादलों की घटा होवे और यदि इस दिन रोहिणीनक्षत्रका योग भी होवे तो उस वर्ष वृष्टि अच्छी होती है।

५६- पौष शुक्लामें एकादशी और नवमीको पूर्व दिशामें गर्जने वाले बादल धान्यके नाश करनेवाले होते हैं।

५७- पौष शुक्ला त्रयोदशीको शनि, शुक्र या मंगलवारके होने पर वर्षा हो जावे तो गेहूँ वगैरह अन्नोंका दुर्भिक्ष समझना चाहिये।

५८- पौषकी अमावस्यामें वृष्टिके होने से आषाढमें खूब जल बरसता है और सब धान्यों की सम्पत्ति होती है तथा गायें भी दूधवाली होती हैं।

५९- पौष शुक्ला चतुर्दशीको बिजली दीखना उत्तम है। इससे आषाढ कृष्ण अर्थात् श्रावण कृष्णामें खूब जल बरसता है।

६०-यदि उक्त दिनमें बादल सूर्य को ढककर ऐरावत* ( लाल रंग का लंबा इन्द्रधनुषकी तरह १ चिन्ह ) से युक्त होकर गर्जना करे तथा बिजलियाँ भी चमकें तो गर्भ श्रेष्ठ समझना चाहिये।

६१-यदि उक्त दिनमें उत्तर दिशाकी तरफ सुनहरी बिजली दिखाई देवे तो उसे शीघ्र ही बहुत मेघ आने वाला समझना चाहिये।

६२-६३-पूर्व दिशाकी बिजली वर्षा करनेवाली, अग्निकोणकी वर्षा रोकनेवाली, दक्षिण कीकम फल वाली, नैऋत्यकोणकी जल नाश करनेवाली, पश्चिमकी धान्य पैदा करनेवाली, वायुकोणकी हवा चलने वाली, उत्तरकी शीघ्र ही जल बरसानेवाली और ईशानकोण की सदा ही उत्तम होती है।

६४-जिस देशमें सुभिक्ष होने वाला है, उसी देशकी तरफ बिजली जावेगी। यह सब बिजलीके लक्षण केवल पौष शुक्ला चतुर्दशीके समझने चाहिए।

---

* "एतदिन्द्र धनुर्वक्रं, तदेव ऋजु रोहितम्। ऐरावतं च तत्प्रोक्तं फलमस्य धनुः समम्"-।इति।

६५-६६-पौषमासकी पूर्णिमाको बादलों के कारण चन्द्रमा नहीं दीखे और उत्तर तथा दक्षिण दिशा में बिजलियाँ चमकें और आकाश भी खूब बादलों से घिरा हुआ हो तो यह जल बरसाने का उत्तम योग है। इससे श्रावणकी अमावस्यामें अत्यन्त वर्षा होती है।

६७-पौषकी पूर्णिमाको बिजली चमके या बर्फ (पाला) गिरे अथवा केवल आकाशमें खूब बादल ही हों तो आषाढ में अमावस्याके दिन वर्षा होती है।

६८-पौषके महीनेमें यदि गर्भके कुछ भी चिन्ह दिखाई न दें तो वर्षा ऋतुमें वर्षाका सर्वथा अभाव होता है यह ज्यौतिषियों का मत है।

६९-पौष कृष्णा (प्रचलित व्यवहार में माघ कृष्णा) पञ्चमी को मंगलवार हो और उस दिन वर्षा भी होजावे तो उस वर्ष खूब धान्य पैदा होता है।

७०-पौषकृष्णा (मा० कृ०) पञ्चमीकी रात्रिके आकाशमें यदि स्वच्छ तारे निकले हों और स्वातिनक्षत्रके दिन पाला गिरा हो तो श्रावणके महीनेमें स्वातिनक्षत्रके दिन वर्षा समझनी चाहिये। इस दिन स्वातिनक्षत्र प्रायः आया ही करता है।

७१-पौष कृष्णा (मा० कृ०) सप्तमीकी आधीरातमें वर्षा होने से वर्षाऋतुमें मेघ खूब गर्जता और बरसता है।

७२-पौष कृष्णा (मा० कृ०) सप्तमीको स्वातिनक्षत्रका आना सुभिक्षकारी है। इस दिन केवल बादलों के होने से वर्षाऋतुमें वृष्टि कम होती है और वर्षा होने से खूब वृष्टि होती है।

७३-पौष कृष्णा (मा० कृ०) सप्तमीको स्वातिनक्षत्रका योग आने पर पाला गिरे और गर्जना हो तो प्रजाको धान्यसे अच्छा सुख मिले।

७४-पौष कृष्णा (मा० कृ०) सप्तमीको केवल स्वातिनक्षत्रके भी होने से सब जगह सुभिक्ष और कुशलता होती है।

७५-पौष कृष्णा (मा० कृ०) सप्तमीको वृष्टि और चौतरफी हवाके चलने से श्रावण शुक्ला सप्तमीको स्वातिनक्षत्रके रहने पर अच्छी वर्षा होती है।

(इस दिन चित्रा, स्वाति या विशाखा इन में से कोई अवश्य रहता है।)

७६-पौष कृष्णा (माघकृष्णा) अष्टमीकी आधीरातमें गर्जना होने से चातुर्मास्य में

(आर्द्रा नक्षत्र पर जब सूर्य आवे तब से ४ मास तक) अच्छी वर्षा होती है। इस तरह ज्यौतिषी कहते हैं।

७७-पौष कृष्णा (मा० कृ०) अष्टमीको वृष्टिके न होने से, आर्द्रा पर सूर्य आवे तब महा-वृष्टि होती है।

७८-पौष कृष्णा (मा० कृ०) दशमीको गर्जना होने से श्रावण शुक्ला दशमीको वृष्टि होती है।

७९-पौष कृष्णा (मा० कृ०) दशमीको रात या दिनमें विशाखानक्षत्रके होने से, यह वर्षाऋतुमें जल बरसाने वाला उत्तम योग कहा गया है।

८०-पौष कृष्णा (मा० कृ०) दशमीको बिजलियाँ और बादलों की खूब घटा होने से भाद्रपदकी पूर्णिमा में वृष्टि होती है।

८१-पौष कृष्णा (मा० कृ०) त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या को बादलों की घटा और बिजलियों के होने से श्रावण में वर्षा होती है।

८२-पौष कृष्णा (मा० कृ०) अमावस्या को पूर्व दिशामें बिजलियाँ हों या पाला गिरे तो श्रावणकी पूर्णिमामें अच्छी वर्षा होय।

८३-पौष कृष्णा (मा० कृ०) अमावस्या को शनिवार, रविवार या मंगलवारके होने से धान्य क्रम से दुगुना, तिगुना, और चौगुना महंगा होजाता है।

८४-पौषकी अमावस्या तिथिकी घडियों के चार हिस्से करके उनमें क्रमसे आषाढ, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मासकी कल्पना करे। इन महीनों की कल्पना किई हुई जिन घड़ियों में जैसी वर्षा या बादल वगैरह हों वैसा ही फल उन महीनों का कहना चाहिए।

८५-पौषके ३० दिनों में २॥ दिनके हिसाबसे पौषसे प्रारंभ कर मार्गशीर्ष तक के १२ महीनों को कल्पना करनी चाहिये। इस कल्पनामें जिस महीनेकी तिथिको जैसी वर्षा वगैरह हो वह ही फल उन १२ महीनों का समझना चाहिये।

जैसे पौष शुक्ला प्रतिपदा से २॥ दिन अर्थात् तृतीया तिथिके १२ बजे तक पौषमासकी कल्पना इसके बाद २॥ दिन अर्थात् षष्ठी तिथि तक माघके महीनेकी कल्पना होती है। इस तरह १२ महीनों की कल्पना करनी चाहिये।

८६-८७-पौष में संक्रान्ति के दिन रवि, शनि या मंगलवार के होने से धान्य क्रम से दूना, तिगुना और चौगुना महँगा होजाता है। और बुध या शुक्रवार से समानता, बृहस्पति या चन्द्रवार से आधा मूल्य होजाता है। इस तरह वारों के क्रम से कई मनुष्य धान्य का फल कहते हैं।

इति पौषः

## माघः ।

पौषारब्धोडुसंदोहे मूलाद्ये भरणीपरे ।
विद्युद्गर्जितवाताभ्रैरार्द्राकर्दिषु वृष्टयः ॥ ८८ ॥
माघस्य प्रतिपच्छुक्ला सवाताभ्रापि निर्जला ।
तैलद्रव्यं महार्घत्वं गन्धद्रव्यं च यास्यति ॥ ८९ ॥
माघशुक्लद्वितीयायां विद्युद्घनघटा यदि ।
तृतीया निर्जला गर्जेत् तदा धान्यमहार्घता ॥ ९० ॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वृष्टिश्चेदभ्रमेव वा ।
ताम्बूलनालिकेराद्या गमिष्यन्ति महार्घताम् ॥ ९१ ॥
माघस्य पंचमी शुक्ला मेघाढ्यापि न वर्षति ।
तदा भाद्रेऽल्पवृष्टिः स्यादवृष्टिस्तूत्तरेऽनिले ॥ ९२ ॥
यदि माघे शुक्लषष्ठी न गर्जति रसास्तदा ।
चंद्रवारे तु जायंते कार्पासाद्या महार्घताम् ॥ ९३ ॥
सप्तम्यां माघशुक्लायाः पादैर्मासचतुष्टयम् ।
प्रकल्प्या वृष्टिमेघाद्यैस्तत्तन्मासस्थितिं वदेत् ॥ ९४ ॥
माघशुक्ले तु सप्तम्यां दुर्भिक्षं चन्द्रवासरे ।
तत्र चेन्निर्मलो भास्वाननावृष्टिस्तदा भवेत् ॥ ९५ ॥
माघशुक्ले तु सप्तम्यां वृष्ट्याषाढेऽतिवर्षति ।
मूलं तपति चे ज्यैष्ठे सुभिक्षं सर्वथा तदा ॥ ९६ ॥
माघशुक्ले तु सप्तम्यां हैमी विद्युल्लता यदि ।
वृष्टिर्घनघटा वापि चातुर्मास्यं सुवर्षति ॥ ९७ ॥

माघी च सप्तमी शुक्ला तृतीया माधवी यदि ।
एकस्मिन् वासरे स्यातां रोलिकासंभवस्तदा ॥ ९८ ॥
सप्तम्यामथ चाष्टम्यां नवम्यां माघशुक्लके ।
रवेरस्तंगमे मेघा अधमा उत्तमाः समाः ॥ ९९ ॥
मेघाच्छन्नमहोरात्रं वायुः पूर्वस्तथोत्तरः ।
विद्युत्पश्चिमतस्तर्हि वर्षाकालेऽतिवृष्टयः ॥ १०० ॥
माघशुक्लाष्टमी साभ्रा निरभ्रा सप्तमी यदि ।
अनावृष्टिस्तदाषाढे श्रावणे वृष्टिमादिशेत् ॥ १०१ ॥
अष्टम्यां माघशुक्लायां मेघाच्छन्नो रविर्यदि ।
चन्द्रस्तु निर्मलस्तत्र सैषा दुर्भिक्षसूचना ॥ १०२ ॥
भरणीकृत्तिके माघे विशेषेण परीक्षयेत् ।
साभ्रयोः सस्यनिष्पत्तिरनिष्पत्तिरनभ्रयोः ॥ १०३ ॥
अष्टम्यां माघशुक्लायां कृत्तिकाभं यदा तदा ।
फाल्गुने रोलिका वा स्याच्छ्रावणे वा न वर्षति ॥१०४॥
माघशुक्लेऽष्टमीतिथ्यामनभ्र उदितो रविः ।
आर्द्रार्के श्रावणान्ते च तदा वृष्टिर्न जायते ॥ १०५ ॥
माघशुक्लनवम्यान्तु परिवेषो निशाकरे ।
*आषाढे सकले वृष्टिं जानीयादाश्विनेऽपि च ॥ १०६ ॥
माघशुक्लनवम्यां चेत्प्रातः स्यादष्टमीतिथिः ।
तदा चार्द्रागते सूर्ये श्रावणे च न वर्षति ॥ १०७ ॥
माघशुक्लनवम्यां चेन्निरभ्रं दृश्यते नभः ।
साभ्रो यामश्चतुर्थः स्याद्वृष्टिर्भाद्रपदे तदा ॥१०८॥

---

* वृष्टिहानिं विजानीयादाषाढे चाश्विनेऽपि चेति पाठान्तरं ।

नवमी निर्मला सर्वा साभ्रं किंचिन्न दृश्यते ।
तदा जलं न कुत्रापि प्राप्यते सागरं विना ॥ १०६ ॥
माघे दशम्यां वर्षा स्यादवर्षा नवमी यदि ।
वर्षागमोऽतिहर्षाय न वर्षावसरस्तदा ॥ ११० ॥
माघशुक्लनवम्यां तु मेघाच्छन्नमहर्निशम् ।
तदा भाद्रपदे नूनमतिवृष्टिर्भविष्यति ॥ १११ ॥
माघमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यादिदिनाष्टके ।
साभ्रे सत्यतिवृष्टिः स्यादनावृष्टिर्निरभ्रके ॥ ११२ ॥
माघ्यां चन्द्रपरीवेषो विद्युदुत्तरदक्षिणा ।
तथा वातो नभः साभ्रं कालो दुष्टस्तदा भवेत् ॥११३॥
माघमासे पूर्णिमायां यत्र यामेऽभ्रडम्बरः ।
वर्षाकाले तत्र मासे न वर्षति पयोधरः ॥ ११४ ॥
*माघकृष्णद्वितीयायां विद्युद्वार्दलमुत्तमम् ।
वर्षति श्रावणे भाद्रे सुभिक्षं तत्र जायते ॥ ११५ ॥
षष्ठयां तु माघकृष्णायां सुभिक्षं चित्रया भवेत् ।
साभ्रे नभसि वृष्टिः स्यादार्द्रर्कितत्र निश्चितम् ॥११६॥
माघस्य कृष्णसप्तम्यां विद्युद्घनघटाहिमम् ।
स्वात्यां वायुश्चण्डवेगः प्रावृट्कालसुवृष्टिकृत् ॥११७॥
माघे नवम्यां कृष्णायां मूलं यद्यर्कवासरे ।
तदा भाद्रपदे शुक्लनवम्यां वर्षति ध्रुवम् ॥ ११८ ॥
माघे नवम्यां कृष्णायां मूले विद्युद्घटाधनुः ।
दशमी नवमी शुक्ला वृष्टिदाषाढ़भाद्रयोः ॥ ११९ ॥

* चतुर्दश्यामिति वर्षप्रबोधपाठः । पूर्णिमायामिति वृष्टिप्रबोधे ।

नवम्यां च दशम्यां चैकादश्यां माघकृष्णके।
विद्युद्घनघटावाता भवंति बहुवृष्टये ॥ १२० ॥
माघकृष्णे तु सप्तम्यां त्रयोदश्यां च पूर्वदिक्।
मेघाच्छन्ना तदाषाढे सप्तरात्रं सुवर्षति ॥ १२१ ॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रेर्दिवानिशम्।
हिमं यद्युत्तरो वायुः सुभिक्षं तर्हि निर्दिशेत् ॥१२२॥
माघेऽमायामहोरात्रं हिमं वर्षति वायुवत्।
साभ्रं नभस्तदा भाद्रे पूर्णिमायां प्रवर्षति ॥ १२३ ॥
माघमासे तु संक्रांतौ यदि वर्षति वासवः।
बहुक्षीरयुता गावो बहुसस्या वसुंधरा ॥ १२४ ॥

८८-माघ में मूल नक्षत्र से भरणीनक्षत्र पर्यन्त बिजली, गर्जना, पूर्व या उत्तर की वायु और बादलों के होने से आर्द्रा पर सूर्य आवे तब से विशाखा पर जावे तब तक वर्षा होय।

अर्थात् मूल को उक्त लक्षण दिखाई दें तो आर्द्रा के १३ दिनों में पूर्वाषाढ को दीखें तो पूनर्वसु के १३ दिनों में इस तरह मूलादि भरणी पर्यन्त के ११ नक्षत्रों में वर्षा, बिजली आदि चिन्हों से आर्द्रा, विशाखादि ११ नक्षत्र तक सूर्य रहे तब तक वर्षा होय। सूर्य एक एक नक्षत्र पर १३ दिन रहा करता है।

८९-माघ शुक्ला प्रतिपदा को केवल वायु और बादल हुए भी हों किन्तु जल न बरसे तो तेल और गन्धवाली चीजें महँगी हो जाती हैं।

९०-माघ शुक्ला द्वितीया को बादल और बिजलियाँ होवें तथा तृतीया को केवल गर्जना ही होवे तो धान्य महँगा होता है।

९१-माघ शुक्ला चतुर्थी को वर्षा होजाय अथवा केवल बादल ही हों तो भी ताम्बूल (पान) और नारियल ( खोपरा ) वगैरह महँगे होंगे।

९२-माघ शुक्ला पञ्चमी को बादलों के होने पर भी यदि वर्षा न होवे तो भाद्रपद में वर्षा कम होती है और यदि इस दिन उत्तर दिशा की हवा चलती हो तो वर्षा का अभाव समझना चाहिये।

९३-माघ शुक्ला षष्ठी को सोमवार होने पर भी यदि बादलों में गर्जना न होवे तो कपास वगैरह महँगे होवें ।

९४-माघ शुक्ला सप्तमी को घड़ियों के चार विभाग करें और उनमें चातुर्मास्य की क्रमशः कल्पना करके जिस घड़ी में जैसी वर्षा या मेघघटा वगैरह दिखाई दें वही फल उन उन महीनों का कहना चाहिये ।

९५-माघ शुक्ला सप्तमी को सोमवार के होने से दुर्भिक्ष पड़ता है और यदि उसमें सूर्य भी निर्मल दिखाई दे अर्थात् बादल वगैरह नहीं हो तो अनावृष्टि समझनी चाहिए।

९६-माघ शुक्ला सप्तमी को वृष्टि के होने से आषाढ में अतिवृष्टि होती है। और ज्येष्ठ में मूलनक्षत्रके दिन सूर्य के खूब तपने पर सुभिक्ष होता है ।

९७- माघ शुक्ला सप्तमी को बिजली, वर्षा और बादलों की खूब घटा के होने से वर्षा ऋतु में अच्छी वृष्टि होती है ।

९८-माघ शुक्ला सप्तमी को और चैत्र शुक्ला तृतीया को एक ही बार के होने से उस वर्ष धान्य वगैरह में रोली लग जाती है अर्थात् वह नष्ट हो जाता है ।

९९-माघ शुक्ला में सूर्यास्त के बाद सप्तमी को बादलों का होना खराब, अष्टमी को उत्तम और नवमी को मामूली है ।

१००-उक्त तिथियों में रात दिन बादल हुए रहें, पूर्व या उत्तर की हवा चलती रहे और पश्चिम दिशा में बिजली चमकती रहे तो वर्षा ऋतु में अतिवृष्टि समझनी चाहिये ।

१०१-माघ शुक्ला सप्तमी को बादल न होने से और अष्टमी को होने से आषाढ में वर्षा न होकर श्रावण में होती है ।

१०२-माघ शुक्ला अष्टमी को सूर्य बादलों से ढका हो और रात्रि में चन्द्रमा साफ दीखता हो अर्थात् बादल न हों तो यह दुर्भिक्ष का लक्षण समझना चाहिये ।

१०३-माघ में भरणी और कृत्तिकानक्षत्र के दिन की विशेष परीक्षा करनी चाहिये। इन दिनों में बादलों के होने से धान्य की उत्पत्ति और न होने से धान्य की हानि होती है ।

१०४-माघ शुक्ला अष्टमी को यदि कृत्तिकानक्षत्र आजावे तो फाल्गुन में धान्य पर रोली लगे अथवा श्रावण में वर्षा का अभाव होता है।

१०५-माघ शुक्ला अष्टमी को सूर्योदय के समय बादल न होने से आर्द्रानक्षत्र पर सूर्य आवे और श्रावण के अन्त में अर्थात् पुनर्वसुनक्षत्र पर सूर्य आवे तब वर्षा नहीं होती है।

१०६-माघ शुक्ला नवमी की रात्रि में चन्द्रमा के कुण्डलना (चौतरफी चक्र) होने से संपूर्ण आषाढ में और आश्विन में वर्षा होती है।

यहाँ पर किसी का मत है कि उक्त तिथि में चन्द्रमा के कुण्डलना होने से आषाढ और आश्विन में वर्षा का अभाव होता है। अतः परीक्षा करके इसका निर्णय करना चाहिये।

१०७-माघ शुक्ला नवमी को प्रातःकाल अष्टमी तिथि का मेल होवे तो, आर्द्रानक्षत्र पर सूर्य के आने से आषाढ और श्रावण में वर्षा नहीं होती।

१०८-माघ शुक्ला नवमी को दिन भर बादल न हों और केवल इसके चौथे प्रहर में ही बादल दिखाई देवें तो भाद्रपद में वृष्टि समझनी चाहिये।

१०९-माघ शुक्ला नवमी को रात दिन कहीं पर भी बादल न हों तो उस वर्ष समुद्र के अतिरिक्त कहीं पर भी जल नहीं मिले। अर्थात् उस वर्ष सर्वथा ही वृष्टि का अभाव हो।

११०-माघ शुक्ला दशमी को वर्षा होय और नवमी को वर्षा नहीं भी होवे तो उस वर्ष वर्षा ऋतु अत्यन्त आनन्द देने वाली होती है। वर्षा की प्रतीक्षा करने का समय ही नहीं आता।

१११-माघ शुक्ला नवमी को रात दिन बादलों की घटा रहने से भाद्रपद में निस्संदेह अति वृष्टि होती है।

११२-माघ शुक्ला सप्तमी से आठ दिन तक बादलों के होने से उस वर्ष अतिवृष्टि और न होने से अनावृष्टि होती है।

११३-माघ की पूर्णिमा को चन्द्रमा के कुण्डलना का होना, उत्तर और दक्षिण की बिजलियां होना, खराब दिशा (नैऋत्य) की हवा का चलना तथा बादलों का होना-ये सब लक्षण खराब हैं।

११४-माघ की पूर्णिमा के प्रहरों में वर्षाऋतु के चारों महीनों की भावना करे। जिस प्रहर में बादल दिखाई दें उस प्रहर में कल्पना किये हुए मास में अनावृष्टि होती है।

११५-माघकृष्णा ( प्रचलित व्यवहार से फाल्गुन कृष्णा ) द्वितीया को बिजलियाँ और बादलों के होने से श्रावण तथा भाद्रपद में वर्षा होती है और सुभिक्ष होता है ।

११६-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) षष्ठी को चित्रानक्षत्र के आने पर यदि आकाश में बादल दिखाई दें तो आर्द्रा के सूर्य में निस्सन्देह वर्षा होती है ।

११७-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) सप्तमी को स्वातिनक्षत्र के आने पर बिजली, बादलों की घटा और पाला गिरने से तथा प्रचण्ड (विशेष) हवा के चलने से वर्षाकाल में अच्छी वृष्टि होती है ।

११८-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) नवमी को रविवार और मूलनक्षत्र के होने से भाद्रपद शुक्ला नवमी को निश्चय वर्षा होती है ।

११९-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) नवमी को मूलनक्षत्र के रहते हुए बिजली, बादलों की घटा और इन्द्रधनुष के होने से आषाढ और भाद्रपद शुक्ला नवमी तथा दशमी को वर्षा होती है ।

१२०-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) नवमी, दशमी और एकादशी को बिजली, जोर की हवा और बादलों की घटा के होने से अतिवृष्टि होती है ।

१२१-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) सप्तमी और त्रयोदशी को पूर्व दिशा में बादलों के होने से आषाढ में सात रात तक लगातार वर्षा होती है ।

१२२-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) चतुर्दशी अर्थात् शिवरात्रि को रातदिन पाला गिरने से और उत्तर की हवा के चलने से सुभिक्ष समझना चाहिए ।

१२३-माघकृष्णा ( फा० कृ० ) अमावास्या को हवा की तरह रातदिन पाला पड़ने से और बादलों के छाये रहने से भाद्रपद की पूर्णिमा में वर्षा होती है ।

१२४-माघ मास में ( मकर ) संक्रान्ति के दिन वर्षा के होने से पृथ्वी में खूब धान्य पैदा होता है और गायें भी खूब दूध वाली होती हैं । इति माघः ।

## फाल्गुनः ।

फाल्गुने नित्यमभ्रं स्यान्न तु पातयते जलम् ।
गर्भदोहद सम्पत्तिं विद्याद् वृष्टिः शुभा भवेत् ॥१२५॥
फाल्गुने प्रतिपच्छुक्ला शुभा शतभिषा युता ।
यावती वारुणी भुक्तिर्वर्षे सिद्धिश्च तावती ॥ १२६ ॥

फाल्गुने सप्तमी शुक्ला द्रोणमेकं प्रवर्षति ।
भाद्रे च पंचमी कृष्णा नवमी चाति वर्षति ॥ १२७॥
फाल्गुने सप्तमी शुक्लाऽष्टमी च नवमी क्रमात् ।
कृत्तिकादियुता गर्जेद् भाद्रेऽमा तर्हि वर्षति ॥ १२८॥
फाल्गुने यदि सप्तम्यामष्टम्यां रोहिणी तदा ।
शुभं नवम्यां सस्यार्तिस्तृणार्तिर्दशमीतिथौ ॥ १२९ ॥
कुम्भमीनांतरेऽष्टम्यां नवम्यां दशमीतिथौ ।
रोहिणी चेत्तदा वृष्टिर्हीना मध्याधिका क्रमात् ॥१३०॥
दशम्येकादशी शुक्ला फाल्गुनेऽश्रादिसंयुता ।
तदा चतुर्थ्यां पञ्चम्यामाश्विने साधु वर्षति ॥ १३१ ॥
फाल्गुने शुक्लसप्तम्यां पूर्णिमायां च निर्जला ।
निर्वाताः सतडिन्मेघाः सुभिक्षं सूचयंति हि ॥ १३२ ॥
फाल्गुने पूर्णिमायां तु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
तदा मासेऽष्टमे सर्वधान्यं याति महार्घताम् ॥ १३३ ॥
होलिकादाहसमये विद्युद्घनघटा यदि ।
गोधूमादीनि सस्यानि पीड्यन्ते रोलिकादिभिः ॥१३४॥
होलीदाहे तु निर्वातं नेष्टं पूर्वादिवायुभिः ।
खण्डवृष्टिर्वह्निभयं धान्यनाशः पलायनम् ॥ १३५ ॥
सुभिक्षं बहुवातं च बहुवृष्टिः प्रजासुखम् ।
संग्रामायोर्ध्वगो वायुः सर्वनाशाय सर्वदिक् ॥ १३६ ॥
*पूर्वोऽतिवृष्टये वायुरुत्तरो धान्यसिद्धये ।
पश्चिमो मध्यवर्षाय दुर्भिक्षाय तु दक्षिणः ॥ १३७ ॥

* मेघमहोदयः ।

फाल्गुने पूर्णिमायान्तु शुक्रशन्यारवासराः ।
पीडयन्ति प्रजां सर्वां विभिन्नानेकबाधया ॥ १३८ ॥
होलिकारजनीपूर्तौ चन्द्रास्ताद्भास्करोदयः ।
प्राग्वा समं वा पश्चाद्वा शुभःसमफलोऽशुभः ॥१३९॥
द्वितीया फाल्गुने कृष्णा विद्युदभ्रादिवर्जिता ।
तदा च श्रावणे भाद्रे वृष्टिः स्यादन्यथान्यथा ॥१४०॥
निरभ्रा सर्वदिग्वाता द्वितीया कृष्णफाल्गुने ।
जनयेद् भूयसीं वृष्टिं मासे भाद्रपदे ध्रुवम् ॥ १४१ ॥
द्वितीया फाल्गुने कृष्णा मेघडम्बरसंकुला ।
जलं पतति चैत्रे चेत्तदा वृष्टिस्तु कार्तिके ॥ १४२ ॥
तृतीया फाल्गुने कृष्णा वृष्ट्यै पूर्वोत्तरानिलात् ।
चतुर्थ्यां फाल्गुने कृष्णे वर्षा दुर्भिक्षकारिणी ॥१४३॥
फाल्गुने कृष्णपंचम्यां हस्तनक्षत्रसंगमे ।
नाभ्रं न गर्जितं विद्युत्तदा संवत्सरः शुभः ॥ १४४ ॥
फाल्गुने कृष्णपञ्चम्यां स्वातीनक्षत्रसंभवे ।
ना नभ्रं गर्जितं विद्युत् तदा वर्षः शुभावहः ॥ १४५ ॥
फाल्गुने पंचमी कृष्णा नवमी च त्रयोदशी ।
एतासु विद्युता गर्भसंभवो वृष्टिहानिकृत् ॥ १४६ ॥
फाल्गुनस्य च मासस्य दर्शेऽष्टम्यां च वर्षति ।
सस्यानां संपदा तत्र सुभिक्षं प्रभविष्यति ॥ १४७ ॥
मूलमादौ यमं चांते फाल्गुनेप्यवलोकयेत् ।
सजला निर्जला ज्ञेया निर्जला सजला भवेत् ॥१४८॥
अमायां फाल्गुने मासि यदि मंगलवासराः ।
प्रावृड् दुष्कालतां याति कर्तव्यो धान्यसंग्रहः ॥१४९॥

फाल्गुने यदि संक्रांन्तौ देवो वर्षति कर्हिचित् ।

वैचित्र्यं जायते सस्ये वैशाखज्येष्ठयोः शुभम् ॥१५०॥

फाल्गुने च गुरोरस्तं वक्रं वा यदि जायते ।

शनिर्वा वक्रतां गच्छेत्तदा सस्य महार्घता ॥ १५१ ॥

षाण्मासिकं तु दुर्भिक्षं फाल्गुनेऽस्तंगते भृगौ ।

पक्षोत्तरन्तु दुर्भिक्षं वक्रयोः शनिभौमयोः ॥ १५२ ॥

१२५-फाल्गुन में नित्य बादल होते हों और जल न बरसे तो गर्भ सम्पन्न समझना चाहिये। इससे वर्षाऋतु में अच्छी वृष्टि होती है।

१२६-फाल्गुनशुक्ला प्रतिपदा को शतभिषानक्षत्र का होना श्रेष्ठ है। इस दिन जितनी ज्यादह शतभिषा होय उतनी ही वर्षा समझनी चाहिये।

१२७-फाल्गुनशुक्ला सप्तमी को एक द्रोण वर्षा के होने से भाद्रपद कृष्णा अर्थात् प्रचलित व्यवहार से आश्विन कृष्णा पञ्चमी को अतिवृष्टि होती है।

१२८-फाल्गुनशुक्ला सप्तमी को कृत्तिकानक्षत्र के, अष्टमी को रोहिणी के और नवमी को मृगशिर के होने पर यदि गर्जना होवे तो भाद्रपदकृष्णा अर्थात् आश्विनकृष्णा अमावास्या को वर्षा होती है।

१२९-फाल्गुनशुक्ला सप्तमी या अष्टमी को रोहिणीनक्षत्र का होना श्रेष्ठ और नवमी को अथवा दशमी को होना खराब है। नवमी को होने से तृण का और दशमी को होने से धान्य का नाश होता है।

१३०-कुम्भसंक्रान्ति से मीनसंक्रान्ति के बीच के समय में अष्टमी को रोहिणीनक्षत्र के होने से वर्षा कम, नवमी को होने से वर्षा मध्यम और दशमी को होने से अधिक वर्षा होती है।

१३१-फाल्गुनशुक्ला दशमी और एकादशी के दिन बादल होने से आश्विन में चतुर्थी और पञ्चमी के दिन अच्छी वर्षा होती है।

१३२-फाल्गुनशुक्ला सप्तमी और पूर्णिमा के दिन बिना जल के (सफेद) बादल हों, विशेष हवा न चलती हो तथा बिजलियाँ भी हों तो सुभिक्ष समझना चाहिये।

१३३-फाल्गुन की पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होने से, इससे आठवें मास ( कार्त्तिक ) में सब धान्य महँगे होजाते है।

१३४-फाल्गुन की पूर्णिमा को होलीदाह के समय बिजलियों और बादलों की घटा होने से गेहूँ वगैरह धान्य में रोली लग जाती है। अर्थात् नष्ट होजाते हैं।

१३५-१३६-होलीदाह के समय बिलकुल हवा का बन्द होजाना खराब है, किन्तु इस समय पूर्व की वायु से खण्डवृष्टि, अग्निकोण की से वह्निकाडर, दक्षिण की से धान्य का नाश, नैऋत्यकोण की से पलायन ( किसी आपत्ति के कारण भाग-दौड़ अर्थात् अपने स्थान का त्याग ), पश्चिम की से सुभिक्ष, वायुकोण की से हवा की अधिकता, उत्तर की से अधिक वर्षा, ईशानकोण की से प्रजा को सुख और ऊपर की वायु से लडाई होती है तथा चौतरफी हवा चलने से सर्वनाश होजाता है।

१३७-फाल्गुनशुक्ला पूर्णिमा को दिनभर पूर्व की हवा से अतिवृष्टि, उत्तर की से धान्य की उत्पत्ति, पश्चिम की से मध्यम ( मामूली ) वृष्टि और दक्षिण की हवा से दुर्भिक्ष पड़ता है।

१३८-फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन शनि, शुक्र या मंगलवार के होने से प्रजा को कई आपत्तियों के द्वारा दुःख प्राप्त होता है।

१३९-होली की रात्रि की समाप्ति पर अर्थात् प्रचलित व्यवहार से चैत्रकृष्णा प्रतिपदा को प्रातःकाल चन्द्रमा के अस्त होने से पहले सूर्योदय होना श्रेष्ठ, साथ में होना मध्यम और पीछे उदय होना खराब है।

१४०-फाल्गुनकृष्णा ( प्रचलित मत से चैत्रकृष्णा ) द्वितीया को बिजली और बादल वगैरह के न होने से श्रावण और भाद्रपद में अच्छी वर्षा होती है।

१४१-फाल्गुनकृष्णा ( चै० कृ० ) द्वितीया को बादलों के न होने से और चौतरफी हवा के चलने से निस्सन्देह भाद्रपद में अच्छी वर्षा होती है।

१४२-फाल्गुनकृष्णा ( चै० कृ० ) द्वितीया को खूब बादलों की घटा होने से तथा जल बरस जाने से कार्तिक में वर्षा होती है।

१४३-फाल्गुनकृष्णा ( चै० कृ० ) तृतीया को पूर्व और उत्तर की वायु से वर्षा होती है तथा इसी चतुर्थी को वर्षा होने से दुर्भिक्ष पड़ता है।

१४४ फाल्गुनकृष्णा ( चै० कृ० ) पञ्चमी को हस्तनक्षत्र के रहते हुऐ बादल, बिजली और गर्जना न होवे तो संवत्सर उत्तम समझना चाहिये।

१४५-तथा इसी फाल्गुनकृष्णा ( चै० कृ० ) पञ्चमी को स्वातिनक्षत्र के भी रहते हुए बादल, बिजली और गर्जना न होवे तो संवत्सर उत्तम समझना चाहिये।

१४६-फाल्गुनकृष्णा ( चैत्रकृष्णा ) पञ्चमी, नवमी और त्रयोदशी को बिजली होने से गर्भ का लक्षण दिखाई दे तो वर्षा में हानि होती है।

१४७-फाल्गुन कृष्णा ( चै० कृ० ) अष्टमी और अमावास्या को वर्षा के होने से धान्य की संपत्ति द्वारा सुभिक्ष होता है।

१४८-फाल्गुन मास में भी मूलनक्षत्र से भरणी नक्षत्र तक के दिनों की परीक्षा करनी चाहिये। यदि इन दिनों में जल बरस जावे तो वर्षाऋतु में भी जल बरसे और यदि नहीं बरसे तो वर्षाऋतु में जल का अभाव समझना चाहिए।

१४९-फाल्गुनकृष्णा ( चै० कृ० ) अमावास्या को मंगलवार के होने से वर्षाऋतु में जल नहीं बरसता है। इसलिये उस वर्ष धान्य संग्रह करलेना ही अच्छा है।

१५०-फाल्गुन में संक्रान्ति के दिन यदि वर्षा होजावे तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में धान्य में अच्छी विचित्रता होजाती है अर्थात् खूब पैदा होता है।

१५१-फाल्गुन में वृहस्पति के अस्त या वक्र होजाने से तथा शनि के वक्र होजाने से धान्य की महँगाई रहती है।

१५२-फाल्गुन में शुक्र के अस्त होने से छः महीने तक दुर्भिक्ष रहता है और शनि तथा मंगल के वक्र होने से एक पक्ष ( १५ दिन ) तक दुर्भिक्ष रहता है।

इति फाल्गुनः।

## चैत्रः।

रेवत्या अर्कभोग्येषु त्रयोदशदिनेष्वपि।
यत्राभ्रं पवनो विद्युत् तत्र गर्भः शुभावहः ॥ १५३ ॥
मेषसंक्रमकालात्तु दिनेषु नवसु क्रमात्।
यत्राभ्रं पवनो विद्युत् तत्रार्द्रादिषु वर्षति ॥ १५४ ॥

संक्रांतिदिवसे यद्वा नवयामेषु यद्यथा ।
यस्यां च दिशि वातादि गर्भास्तद्भे च तत्तथा ॥१५५॥
अश्विन्यादिमघांतेषु चैत्रे दशसु भेष्वपि ।
दृष्यन्तेऽभ्रादिचिह्नानि गर्भसिद्धिं वदेत्तदा ॥ १५६ ॥
चैत्र शुक्ले दशम्यन्ते निर्जले कार्तिकादिकाः ।
माघांताः सुस्थिरा गर्भाः गर्भपातोऽतिवर्षणात् ॥ १५७ ॥
चैत्रशुक्लादितोऽष्टाहं यदि वर्षति कर्हिचित् ।
नवम्यां यत्र विद्युत्स्यात् तद्देशे नास्ति वर्षणम् ॥१५८॥
आषाढाद्दशपक्षाणां साक्षिणस्तिथयो मधौ ।
शुक्लादितो दशम्यन्ता गर्भपातपरीक्षणे ॥ १५९ ॥
साक्षिणां चतुरो दण्डानेकैकं कल्पयेद्दिनम् ।
यत्र यावद्गर्भपातस्तत्र तावदवर्षणम् ॥ १६० ॥
चैत्रशुक्ले यदार्द्रादि स्वात्यन्तेषु च साभ्रता ।
जलप्रवाहवृष्टिर्नो तदा संवत्सरः शुभः ॥ १६१ ॥
तिथिवृद्धौ तृणाधिक्यं धान्याधिक्यं भवृद्धितः ।
रोगाधिक्यं योगवृद्धौ चैत्रस्य प्रथमेऽहनि ॥ १६२ ॥
रविवारादनावृष्टिः सुवृष्टिः कुजवारतः ।
बुधवारात्तु दुर्भिक्षं चैत्रस्य प्रथमेऽहनि ॥ १६३ ॥
जलसस्याल्पता वायोराधिक्यं रविवारतः ।
जलसस्यतृणाधिक्यं चन्द्रादीतिस्तु मंगलात् ॥ १६४ ॥
बुधवारेण दुर्भिक्षं सुभिक्षं गुरुशुक्रतः ।
जलादिनाशः शनिना चैत्रस्य प्रथमेऽहनि ॥ १६५ ॥
प्रथमे दिवसे चैत्रे यदि गर्जति वर्षति ।
तदा तु श्रावणे मासि तत्र वर्षति वासवः ॥ १६६ ॥

द्वितीयायां पूर्ववायुरनभ्रं भाद्रवृष्टये ।
तृतीयायां सुभिक्षाय विद्युल्लेखा च गर्जितम् ॥१६७॥
चैत्रशुक्लतृतीयायां दक्षिणः पवनो यदि ।
अभ्राणि पूर्वतो यांति वृष्टिः स्यादाश्विने तदा ॥१६८॥
चतुर्थ्यां चैत्रशुक्लायामुत्तरः पवनो यदि ।
यद्यनभ्रं तदा तत्र कार्तिके वृष्टिमादिशेत् ॥ १६९ ॥
चतुर्थ्यां चैत्रशुक्लायां पतन्ति जलबिन्दवः ।
तदा घोरमनावृष्टया दुर्भिक्षं तत्र जायते ॥ १७० ॥
चतुर्थे दिवसे प्राप्ते मेघौजालं करोति चेत् ।
दुर्भिक्षं जायते घोरमनावृष्टया न संशयः ॥ १७१ ॥
प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया च चतुर्थिका ।
यद्यासु गर्भसम्पत्तिश्चातुर्मास्यं तदा घनः ॥ १७२ ॥
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां रोहिणीभं शुभावहम् ।
यदि तत्र नभः साभ्रं गर्भः संपद्यते तदा ॥ १७३ ॥
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यामार्द्राभं यदि लभ्यते ।
दुर्भिक्षं यावदाषाढं श्रावणे जलदोदयः ॥ १७४ ॥
उदयास्तमनं यावदभ्रच्छन्नं नभो यदि ।
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां महार्घं श्रावणे तदा ॥ १७५ ॥
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां वायुर्दक्षिणपूर्वयोः ।
वृष्टिश्च सह जायेत तदा धान्यमहार्घता ॥ १७६ ॥
तृतीयायां च पञ्चम्यां वायुः पूर्वोत्तरो यदि ।
तदा सुवृष्टिः संपत्तिः सस्यानां च सुभिक्षता ॥१७७॥
दिनद्वयं प्रवहतो वायू दक्षिणपश्चिमौ ।
तदा नोत्पद्यते धान्यं दुर्भिक्षं तत्र जायते ॥ १७८ ॥

शुक्लायां चैत्रसप्तम्यामार्द्राभ्रं यदि वर्षति ।
तदा वदन्ति दैवज्ञाः श्रावणे नैव वर्षति ॥ १७६ ॥
शुक्लायां चैत्रसप्तम्यामभ्रच्छन्नं नभो यदि ।
श्रावणे मासि गोधूमात् त्रिगुणं लाभमादिशेत् ॥१८०॥
शुक्ला तु पञ्चमी चैत्रे सप्तमी च त्रयोदशी ।
वर्षर्तुं नाशयेद् वृष्ट्या विद्युता गर्जितादपि॥ १८१ ॥
रोहिणी स्यात् सुभिक्षाय वामा रोगाय दक्षिणा ।
अग्रगा भयदा चन्द्राद् दुर्भिक्षाय तु पृष्ठगा ॥१८२॥
चैत्रस्य पञ्चमी शुक्ला रोहिण्या यदि संयुता ।
साभ्रं नभस्तदा तत्र गर्भस्य परिपूर्णता ॥ १८३ ॥
चैत्रस्य पञ्चमी शुक्ला युज्यते यदि चार्द्रया ।
दुर्भिक्षं यावदाषाढं श्रावणे जलदोदयः ॥ १८४ ॥
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यामभ्रच्छन्नं नभो यदि ।
उदयास्तमनं यावद् दुर्भिक्षं श्रावणे तदा ॥ १८५ ॥
चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां वायुर्दक्षिणपूर्वयोः ।
वृष्टिश्च सह जायेत तदा दुर्भिक्षमादिशेत् ॥ १८६ ॥
पञ्चमी सप्तमी चैत्रे नवमी पूर्णिमा क्रमात् ।
रोहिण्यार्द्रापुष्यचित्रा युक्तानाभ्राः सुवृष्टिदाः ॥ १८७ ॥
एताश्चतस्र आषाढं श्रावणं भाद्रमाश्विनम् ।
क्रमेण गलिता हन्ति गर्भस्रावादवृष्टिदाः ॥ १८८ ॥
पंचमी श्रावणं हंति भाद्रं हंति च सप्तमी ।
आश्विनं नवमी हंति पूर्णिमा हन्ति कार्तिकम् ॥ १८९ ॥
एताश्चतस्रो गर्भस्य क्षयपुष्टिकरा मधौ ।
न भवेदासु वृष्टिश्चेत्तदा वृष्टिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ १९० ॥

पञ्चमी सप्तमी चैत्रे नवम्येकादशी सिता ।
त्रयोदशी पूर्णिमा च दिनेष्वेतेषु वर्षणात् ॥ १६१ ॥
करका पतनाद्विद्युद्दर्शनाद् गर्जनादपि ।
वर्षाकाले जलधरश्छिद्रादेव प्रवर्षति ॥ १६२ ॥
चैत्रस्य दशमी शुक्ला मघया युज्यते यदि ।
सुवृष्टिश्च सुभिक्षं च शनिवारे विशेषतः ॥ १६३ ॥
चैत्रशुक्ल त्रयोदश्यां धूमिका स्यादवृष्टये ।
चित्रा वर्षति चेच्चैत्र्यां तदानावृष्टिराश्विने ॥ १६४ ॥
पौर्णमास्यां यदा स्वाता विद्युन्मेघ समन्विता ।
निर्दोषमपि पूर्वर्क्षे गर्भं गलितमादिशेत् ॥ १६५ ॥
चैत्री न शुभदा वारे गुरु सोम बुधेतरे ।
चैत्र्यां प्रविष्टा प्रतिपत् कृष्णा प्रावृष्य वृष्टये ॥१६६॥
चैत्रस्य कृष्णा प्रतिपत् तिथिर्हीना समाधिका ।
तद्वद्धं चेद् क्रमादल्प जलं स्वास्थ्यं बहूदकम् ॥१६७॥
कृष्णायां पञ्चतौ चैत्रे मेघैराच्छादितो यदि ।
दृश्यते न रविर्व्योम्नि तदा वर्षः शुभावहः ॥१६८॥
चैत्रकृष्ण द्वितोयायां सर्वदिग् भ्रामकोऽनिलः ।
निरभ्रं च तदा भाद्रे वृष्टिर्भवति भूयसी ॥ १६६ ॥
चैत्रकृष्ण तृतीयायां वायुः पूर्वस्तथोत्तरः ।
वर्षासु प्रचुरं वर्षं सुभिक्षं च तदादिशेत् ॥ २०० ॥
चैत्रकृष्ण चतुर्थ्यां तु वर्षा दुर्भिक्षकारिणी ।
पञ्चम्यां चैत्रकृष्णायां हस्तेऽनभ्र शुभं भवेत् ॥२०१॥
द्वितीयायां तृतीयायां चतुर्थ्यां पञ्चमीतिथौ ।
चैत्रकृष्णे पूर्ववातो वृष्टियुक्तोऽप्यवृष्टिकृत् ॥ २०२ ॥

चैत्रे पञ्चरवेर्वारा दुर्भिक्षस्यातिलक्षणम् ।
चैत्रे पञ्चशनेर्वारा मरकं सूचयंति हि ॥ २०३ ॥
मूलमादौ यमं चांते चैत्रकृष्णेऽवलोकयेत् ।
सजलं निर्जलं ज्ञेयं निर्जलं सजलं भवेत् ॥ २०४ ॥
मूलमारभ्य याम्यांतं चैत्रकृष्णेऽवलोकयेत् ।
यावद्दक्षिणतो वायुस्तावद् वृष्टिबलं वदेत् ॥ २०५ ॥
यावत्तु दक्षिणो वायुस्तावद् वृष्टिप्रदायकः ।
साभ्रे भे हन्यते वृष्टिर्निरभ्रे वृष्टिरुत्तमा ॥ २०६ ॥
चैत्रे तु पञ्चमीं कृष्णामारभ्य नव वासरान् ।
निरभ्रं चेत्तदार्द्रादि नवके विपुलं जलम् ॥ २०७ ॥
अष्टम्यां च त्रयोदश्यां चैत्रकृष्णेऽवलोकयेत् ।
उत्तरा यावती दृष्टा तावती वृष्टिरुच्यताम् ॥ २०८ ॥
चैत्रस्य पञ्चमी कृष्णा नवमी च त्रयोदशी ।
एतासु यदि वृष्टिः स्यादनावृष्टिस्तदा भवेत् ॥ २०९ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां चैत्रकृष्णेऽवलोकयेत् ।
तत्राभ्रमुत्तरो वायुः शुभाय खलु जायते ॥ २१० ॥
यस्यां दिशि भवेदभ्रं तत्र वृष्टिः प्रजायते ।
तत्र चेद् गर्जितं विद्युत्तदानावृष्टिरुच्यते ॥ २११ ॥
एकादश्यां दशम्यां च चैत्रकृष्णे निरभ्रता ।
सुवृष्टयेऽथ दुर्भिक्षं कुरुते प्रबलो घनः ॥ २१२ ॥
यदि चैत्रे त्रयोदश्यां भवेन्मीनार्कसंक्रमः ।
शनिवारोऽपि तत्र स्यात्तद्वर्षेऽत्यल्पसस्यकम् ॥ २१३ ॥
यावद् घटयादि मानास्यादमा फाल्गुनचैत्रयोः ।
तावदेवार्घमानं स्यादन्नानां कार्तिके ध्रुवम् ॥ २१४ ॥

चैत्रेऽमायां सुभिक्षत्वं समं रोगोऽल्पवर्षणम्।
दुःखं क्रमेण जायन्ते रेवत्यादिषु पञ्चसु ॥ २१५ ॥

१५३-चैत्र में रेवती नक्षत्र पर सूर्य के रहते हुए तेरह दिनों में जहाँ जहाँ पवन, बादल और बिजलियाँ हों वहाँ पर गर्भ अच्छा समझना चाहिये।

१५४-मेष संक्रान्ति से नौ दिन तक जिन जिन दिनों में बादल, पवन और बिजलियाँ हों उन दिनों के क्रम से आर्द्रानक्षत्र पर जब सूर्य आवे तब से, चित्रानक्षत्र पर सूर्य जाय तब तक अच्छी वर्षा होती है। अर्थात् मेष संक्रान्ति के पहिले दिन उपर्युक्त गर्भ के लक्षण जहाँ दिखाई दें वहाँ आर्द्रानक्षत्र पर सूर्य आने से (आषाढ में) वर्षा होती है और मेष संक्रान्ति के दूसरे दिन दिखाई दें तो पुनर्वसु पर सूर्य के आने से वर्षा होती है। इत्यादि।

१५५-चैत्र में जिस समय संक्रान्ति लगे उस प्रहर से नौ प्रहर तक क्रम से अश्विनी आदि नौ नक्षत्रों की गणना करके जिस प्रहर में जिस जिस दिशा में वायु आदि से गर्भ के लक्षण दिखाई दें वहाँ उन्हीं सौर नक्षत्रों के आने से वृष्टि कहनी चाहिये।

१५६-चैत्र में अश्विनी से मघा तक के दश नक्षत्रों के दिनों में बादल आदि गर्भ के लक्षण दिखाई दें तो गर्भ सम्पन्न हुआ समझना।

१५७-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से दशमी तक वर्षा न होय तो कार्तिक से माघ तक का गर्भ स्थिर समझना चाहिये। और यदि अतिवृष्टि होवे तो गर्भपात समझना चाहिये।

१५८-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से अष्टमी तक यदि वर्षा होजाय और नवमी के दिन बिजली चमके तो उस देश में वृष्टि नहीं होगी।

१५९-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से दशमी तक की तिथियाँ आषाढ से दश पक्षों की अर्थात् पाँच महीनों की साक्षी समझनी चाहिये इन दश दिनों में गर्भपात की परीक्षा करनी चाहिये।

१६०-गर्भ के साक्षीभूत उपरिलिखित दश दिनों के घटिकात्मक चार विभाग (अर्थात् २॥-२॥ दिन के) करके उन में एक-एक दिन की कल्पना करनी चाहिये (इन चार दिनों को वर्षाकाल के चार मास माने हैं) जिस दिन के विभाग में गर्भपात होजाय उसी मास में अवृष्टि समझनी चाहिये।

१६१-चैत्र शुक्ला में आर्द्रा से स्वातिनक्षत्र तक बादल रहे लेकिन् जल न बरसे तो संवत्सर उत्तम समझना चाहिये ।

१६२-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को तिथि बढने से घास बढ़ता है । नक्षत्र बढ़ने से धान्य की वृद्धि होती है और योग के बढ़ने से रोग बढ़ता है ।

१६३-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को यदि रविवार हो तो अनावृष्टि होगी, मंगलवार होवे तो अच्छी वृष्टि होगी और बुधवार के होने से दुर्भिक्ष होता है ।

१६४-१६५-अत्र मतान्तर कहते हैं । चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को रविवार होने से जल और धान्य की कमी होती है तथा वायु अधिक चलती है, चन्द्रवार के होने से जल, धान्य और घास खूब पैदा होता है, मंगलवार के होने से ६ प्रकार की ईतियाँ* होती हैं, बुधवार से दुर्भिक्ष पड़ता है, वृहस्पति या शुक्रवार के होने से सुभिक्ष होता है और शनिवार के होने से जल वगैरह का नाश होता है ।

१६६-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को यदि गर्जना हो और वर्षा भी हो तो श्रावण के महीने में उसी नक्षत्र पर वर्षा होगी जिस नक्षत्र को चैत्र शुक्ला प्रतिपदा होगी ।

१६७-चैत्र शुक्ला द्वितीया को पूर्व की वायु का होना और बादलों का न होना भाद्रपद की वर्षा के लिये उत्तम है । तथा तृतीया को बादलों का होना और गर्जन होना सुभिक्ष के सूचक हैं ।

१६८-चैत्र शुक्ला तृतीया को दक्षिण का पवन चले और बादल पूर्व की तरफ जायँ तो आश्विन में वृष्टि होगी ।

१६९-चैत्र शुक्ला चतुर्थी को उत्तर दिशा की हवा चले और बादल नहीं होय तो कार्तिक में उसी चतुर्थी को वृष्टि होगी ।

१७०-चैत्र शुक्ला चतुर्थी को यदि जल की बूंदें गिर जायँ तो अनावृष्टि से उस वर्ष में घोर दुर्भिक्ष पड़े ।

---

* "अतिवृष्टिरनावृष्टि र्मूषिकाः शलभाशुकाः । प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥" इति कामन्दकः ।

१७१-चैत्र शुक्ला चतुर्थी को यदि बादल खूब होय तोभी अनावृष्टि से उस वर्ष में भारी दुर्भिक्ष पड़े ।

१७२-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी को यदि गर्भ के लक्षण होवें तो चातुर्मास्य अच्छा समझना चाहिये ।

१७३-चैत्र शुक्ला पञ्चमी को रोहिणीनक्षत्र का होना श्रेष्ठ है। यदि उस दिन आकाश में बादल हो जाय तो गर्भ सम्पन्न समझना ।

१७४-चैत्र शुक्ला पञ्चमी को आर्द्रानक्षत्र के होने से आषाढ तक दुर्भिक्ष रहे और श्रावण में वर्षा होय ।

१७५-चैत्र शुक्ला पंचमी को सूर्योदय से सूर्यास्त तक बादलों से आकाश घिरा रहै तो श्रावण में बड़ी महँगाई होती है ।

१७६-चैत्र शुक्ला पंचमी को दक्षिण और पूर्व की हवा चलने से और साथ ही में वृष्टि के होने से धान्य महँगा रहता है ।

१७७-चैत्र शुक्ला पंचमी और तृतीया को पूर्व और उत्तर की वायु चले तो वृष्टि अच्छी होय और धान्य भी सस्ते रहैं ।

१७८-चैत्र के शुक्ल पक्ष के किसी भी दो दिनों में यदि लगातार दक्षिण और पश्चिम का पवन चलता रहै तो उस वर्ष में धान्य पैदा नहीं होगा और दुर्भिक्ष पड़ेगा ।

१७६-चैत्र शुक्ला सप्तमी को आर्द्रानक्षत्र के होते हुए यदि वर्षा होगई तो श्रावण में वृष्टि नहीं होगी ऐसा ज्यौतिषी कहते हैं ।

१८०-चैत्र शुक्ला सप्तमी को यदि आकाश बादलों से घेरघुमेर रहै तो श्रावण में गेहूं की फसल से तिगुना लाभ कहना चाहिये ।

१८१-चैत्र शुक्ला में पंचमी, सप्तमी और त्रयोदशी को वर्षा होने से या बिजली चमकने से अथवा गर्जने तक से भी चातुर्मास्य की वर्षा का नाश हो जाता है ।

१८२-चैत्र शुक्ल में चन्द्रमा से यदि रोहिणी उत्तर की तरफ हो तो सुभिक्ष समझना और यदि दक्षिण की तरफ होवे तो रोग पीड़ा होवे तथा आगे की तरफ होवे एवं पीछे की तरफ होने से दुर्भिक्ष पड़े।

१८३-चैत्र शुक्ला पञ्चमी को यदि रात दिन रोहिणीनक्षत्र रहै और आकाश में बादल रहै तो गर्भ परिपूर्ण समझना। अर्थात् गर्भ में कोई विकार नहीं हुआ और प्रसव के महीनो में अवश्य अच्छी वर्षा होगी।

१८४-चैत्र शुक्ला पञ्चमी को आर्द्रानक्षत्र के होने से आषाढ तक दुर्भिक्ष रहता है और श्रावण में वृष्टि होती है।

१८५-चैत्र शुक्ला पञ्चमी को सूर्योदय से सूर्यास्त तक यदि अकाश में बादल छाये रहैं तो श्रावण में दुर्भिक्ष पड़े।

१८६-चैत्र शुक्ला पञ्चमी को दक्षिण, पूर्व की वायु चले ओर साथही में वर्षा भी होजावे तो दुर्भिक्ष समझना चाहिये।

१८७ चैत्र शुक्ला में पञ्चमी के दिन रोहिणीनक्षत्र हो, सप्तमी को आर्द्रा हो, नवमी को पुष्य हो और पूर्णिमा को चित्रा हो एव बादल न हो तो चातुर्मास्य में अच्छी वर्षा का योग होता है।

१८८-उपर्य्युक्त यही ( पंचमी, सप्तमी, नवमी और पूर्णिमा ) चारों तिथियाँ यदि गल जाँय अर्थात् इन चारों दिनों में वर्षा होजाय तो ये इस गर्भस्राव के कारण क्रमसे आषाढ, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन की वर्षा को नष्ट करती हैं।

१८९-इन में किसी का यह मत है कि-इस चैत्र शुक्ला पंचमी की वृष्टि से श्रावण की वर्षा नष्ट होती है, सप्तमी की वर्षा से भाद्रपद की वर्षा, नवमी की वर्षा से आश्विन की वर्षा और पूर्णिमा की वर्षा से कार्तिक की वृष्टि नष्ट होजाती है। यह मत श्रावण से कार्तिक तक वर्षाकाल मानने वालों का समझना।

१९०-चैत्र में यही उपर्य्युक्त चारों तिथियाँ गर्भ की पुष्टि और हानि करने वाली हैं। यदि इन दिनों में वर्षा न हुई अर्थात् गर्भस्राव न हुआ तो निश्चय अच्छी वर्षा होगी।

१९१-१९२-चैत्र शुक्ला पंचमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा इन तिथियों में वर्षा होने से वा ओले गिरने से वा बिजली चमक ने से अथवा गर्जने तक से भी वर्षाकाल में वृष्टि समय पाकर के ही होती है अर्थात् बहुत कम वृष्टि होती है।

१९३-चैत्र शुक्ला दशमी को मघानक्षत्र के होने से वर्षाकाल में अच्छी वृष्टि और सुभिक्ष होगा, यदि इस दिन शनिवार हो तो विशेष फल समझना चाहिये।

१९४-चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को आकाश के गदले रहने से वर्षाकाल में वर्षा नहीं होती है। यदि चैत्र की पूर्णिमा को चित्रानक्षत्र होवे तो आश्विन में वर्षा नहीं होगी।

१९५-चैत्र की पूर्णिमा के रोज स्वातीनक्षत्र हो, और बिजलियाँ हों तो पहले के चित्रानक्षत्र के निर्दोष रहते हुए भी इस गर्भ को नष्ट हुआ समझना चाहिये।

१९६-चैत्र की पूर्णिमा को गुरुवार, सोमवार और बुधवार के अतिरिक्त अन्यवार का होना खराब है। यदि चैत्र की पूर्णिमा में प्रतिपदा का प्रवेश होजाय तो वृष्टि का योग समझना चाहिये।

१९७-चैत्र कृष्णा ( वर्त्तमान हिसाब से वैशाखकृष्णा ) प्रतिपदा तिथि के क्षय होने से जल की कमी होती है, समान रहने से नीरोगता रहती है और बढ़ जाने से खूब जल बरसता है। यही इस तिथि को होने वाले नक्षत्र का फल समझना चाहिए।

१९८-चैत्र कृष्णा ( वैशाख कृष्णा ) प्रतिपदा को यदि सूर्य बादलों के होने के कारण न दिखाई दे तो वर्षाकाल उत्तम समझना चाहिए।

१९९-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ० ) द्वितीया को चौतरफी हवा चले तथा आकाश में बादल न हो तो भाद्रपद में अधिक वृष्टि कहनी चाहिये।

२००-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ० ) तृतीया को यदि हवा पूर्व या उत्तर दिशा की चले तो वर्षाकाल में खूब जल बरसे तथा सुभिक्ष रहे।

२०१-चैत्रकृष्णा (वै० कृ०) चतुर्थी की वर्षा दुर्भिक्ष करने वाली है। चैत्र कृष्णा (वै० कृ०) पंचमी को हस्तनक्षत्र के रहते हुए यदि बादल न हों तो वह वर्ष श्रेष्ठ समझना।

२०२-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ ) द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी को यदि वृष्टि के सहित पूर्व दिशा की हवा हो तो भी वर्षाकाल में वर्षा को नष्ट करती है ।

२०३-चैत्र में पाँच रविवार के होने से दुर्भिक्ष समझना तथा पाँच शनिवार के होने से मारी पड़ती है ।

२०४-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ० ) में भी प्रारंभ में मूलनक्षत्र को तथा अन्त में भरणीनक्षत्र को देखना चाहिए । यदि इन दिनों में वर्षा होगई तो वर्षाकाल में वर्षा का अभाव तथा इन दिनों में वर्षा न हुई तो वर्षाकाल में खूब वर्षा समझनी चाहिये ।

२०५-चैत्र कृष्णा (वै० कृ०) में मूलनक्षत्र से लेकर भरणीनक्षत्र तक दक्षिण दिशा की जितनी हवा चले उतनी ही वर्षाकाल में वृष्टि का जोर समझना ।

२०६-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ० ) में दक्षिण की हवा मेघ वर्षाने वाली है किन्तु यदि बादल होगये तो वृष्टि का नाश है और यदि बादल न हुए तो अच्छी वृष्टि होगी ।

२०७-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ० ) पञ्चमी से लेकर नौ दिन तक यदि बादल न होय तो आर्द्रा नक्षत्र पर जब सूर्य आवे तब से चित्रानक्षत्र पर सूर्य जाय तब तक खूब जल बरसे ।

( आर्द्रानक्षत्र पर सूर्य प्रायः आषाढ में आता है और चित्रा पर आश्विन में जाता है । )

२०८-चैत्र कृष्णा (वै० कृ०) में अष्टमी वा त्रयोदशी को जितनी उत्तरा होवे उतनी ही वृष्टि कहनी चाहिये।

२०९-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ० ) पञ्चमी, नवमी और त्रयोदशी इन दिनों वर्षा के हो जाने से वर्षाऋतु में अनावृष्टि होगी ।

२१०-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ०) में अष्टमी, चतुर्दशी, को बादलों का होना और उत्तर की हवा का चलना उत्तम है ।

२११-उपर्य्युक्त दिनों में जिस दिशा में बादल हुए हो उसी दिशा में वृष्टि होगी । अगर उस दिशा में गर्जना होगई वा बिजली चमक गई तो अनावृष्टि समझना चाहिये ।

२१२-चैत्र कृष्णा ( वै० कृ०) में दशमी और एकादशी के दिन बादलों के न होने से अच्छी वर्षा होती है । और खूब बादलों के होने से दुर्भिक्ष होता है ।

२१३-यदि चैत्रकृष्णा ( वै० कृ० ) त्रयोदशी को मीन की संक्रान्ति होवे और उस दिन शनिवार भी होवे तो उस वर्ष में बहुत कम धान्य पैदा होता है।

२१४-फाल्गुन और चैत्र ( वैशाख ) की अमावास्या जितनी घड़ी हों तो कार्तिक में अन्नों का भाव उतने ही मान वाला होता है। यह निश्चय है।

२१५-चैत्र ( वैशाख ) की अमावास्या को रेवती नक्षत्र के होने से सुभिक्ष, अश्विनी के होने से सामान्यभाव, भरणी के होने से रोग कृत्तिका के होने से वर्षा की कमी और रोहिणी के होने से दुःख होता है। इति चैत्रः।

## वैशाखः ।

वैशाखे गर्जितं भूरि सलिलं पवनो घनः ।
शुभाय पंचवर्णं खं विद्युत्पातेखटत्कृतिः ॥ २१६ ॥
वैशाखशुक्ला प्रतिपद्दशमी च निरीक्ष्यताम् ।
सजला निर्जला ज्ञेया निर्जला सजला भवेत् ॥२१७॥
वैशाखशुक्ला प्रतिपत् पंचमी चाभ्रवर्जिता ।
केचिद्वदन्ति दैवज्ञाः प्रावृट्कालो न वर्षति ॥ २१८ ॥

## अक्षयतृतीया ।

राधे शुक्ले द्वितीयायां तृतीयासम्भवे निशि ।
याचेतान्यगृहं गत्वा कर्तुं वर्षपरीक्षणम् ॥ २१९ ॥
तस्मै प्रसन्नो दद्याच्चेच्छुभं प्रीतं च भाषते ।
तदा वर्षं शुभं विद्यादन्यथा त्वन्यथा भवेत् ॥२२०॥
शृणुयादपि दम्पत्योरेकांतालापनं निशि ।
शुभाशुभं यथा ब्रूतस्तथा वर्षे शुभाशुभम् ॥ २२१ ॥

इति शकुनपरीक्षा ।

आमं कुलालकुलतो नीत्वाऽमत्रीचतुष्टयम् ।
तदाषाढादि भावेन भावितं तोयपूरितम् ॥ २२२ ॥
निहतं पश्य पूर्वादि दिक्षु ध्वस्तं स्रुतं जलात् ।
द्राक्स्रुते बहुवृष्टिः स्यान्न वृष्टिः स्यात् स्रुते चिरात् ॥ २२३ ॥

इत्यमत्रपरीक्षा॥

प्रगेऽक्षयतृतीयायां वहिर्ग्रामं तरोरधः ।
दध्योदनघृतैः पञ्च पिण्डान् मध्यदिगाहितान् ॥२२४॥
काकपिण्डविधानेन पूजामन्त्रजपादियम् ।
कृत्वैकांते स्थितः पश्येत् काकः पिण्डं यमत्ति हि ॥२२५॥
यस्यां दिशि यथा वात्ति तथा तस्यां सुभिक्षता ।
मध्यपिण्डाशने सर्वदेशेष्वेव शुभं भवेत् ॥ २२६ ॥
यतः काकः समागत्य भुक्त्वा गच्छति तद्दिशि ।
दुर्भिक्षमथ नो भक्षेत्तदा मारीभयं भवेत् ॥ २२७ ॥

इति काकपरीक्षा ।

अक्षयायां तृतीयायां पूरयेद् भाण्डमम्बुना ।
रविं विलोकयेन्मध्ये तत्स्वरूपं विमर्शयेत् ॥ २२८ ॥
रक्ते सूर्ये विग्रहः स्यान्नीले पीते महारुजः ।
श्वेते सुभिक्षं विज्ञेयं धूसरे दुःखमूषकाः ॥ २२९ ॥

इति बिम्बपरीक्षा ।

अक्षयायां तृतीयायां सन्ध्यायां सप्तधान्यकम् ।
पुञ्जीकृत्य स्थापनीयं वृक्षाधस्तात् पृथक् पृथक् ॥२३०॥

यद्विस्तृतं स्यात्तद्धान्यं तद्वर्षे बहु जायते ।
पुंजरूपं तु यत्तिष्ठेत् तन्न निष्पद्यते बहु ॥ २३१ ॥

इति धान्यपरीक्षा

पूर्णकुम्भादधस्याप्यं मृत्पिण्डानां चतुष्टयम् ।
आषाढादिचतुर्मासनाम चिह्नपृथक्कृतम् ॥ २३२ ॥
कुम्भे स्रवज्जलेनार्द्रा यावन्तः पिण्डकामृदः ।
वृष्टिस्तावत्सु मासेषु शुष्के पिण्डे न वर्षणम् ॥ २३३॥

इति लोष्टपरीक्षा ।

राधेऽक्षयतृतीयायां मध्यवर्षाय कृत्तिका ।
रोहिणी तु सुभिक्षाय दुर्भिक्षं मृगशीर्षतः ॥ २३४ ॥
यद्यस्तमेति चन्द्रस्तु रोहिणी पृष्ठतस्त्यजन् ।
तदा भवति दुर्भिक्षं वैपरीत्ये शुभं भवेत् ॥ २३५ ॥
सूर्यास्तकाले चन्द्रस्तु वामभागे न शोभनः ।
उत्तास्थः सुभिक्षाय दुर्भिक्षाय समे पथि ॥ २३६ ॥
यद्यक्षयतृतीयायां रोहिणीगुरुवासरे ।
सर्वं सस्यं भवेत्पूर्णमन्यथा त्वन्यथा भवेत् ॥ २३७ ॥

इति नक्षत्रपरीक्षा ।

राधे शुक्ले तृतीयायां द्वितीयायां च पक्षतौ ।
अभ्राणि च शुभान्याहुरंगरोगाय वर्षणम् ॥ २३८ ॥

इति गर्भपरीक्षा ।

राधे शुक्लतृतीयायां यामे पश्यत पश्चिमे ।
मासाश्चत्वार आषाढाद् घटीद्वयविभागतः ॥ २३६ ॥
क्रमशस्तेषु भागेषु पवनः पूर्व उत्तरः ।
पश्चिमो दक्षिणस्तत्तन्मासे वर्षावबोधकः ॥ २४० ॥
यद्यक्षयतृतीयायां पूर्वो वायुर्निरन्तरः ।
तदातिसस्यसम्पत्तिः श्लेषा चैवातिगर्जति ॥ २४१ ॥
दक्षिणस्तृणहानाय पश्चिमः सुखवृद्धये ।
देवो गर्जत्युदग्वायौ दिनानामेकविंशतिम् ॥ २४२ ॥
वायुः सार्वदिशीकस्तु यद्यक्षयतिथौ भवेत् ।
तदा दुर्भिक्षमादेश्यं प्रजा राजा च पीड्यते ॥ २४३ ॥
राधे शुक्लतृतीयायां वृष्ट्यै पूर्वोत्तरानिलः ।
दक्षिणो नैर्ऋतो वायुर्वृष्टेः स्यात् प्रतिघातकः ॥२४४॥
पश्चिमात् पवनाद् भूरि वृष्टिरित्यपि चक्षते ।
दिवि मेघगतिं दृष्ट्वा गतिं वायोः परीक्षयेत् ॥ २४५ ॥
राधेऽक्षयतृतीयातः पञ्च सप्त दिनांतरे ।
प्रचण्डवायुना सस्यमल्पं बहु ततः परे ॥ २४६ ॥

इति वायुपरीक्षा ।

इत्यक्षयतृतीया ।

अथैकमासतः पश्चाच्चण्डमारुतसंचरे ।
गर्जेद्धाद्रे महेन्द्रोऽयमम्बरे मेघडम्बरे ॥ २४७ ॥

इत्युग्रवातपरीक्षा ।

चतुर्थ्यां शुक्लवैशाखे सन्ध्यायामुत्तरोऽनिलः ।
सुभिक्षायाथ पंचम्यां पूर्ववातो महार्घकृत् ॥ २४८ ॥
वैशाखे पंचमी शुक्ला यदि गर्जति वर्षति ।
पूर्ववातो दिनं यावद् भाद्रे धान्यमहार्घता ॥ २४६ ॥
यदि शुक्ले तु वैशाखे सप्तम्यादिदिनत्रये ।
भवेद् घनघटाटोपः शीघ्रं वृष्टिस्तदा भवेत् ॥ २५० ॥
एकादश्यां त्रयोदश्यां द्वादश्यां शुक्लमाधवे ।
अभ्रेण वृष्ट्या दुर्भिक्षं निरभ्रं शुभदं भवेत् ॥ २५१ ॥
केचिदाहुस्तु पञ्चम्यां सप्तम्यां नवमीतिथौ ।
एकादश्यां त्रयोदश्यां वैशाखे वृष्टिमुत्तमम् ॥ २५२ ॥
वैशाखदशमीरात्रौ यदि चन्द्रो न दृश्यते ।
तदा प्रावृषि वृष्टिः स्याद् साध्वी स्वस्था मही भवेत् ॥ २५३ ॥
वैशाखशुक्लदशमीदिनेऽभ्रछन्नता शुभा ।
एकादशीत्रये शुक्ले दुर्भिक्षं वृष्टिवार्दलात् ॥ २५४ ॥
चतुर्दश्यष्टमीचैत्रराधयोः कृष्णशुक्लयोः ।
तत्र चेद्दक्षिणो वातस्तदा मेघमहोदयः ॥ २५५ ॥
चतुर्दश्यष्टमी चैत्रराधयोः कृष्णशुक्लयोः ।
विद्युद्गर्जितवर्षाभिर्वर्षानन्दः प्रवर्तते ॥ २५६ ॥
वैशाखे पूर्णिमायां तु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
पीडयन्ते धान्यदौर्लभ्यात् पंचालाः शूरसेनकाः ॥ २५७ ॥
वैशाखपूर्णिमावृष्टिर्भाद्रे धान्यमहार्घकृत् ।
वैशाखीतः समारभ्य कुर्य्याद्वायुपरीक्षणम् ॥ २५८ ॥
वैशाखीतः समारभ्य यावत्कृष्णामिहाष्टमीम् ।
गर्भैराद्रादिसूर्यर्क्षनवके वृष्टिरुच्यते ॥ २५६ ॥

तत्रापि ननु वैशाख्या अहोरात्रघटीगणैः ।
चतुर्दशविभक्तैस्ते कल्प्या आर्द्राभवासराः ॥ २६० ॥
प्रातश्चतुर्घटीमध्ये पूर्ववायुर्वहेद्यदि ।
आर्द्रार्कप्रथमे तर्हि दिने मेघमहोदयः ॥ २६१ ॥
चतुर्घटी क्रमेणैवं वायुनार्द्रार्कनिश्चयः ।
कृष्णप्रतिपदात्वेवं पुनर्नस्वर्कनिश्चयः ॥ २६२ ॥
कृष्णे दशम्यां वैशाखे सुभिक्षायैव रेवती ।
एकादश्यां खण्डवृष्टयै दुर्भिक्षं द्वादशीतिथौ ॥२६३॥
वैशाखकृष्णैकादश्यां द्वादश्यां वा यदाम्बुदाः ।
विद्युच्च गर्जितं वृष्टिस्तदा वर्षः शुभावहः ॥ २६४ ॥
भवेदमायां वैशाखे दिवा वा यदि वा निशि ।
अनावृष्टयै महामेघो ज्येष्ठे केचिदिदं जगुः ॥२६५॥

२१६-वैशाख में गर्जना, बरसना, वायु का चलना, बादल होना तथा पंचरंगी आकाश का होना, बिजलियों का चमकना श्रेष्ठ है। इससे शुभ वृष्टि का लक्षण समझना ।

२१७-वैशाख शुक्ला दशमी और प्रतिपदा को यदि वर्षा होजाय तो वर्षाकाल सूखा जाय और यदि वर्षा न होय तो वर्षाऋतु में खूब मेह आवे ।

२१८-कई ज्योतिषियों का मत है कि वैशाख शुक्ला प्रतिपदा और पञ्चमी को बादल न होने से वर्षाऋतु में वृष्टि नहीं होती है ।

## अक्षयतृतीया

वैशाख में अक्षय तृतीया ( वै.शु.तृ ) के रोज वर्षा के लिये विशेष परीक्षा की जाती है अतः इसका यह एक प्रकरण अलग लिखा गया है । जिसमें सर्व प्रथम शकुन परीक्षा लिखते हैं ।

२१९-२२०-वैशाख शुक्ल की द्वितीया की रात्रि में जिसमें तृतीया आगई हो, दूसरे के घर जाकर कुछ वस्तु मांगनी चाहिय । इससे उस वर्ष की परीक्षा होती है । यदि गृह-स्वामी उस या-

चक को प्रसन्नता पूर्वक अभिलाषित वस्तु देदे और शुभ तथा मीठे बचन बोले तो वह वर्ष उत्तम समझना यदि इससे विपरीत हो तो फल भी उलटा ही समझना। अर्थात् वर्ष भी खराब ही होगा।

२२१-इसी तरह उसी रात्रि में किसी के घर जाकर स्त्री-पुरुष की बातचीत सुने, वे जैसी बाते करतेहों वैसा ही उस वर्ष का फल समझना। अर्थात् यदि वे राजी खुशी का प्रेमालाप करते हों तो वर्ष श्रेष्ठ है और उनमें कलह युक्त वार्तालाप होरहा हो तो वर्ष भी खराब ही रहेगा। (महाभारत के मत से धोबी के घर जाना उचित है)

इति शकुन परीक्षा

२२२-२२३-अक्षय तृतीया के दिन कुम्हार के घर से चार कच्चे सिकोरे लाकर उनमें क्रमसे आषाढ, श्रावण, भाद्र, और आश्विन की भावना करके जल भरदे और देखे कि सब से पहले शीघ्र ही कौन से महीने वाले सिकोरे से और किस दिशा से जल बहता है। जिस महीने के सिकोरे से और जिस दिशा को शीघ्र ही जल बहेगा, उसी महीने में उसी दिशा में खूब वृष्टि होगी और धीरे से अर्थात् सब के बाद जिस करवे से जल बहेगा उस मास में वृष्टि नहीं होगी।

इत्यमत्रपरीक्षा

२२४से२२७-अक्षय तृतीया के प्रातः काल में ग्राम के बाहिर किसी पेड़ के नीचे दही, भात (चांवल) घृत के पाँच पिण्ड बनाकर चारों दिशा में एक एक रख दे और बीच में भी एक रख दे तथा काकपिण्ड* के विधान से पूजा के मन्त्र वगैरह पढ़कर उसे वहाँ छोडकर आप स्वयं कहीं छिप कर उसे देखता रहे कि कौवा किस दिशा के पिण्ड को खाता है। जिस दिशा के पिण्ड को कौवा आकर के खावेगा उस दिशा में सुभिक्ष होगा और यदि बीच के पिण्ड को खावेगा तो सभी देशो में सुभिक्ष होगा। लेकिन जिस दिशा से कौवा आकर के उस पिण्ड को खावेगा उस आने वाली दिशा में दुर्भिक्ष पड़ेगा, तथा यदि किसी भी पिण्ड़ को न खावे तो मारी ( मृत्यु ) का भय समझना।

इति काक परीक्षा

* काकपिण्डविधिः 'मेरुतन्त्र' में लिखी है।

२२८-२२६-अक्षय तृतीया को किसी पात्र में जल भर कर उसमें सूर्य के प्रतिबिम्ब को देखे और उससे उस वर्ष का फल विचारे। यदि उसमें लाल बिम्ब दीखे तो लड़ाई, नीला और पीला दीखे तो रोग, सफेद दीखे तो सुभिक्ष और धूसर (मिटिया) रंग का दीखे तो मूषक (चूहे) वगैरह से दुःख रहे।

इति निम्बपरीक्षा

२३०-२३१-अक्षय तृतीया को संध्याकाल में किसी वृक्ष के नीचे सातों* धान्य अलग अलग मुट्ठी भर के रखने चाहिये। रखते हुए जो धान्य फैल जाय वह धान्य उस वर्ष खूब पैदा होगा और जो इकट्ठा हुआ ही रक्खा रहे वह उस वर्ष में पैदा नहीं होगा।

इति धान्यपरीक्षा

२३२-२३३-अक्षय तृतीया को जल से भरे हुए चार घड़ो के नीचे आषाढ आदि चार महीनों की भावना करके अलग अलग मिट्टी के चार पिंड उनके नीचे रखने चाहिये। घड़े के भरे हुए जल से उन पिंडो की मिट्टी जितनी भीगेगी उतनी ही उन पिंड वाले महीनों में वर्षा होगी। और जिस महीने वाला पिंड सूखा रहेगा उस महीने में वर्षा कुछ नहीं होगी।

इति लोष्टपरीक्षा

२३४-अक्षय तृतीया के दिन कृत्तिकानक्षत्र के होने से सामान्य वर्षा होती है और रोहिणी के होने से सुभिक्ष तथा मृगशीर्ष के होने से दुर्भिक्ष होता है।

२३५-अक्षय तृतीया को यदि रोहिणीनक्षत्र का तारा अस्त नहीं हुआ और चन्द्रमा उससे पहिले ही अस्त होगया तो दुर्भिक्ष समझना। और यदि रोहिणी पहिले अस्त हो गई और चन्द्रमा इसके बाद अस्त हुआ तो सुभिक्ष है। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए मारवाड़ में यह कहावत प्रसिद्ध है कि-"चाँद छोडे हरिणी तो परण्यो छोडे परणी" अर्थात् हरिणी जोकि रोहिणी से समीपवर्ती तारा है उसे यदि चन्द्रमा छोड़कर उस दिन अस्त होगया तो इतना दुर्भिक्ष पड़ेगा कि पति अपनी पत्नी तक को भी छोड़ देगा।

* "यव-गोधूमधान्यानि तिलाःकुङ्गुश्च मुदगकाः। श्यामाकाश्चणकाश्चैव सप्तधान्यमुदाहृताम्।

२३६-अक्षय तृतीया को चन्द्रमा सूर्य से बाँई तरफ अस्त होवे तो खराब है। उत्तर की तरफ रहै वह सुभिक्ष करता है और बराबर लाइन में हो तो दुर्भिक्ष होता है।

२३७-अक्षय तृतीया को रोहिणीनक्षत्र और गुरुवार के होने से भी धान्य अच्छा पैदा होता है और यदि यह योग न होवे तो विपरीत फल मिले।

इति नक्षत्रपरीक्षा

२३८-वैशाख शुक्ल द्वितीया, तृतीया और प्रतिपदा को बादलों का होना श्रेष्ठ है लेकिन वर्षा होने से शारीरिक पीड़ा होती है।

इति गर्भपरीक्षा

२३९-२४०-वैशाख शुक्ला तृतीया के आखिरी दो प्रहर में दो-दो घड़ी का विभाग करके क्रमसे उनमें आषाढ से चार महीनों की कल्पना करनी चाहिये। उसकी पहिली दो घड़ी में पूर्व की हवा से, दूसरी दो घड़ी में उत्तर की हवा से, तीसरी दो घडी में पश्चिम की हवा से और आखिरी दो घडी में दक्षिण दिशा की हवा से क्रम से आषाढ, श्रावण, भाद्र और आश्विन मास की वर्षा अच्छी कहनी चाहिए।

२४१-अक्षय तृतीया को रात दिन पूर्व दिशा की हवा चलने से धान्य की उपज खूब होती है तथा अश्लेषा पर सूर्य प्रायः श्रावण में आया करता है।

२४२-अक्षय तृतीया को दक्षिण की वायु से घास की हानि, पश्चिम की वायु से सुख की वृद्धि और उत्तर की वायु से वर्षाऋतु में २१ दिन तक मेघ गर्जता है।

२४३-अक्षय तृतीया को यदि चौतरफी हवा चले तो दुर्भिक्ष पड़े और राजा तथा प्रजा दुःख पावें।

२४४-अक्षय तृतीया को पूर्व और उत्तर की हवा से वृष्टि होती है और दक्षिण तथा नैऋत्य-कोण की हवा से वृष्टि की रुकावट होती है।

२४५-कई विद्वानों का मत है कि पश्चिम की हवा से भी खूब वृष्टि होती है। आकाश में बादलों की चाल देखकर वायु की गति पहिचाननी चाहिये।

२४६-अक्षय तृतीया से पाँच या सात दिन के अन्दर खूब हवा चले तो धान्य कम पैदा होता है और इसके बाद चले तो विशेष पैदा होवे।

इति वायुपरीक्षा ।

२४७-अक्षय तृतीया के एक महीने बाद प्रचण्ड हवा के चलने से भाद्रपद में मेघ आकाश में खूब गर्जना करे।

इत्युग्रवात परीक्षा ।

## इत्यक्षयतृतीया

२४८-वैशाख शुक्ला चतुर्थी को सायंकाल के समय उत्तर दिशा की हवा से सुभिक्ष होता है और पंचमी के पूर्व की हवा से महँगाई रहती है ।

२४९-वैशाख शुक्ला पंचमी को यदि गर्जना होय और वर्षा होय तथा दिनभर पूर्व की हवा चले तो भाद्रपद में धान्य महँगा रहै ।

२५०-वैशाख शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक यदि आकाश में बद्दल छाये रहैं तो शीघ्र ही वृष्टि होगी।

२५१-वैशाख शुक्ला एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी को बादल होने से तथा वर्षा होने से दुर्भिक्ष होता है। यदि इन दिनों में बादल न होवे तो वह वर्ष अच्छा समझना ।

२५२-कई कहते हैं कि वैशाख शुक्ल पञ्चमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी और त्रयोदशी इन तिथियों में वर्षा का होना उत्तम है ।

२५३-वैशाख शुक्ला दशमी की रात्रि में बादलों के कारण यदि चन्द्रमा नहीं दीखे तो वर्षा ऋतु में वृष्टि अच्छी होगी तथा पृथ्वी पर शान्ति रहेगी ।

२५४-वैशाख शुक्ला दशमी के दिन बादलों का रहना श्रेष्ठ है, किन्तु एकादशी से तीन दिन तक वृष्टि या बादलों के होने से दुर्भिक्ष पड़ता है ।

२५५-चैत्र और वैशाख के दोनों पक्षों की चतुर्दशी और अष्टमी को दक्षिण की हवा से मेघ खूब बरसता है ।

२५६-चैत्र और वैशाख के दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को बिजली, वृष्टि और गर्जना के होने से वर्षाऋतु में वर्षा का आनन्द विशेष प्राप्त होता है ।

२५७-वैशाख की पूर्णिमा में चन्द्रमा का ग्रहण होवे तो धान्य की कमी से पांचाल (पंजाब) देश और शूरसेन ( संयुक्त प्रान्त ) देश पीड़ा को प्राप्त होता है ।

२५८-वैशाख की पूर्णिमा की वृष्टि से भाद्रपद में धान्य महँगा होता है । इस पूर्णिमा से वायु की परीक्षा करनी चाहिये ।

२५९-वैशाख की पूर्णिमा से ज्येष्ठ के कृष्णपक्ष की अष्टमी तक गर्भ के लक्षण दिखाई दें तो सूर्य जब आर्द्रानक्षत्र पर आवे तब से चित्रा पर जावे तब तक खूब वृष्टि होती है। अर्थात् पूर्णिमा से अष्टमी तक के ९ दिन आर्द्रा से चित्रा तक के फल देने वाले समझने चाहिये ।

२६०-२६१-वैशाख की पूर्णिमा को घडियों को १४ भागों में विभक्त करके उनमें आर्द्रा-नक्षत्र के १४ दिनों की कल्पना करलेनी चाहिये। यदि प्रातःकाल की चार घडी के अन्दर पूर्व की हवा चले तो आर्द्रानक्षत्र पर सूर्य जब आवे उसके पहिले दिन में वृष्टि होती है । इस तरह पूर्व की वायु से चार-चार घडी के क्रम से सब दिनों की वृष्टि का फल समझ लेना चाहिये ।

२६२-इसी तरह वैशाख कृष्णा प्रतिपदा ( वर्तमान हिसाब से ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा ) की घड़ियों को १४ भागों में विभक्त करके उनमें पुनर्वसुनक्षत्र के १४ दिनों की कल्पना करके पूर्व की वायु से वर्षा का पूर्ववत् फल समझना चाहिये ।

२६३-वैशाख कृष्णा ( ज्येष्ठ कृष्णा ) दशमी को रेवतीनक्षत्र होने से सुभिक्ष, एकादशी के दिन होने से खण्डवृष्टि और द्वादशी के दिन होने से दुर्भिक्ष होता है ।

२६४-वैशाख कृष्णा ( ज्येष्ठ कृष्णा ) एकादशी या द्वादशी को बादल, बिजली, गर्जना और वर्षा के होने से वह संवत्सर श्रेष्ठ होता है ।

२६५-वैशाख की अमावास्या को दिन में वा रात में यदि खूब जल बरसे तो वर्षा ऋतु में अनावृष्टि होती है । यही फल कई विद्वान् ज्येष्ठ की अमावास्या का मानते हैं ।

इति वैशाखः ।

## ज्यैष्ठः ।

गर्जितं ज्येष्ठशुक्ले तु गर्भनाशाय जायते ।
स्फूर्जथुश्चेत्तदा वृष्टिर्नास्ति श्रावण भाद्रयोः ॥२६६॥
प्रथमायां तिथौ ज्यैष्ठे रविभौमबुधैः क्रमात् ।
वायुर्व्याधिश्च दुर्भिक्षं गुरुशुक्रेन्दुभिः शुभम् ॥ २६७॥
शनिवारे तु संप्राप्ते जलशोषः प्रजाक्षयः ।
वारादेशो विशेषेण ज्यैष्ठस्य प्रतिपत्तिथौ ॥ २६८ ॥
ज्यैष्ठे सूर्याद् द्वितीयेन्दुः समे वामे च दक्षिणे ।
समं सुभिक्षं दुर्भिक्षं ब्राह्मीयोगे महार्घता ॥ २६९ ॥
ज्यैष्ठशुक्लद्वितीयायां यदि गर्जति वारिदः ।
सर्वःपूर्वतनो गर्भो नष्ट इत्याह दैववित् ॥ २७० ॥

## मासादिरोहिणी

ज्यैष्ठशुक्ले तु रोहिण्या योगं सम्यक् परीक्षयेत् ।
अनभ्रे स्यादनावृष्टिः साभ्रे वृष्टिः सुभिक्षता ॥२७१॥
अभ्रैस्तु मध्यमा वृष्टिर्वृष्टौ वृष्टिरनुत्तमा ।
रोहिणीजलपातेन भयमीतेर्विनश्यति ॥ २७२ ॥
प्रथमेंऽशे सुभिक्षं स्यात् द्वितीये सर्प कीटकाः ।
तृतीये मध्यमा वृष्टिश्चतुर्थे मन्द वर्षणम् ॥ २७३ ॥
पञ्चमे सर्वसस्याप्तिः षष्ठे माषोऽधिको भवेत् ।
सप्तमे तुष धान्यं स्यादष्टमे क्षिप्रवृष्टिदम् ॥ २७४ ॥
रोहिण्यर्के तु रोहिण्या चन्द्रयोगोऽल्पकोऽपि चेत् ।
तदा दुर्भिक्षमादेश्यं तद्देशे दुर्दशाकरम् ॥ २७५ ॥

रोहिण्यर्के द्वितीयायां रोहिण्या युज्यते शशी ।
कदाचिद्दैवयोगेन तदा तत्र महाभयम् ॥ २७६ ॥
रोहिण्यर्के तु रोहिण्या घटिकामात्रमप्यसौ ।
चन्द्रो न युज्यते यत्र तत्र देशे शुभं भवेत् ॥ २७७॥

इति मासादिरोहिणो ।

ज्यैष्ठशुक्लतृतीयायामार्द्राभं यदि वर्षति ।
तदा दुर्भिक्षमादेश्यं वर्षर्तुस्तत्र नश्यति ॥ २७८ ॥
शुक्लायां ज्यैष्ठपञ्चम्यां पूर्वः पश्चिम उत्तरः ।
वायुः सुभिक्षकृत् किन्तु शलभादिकृदुत्तरः ॥ २७९ ॥
अनावृष्टिस्तु वायव्याद्यमाग्नीशानतोऽपि च ।
सर्वदिक् प्रभवे वायौ सर्वनाशः प्रजायते ॥ २८० ॥
शुक्लायां ज्यैष्ठपञ्चम्यां दक्षिणः पवनो यदि ।
अभ्रच्छन्नं नभो गर्जेदाश्विनेऽन्नमहार्घता ॥ २८१ ॥
ज्यैष्ठस्य शुक्लसप्तम्यां दक्षिणः पवनो यदि ।
अभ्रच्छन्नं नभो गर्जेत्कार्तिकेऽन्नमहार्घता ॥ २८२ ॥

## पवनधारणा ।

चतस्रस्तिथयो वायु धारणा अष्टमीमुखाः ।
ज्यैष्ठशुक्ले मृदुस्निग्धस्थगिताभ्रोऽनिलः शुभः ॥२८३॥
सविद्युतः सपृषतः सपांशूत्करमारुताः ।
सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ॥ २८४ ॥
रविचन्द्रपरीवेषाः स्निग्धाश्चेन्नातिदूषिताः ।
मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिण गति क्रियाः॥२८५॥

चतस्र एकरूपाश्चेत् सुवृष्टिः श्रावणादिषु ।
परिस्रुताः सान्तराश्च धारणा न शुभावहाः ॥२८६॥
ज्यैष्ठशुक्ले नवर्क्षाणि रौद्रादीनि विलोकयेत् ।
निरभ्रैर्जलसंपत्तिः साभ्रैर्ज्ञेयमवर्षणम् ॥ २८७ ॥
ज्यैष्ठशुक्ले यदि स्वातिप्रमुखं भ चतुष्टयम् ।
स्रुतं चेद्धारणानाशात् श्रावणादौ न वर्षति ॥ २८८ ॥

इति धारणाः ।

चित्रास्वाती विशाखासु ज्यैष्ठे मेघाश्च विद्युतः ।
आषाढे श्रावणे भाद्रे तदा वृष्टिः सुभिक्षता ॥ २८६ ॥
चित्रा स्वातिविशाखासु ज्यैष्ठशुक्ले निरभ्रता ।
आषाढो जलहीनः स्याच्छ्रावणे तत्र वर्षति ॥ २६० ॥
चित्रा स्वातिविशाखासु ज्यैष्ठे यदि च वर्षति ।
तदा न श्रावणे वृष्टिर्भवेद्धान्य महार्घता ॥ २६१ ॥
चतुर्दश्यष्टमीराध ज्येष्ठयोः शुक्ल कृष्णयोः ।
ज्यैष्ठशुक्लदशम्यां च शनिवारोऽप्यवृष्टये ॥ २६२ ॥
एकादश्यां ज्यैष्ठशुक्ले घटिकाः सप्तभाजिताः ।
द्विशेषे वा चतुःशेषे प्रभूतास्तत्र वृष्टयः ॥ २६३ ॥
पञ्चशेषेऽधिको वायुः षट्शेषे मन्दवर्षणम् ।
एक त्रिशून्य शेषे तु विद्यात् सर्वत्र वर्षणम् ॥ २६४ ॥
ज्यैष्ठशुक्लेकादशीतश्चतुर्दिवसमुत्तरः ।
वायुर्वहति चत्वारो मासा वर्षंति वार्षिकाः ॥ २६५ ॥
विपरीतं यदा वाति मेघा वा विपरीतगाः ।
तदा न वृष्टिस्तन्मासे तद्वच्च इति धारणा ॥ २६६ ॥

प्रारम्भे पश्चिमो वातो यदि वाति चतुर्दिनम् ।
तदनावृष्टिदुर्भिक्ष भयं तत्र प्रजायते ॥ २९७ ॥
उत्तरोत्तरमार्गेण चत्वारो घ्नन्ति चेद्दिशि ।
चतुरो वार्षिकान् मासान्तदा वर्षति वासवः ॥२९८॥
विपरीतं यदा वाति चत्वारो घ्नन्ति वा दिशि ।
शीतकाले भवेद् वृष्टिर्वर्षाकालेन वर्षति ॥ २९९ ॥
वायव्यां पश्चिमे वातो नैर्ऋत्यां जायते सदा ।
श्रावणे कार्तिके छिद्रं द्वौ मासौ वृष्टिरुत्तमा ॥३००॥
पूर्वे वातस्तथैशान्यामाग्नेय्यां जायते सदा ।
भाद्रे तथाश्विने छिद्रं वृष्टिराद्यन्तमासयोः ॥ ३०१ ॥
ज्यैष्ठशुक्लचतुर्दश्यां पूर्णिमायां च वर्षति ।
गर्भनाशस्तदा ज्ञेयो वर्षाकाले न वर्षति ॥ ३०२ ॥
ज्यैष्ठस्य पूर्णिमायांतु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
पीडयन्तेऽन्नादिदौर्लभ्यात् कोशलाश्च कलिंगकाः ॥३०३॥
ज्यैष्ठस्य पूर्णिमांते तु यदि स्रवति मूलभम् ।
षष्ट्यहानि न वृष्टिः स्यात् पश्चाद्वर्षति वासवः ॥३०४॥
मूलपादविभागेन परिस्रुत्यावकल्पयेत् ।
अहानि चावरोधस्य पश्चिमां वृष्टिमादिशेत् ॥३०५॥
यदि ज्यैष्ठस्य पञ्चम्यां वृषार्के वृष्टिरुद्भवेत् ।
पूर्वाषाढा दिने वा स्यान्मूलं वृष्टं न दोषकृत् ॥३०६॥
ज्यैष्ठे श्रुत्वां धनिष्ठायां गर्जनं वर्षणं तडित् ।
दृश्यते न तदा दोषो ज्येष्ठामूलपरिस्रुतेः ॥ ३०७ ॥
पूर्णिमायां शुभं मूलं मध्यमं प्रतिपत्तिथौ ।
न शुभं तु द्वितीयायां न पूर्णा मैत्रभे शुभा ॥३०८॥

ज्यैष्ठस्य कृष्णा प्रतिपद्विद्युद्गर्जितवर्षणैः ।
करोति तृणदुर्भिक्षं वर्षणं खण्डमंडले ॥ ३०९ ॥
ज्यैष्ठ्यां तु समतीतायां पूर्वाषाढेऽतिगर्जिते ।
विद्युद्घनघटासत्वे प्रावृट्कालः सुवर्षति ॥ ३१० ॥

प्रवर्षणमितिः ।

पूर्णिमामूलमुल्लङ्घ्य पूर्वाषाढादिभिः क्रमात् ।
सप्तविंशतिनक्षत्रैः प्रवर्षणपरीक्षणम् ॥ ३११ ॥
ज्यैष्ठ्यां तु समतीतायां पूर्वाषाढाविवर्षणे ।
परिमापजलं वृष्टं विजानीयादृतुक्रमम् ॥ ३१२ ॥
वृष्टौ हस्तविशाले तु कुण्डके पतितं जलम् ।
मापयेदाढकेनैव पञ्चाशत्पलमाढकम् ॥ ३१३ ॥
द्रोणः वृष्टेः परं मानं द्रोणः स्याच्चतुराढकः ।
द्रोणमानमथर्क्षाणां वृष्टौ ब्रूमः स्वभावजम् ॥ ३१४ ॥
द्रोणमात्रा प्रस्थसंज्ञा द्रोणमक्षरसंज्ञकम् ।
जलानां गर्भविज्ञाने माने व्यवहरन्ति हि ॥ ३१५ ॥
धनिष्ठा रेवती चित्रा हस्तपूषामृगीषु च ।
द्रोणाः षोडष चत्वारः स्वातिज्येष्ठाशतोडुषु ॥३१६॥
मघानुराधाभरणीश्रुतिमूले चतुर्दश ।
उषादितिविशाखासु विंशतिर्दशवह्निभे ॥ ३१७ ॥
आहिर्बुध्न्ये तु रोहिण्यां फल्गुन्योः पञ्चविंशतिः ।
त्रयोदशाहिभे पुष्या जयोः पञ्चदश स्मृताः ॥३१८॥
द्रोणा अष्टादशार्द्रायामाश्विन्यां द्वादशेति च ।
इमे वृष्टजलद्रोणा भेषु नोपद्रवो यदि ॥ ३१९ ॥

धरित्री मुद्रिता येन तृणाग्रे येन विन्दवः ।
वृष्टं तदपि मानार्हं ततो न्यूनं न मापयेत् ॥ ३२० ॥
नाल्पवृष्टं नातिवृष्टं दशयोजनमण्डलम् ।
द्वादशांतपरं यच्च तद्वृष्टं वृष्टमुच्यते ॥ ३२१ ॥
येषु भेषु यथा वृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति ।
आप्यादिषु न वृष्टं चेदनावृष्टिस्तदा भवेत् ॥ ३२२ ॥
एकेन विपलेनेदं स्तनितं गच्छति द्रुतम् ।
शतत्रयं तु हस्तानां स्वभावाच्चतुरुत्तरम् ॥ ३२३ ॥
विद्युत्प्रदर्शनादूर्ध्वं यावद्भिर्विपलैरिदम् ।
स्तनितं श्रूयते तेन वृष्टौ दूरत्वमुन्नयेत् ॥ ३२४ ॥

इति प्रवर्षणमितिः ।

ज्यैष्ठे श्रवःश्रविष्ठे भे वातवृष्टितडिद्रवैः ।
सुवृष्टिं कुरुतः काले घर्मो वृष्टिनिरोधकः ॥ ३२५ ॥
ज्यैष्ठकृष्णद्वितीयायामनावृष्टिस्तु मंगले ।
रवावुष्मा बुधेच्छाया शनिवारे प्रजाक्षयः ॥ ३२६ ॥
ज्यैष्ठकृष्णचतुर्थ्यां तु मेघैराच्छादितो रविः ।
मासत्रयमतिक्रम्य कुर्यान्मेघमहोदयम् ॥ ३२७ ॥
ज्यैष्ठे कृष्ण चतुर्थ्यां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
न वर्षति यदा मेघस्तदा कष्टेन वर्षति ॥ ३२८ ॥
कृष्णायां ज्यैष्ठपञ्चम्यां पश्चिमः पवनो यदि ।
धनुर्वृष्टिर्गर्जितं चेत् कार्तिकेऽन्नमहार्घता ॥ ३२९ ॥
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी च कुहूतिथिः ।
कृष्णज्यैष्ठगतास्वासु द्रष्टव्यं मेघलक्षणम् ॥ ३३० ॥

सूर्यास्तकाले पूर्वस्यां मेघैराच्छादितं नभः ।
पर्वतैर्गजराजादिनानाकृतिधरैरपि ॥ ३३१ ॥
पञ्चरात्रात् सप्तरात्रात् सद्यो वृष्टिर्निगद्यते ।
ईदृशैरेव सन्ध्यायां मेघैरन्यासु दिक्ष्वपि ॥ ३३२ ॥
दक्षिणस्या यदा मेघाः स कोटीनारसम्भवाः ।
त्रिपंचसप्तरात्रांतः किंचिद्वृष्टिविधायकाः ॥ ३३३ ॥
पश्चिमायान्तु सन्ध्यायां श्यामा अस्तंगते रवौ ।
पर्वता इव मेघाः स्युः सद्यो वर्षाभिलक्षणम् ॥३३४॥
उत्तरस्यां तु सन्ध्यायां गिरिमालेव विस्तृताः ।
मेघास्तृतीयदिवसे तुष्टिकृद्वृष्टिहेतवः ॥ ३३५ ॥
आग्नेय्यां बहुतापाय मेघाः स्वल्पजलप्रदाः ।
नैर्ऋत्यामीतिसन्तापरोगवर्षाविधायिनः ॥ ३३६ ॥
वायव्यामुन्नता मेघा वातवृष्टिकरा मताः ।
ऐशान्यामशनि व्यक्ता मेघा वृष्ट्या सुखावहाः॥३३७॥
ज्यैष्ठमासेऽष्टमी कृष्णा तथा कृष्णा चतुर्दशी ।
युक्तो दक्षिणवातेन परतो वृष्टिहेतवे ॥ ३३८ ॥
ज्यैष्ठकृष्णाष्टमीचन्द्रे मेघाच्छन्नं न दर्शयेत् ।
जलपूर्णा तदा पृथ्वी निर्मलेन्दुरवृष्टिकृत् ॥ ३३९ ॥
ज्यैष्ठकृष्णादशम्यां तु वृष्टिर्भाद्रेऽतिवृष्टये ।
ज्यैष्ठे दशम्यां रेवत्यां वर्षणं च शुभावहम् ॥३४०॥
ज्यैष्ठकृष्णादशम्यां तु यदि वारो रवेः शनेः ।
अनावृष्ट्या च दुर्भिक्षपीडया पीडयते प्रजाः ॥३४१॥

ज्यैष्ठकृष्णे रेवतीभं दशम्यां चेत् सुभिक्षता ।
एकादश्यां महामारी* दुर्भिक्षं द्वादशीतिथौ ॥ ३४२ ॥
ज्यैष्ठेऽमायां भवेदार्द्रा प्रथमायां पुनर्वसुः ।
द्वितीयायां भवेत्पुष्यं जलं धान्यं तृणं च नो ॥३४३॥
ज्यैष्ठेऽमायां पूर्णिमायां मेघच्छन्नं दिवानिशम् ।
आषाढश्रवणौ दर्शात् पूर्णाद्भाद्रपदाश्विनौ ॥ ३४४ ॥
दिनरात्रिविभागेन वातो वहति पश्चिमः ।
अनावृष्टिर्वायुदोषात् क्वचिद् वृष्टिस्तु भाग्यतः ॥३४५॥

## मासांतरोहिणी ।

सूर्यभुक्तपरित्यक्तां रोहिणीमागते विधौ ।
वायुश्चतुष्पादभेदाच्छ्रावणादिषु वृष्टये ॥ ३४६ ॥
वृष्टिरग्निः सस्यनाशो दुर्भिक्षं च सुवर्षणम् ।
झञ्झा सुवृष्टिः स्वास्थ्यं च ब्राह्मयां पूर्वादिवायुभिः ॥३४७॥
रोहिण्यां वाति पूर्वाह्णे वृष्टिः श्रावणभाद्रयोः ।
मध्याह्ने वाति वायुश्चेद् वृष्टिर्भाद्रे तथाश्विने ॥३४८॥
अपराह्णे वायुचारे वृष्टिराश्विनकार्तिके ।
अहः सर्वं शुभो वायुः सर्वमासेषु वर्षति ॥ ३४९ ॥
वाति चेदशुभो वायुर्व्यत्यासेन फलं वदेत् ।
तत्र यो बलवान् वायुस्तेन नेयं शुभाशुभम् ॥३५०॥
ज्यैष्ठस्य यदि कृष्णायामेकादश्यां तु रोहिणी ।
तदा सुभिक्षमादेश्यमन्यथा त्वन्यथा भवेत् ॥ ३५१ ॥

---

* समो भाव इति पाठान्तरम् ।

एकादश्यां ज्यैष्ठकृष्णे रोहिणी यावती भवेत् ।
तावती सस्यसम्पत्तिर्भविष्यति परीक्ष्यताम् ॥ ३५२ ॥
ज्यैष्ठस्य कृष्णपक्षे तु दशम्यां यदि रोहिणी ।
तदाल्पवृष्टिदुर्भिक्षं प्रजा चैवावसीदति ॥ ३५३ ॥
ज्यैष्ठस्य कृष्णैकादश्यां कृत्तिका खंडकालकृत् ।
रोहिणी चेत्सुकालः स्याद् दुष्कालो मृगशीर्षतः ॥३५४॥
ज्यैष्ठे मासि तथाषाढे रोहिणी दिवसे नभः ।
निवृष्टं वृष्टिनाशाय सुवृष्टं वृष्टिवर्द्धनम् ॥ ३५५ ॥
आषाढकृष्णे रोहिण्यां वक्ष्यते यद्यथा फलम् ।
तत्तथा सर्वमेवेह ज्यैष्ठेऽपि परिचक्षते ॥ ३५६ ॥

इति मासान्तरोहिणी ।

२६६–ज्येष्ठ शुक्ल में गर्जना होने से गर्भ नष्ट होजाता है। और कड़कने से वज्र की सी आवाज होने से श्रावण और भाद्रपद में अनावृष्टि होती है।

२६७–ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा को रविवार के होने से हवा विशेष चले, भौमवार से रोग और बुधवार से दुर्भिक्ष होता है। इस दिन गुरु, शुक्र और सोमवार का होना श्रेष्ठ है।

२६८–इस तिथि को यदि शनिवार होवे तो जल का नाश और प्रजा का क्षय होय। इस तरह ज्येष्ठ की प्रतिपदा को वारों का विशेष फल देखना चाहिये।

२६९–ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को यदि चन्द्रमा सूर्य से बराबर की लाइन में रहै तो सामान्य फल होवे और बायों रहै तो सुभिक्ष तथा दक्षिण की तरफ रहै तो दुर्भिक्ष पड़े। यदि इस दिन रोहीणीनक्षत्र का योग हो तो महँगाई रहै।

२७०–ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को यदि बादल गर्जना कर दे तो पहिले संपन्न हुआ सब गर्भ नष्ट होजाता है। इस तरह ज्यौतिषी कहते हैं।

## मासादिरोहिणी ।

१७१-ज्येष्ठ शुक्ला में रोहिणी के योग की अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिये । यदि रोहिणी-नक्षत्र के दिन बादल न हों तो वर्षाऋतु में अनावृष्टि होगी तथा बादल हो जाय तो वर्षा और सुभिक्षता रहैगी ।

२७२-किसी का मत है कि बादल होने से मध्यम वृष्टि होती है, वृष्टि होजाने से खराब वृष्टि होती है, रोहिणी के दिन जल गिरने से ईति* का भय नष्ट हो जाता है ।

२७३-२७४-रोहिणी के पहिले अंश में वृष्टि होने से सुभिक्ष, दूसरे अंश में सर्प और कीट-कों का डर, तीसरे अंश में मध्यम वृष्टि और चौथे अंश में अल्प वर्षा होती है । तथा पाँचवें में सर्व धान्यों की उपज, छठे में उड़द की विशेष उपज, सातवें में तुषधान्य, चावल वगैरह की पैदाइश और आठवें अंश में वृष्टि होने से कहीं कहीं वर्षा होती है । ऐसा भी किसी का मत है ।

२७५-रोहिणीनक्षत्र पर सूर्य रहते हुए रोहिणी से चन्द्रमा का कुछ भी योग हो गया तो उस देश में दुर्दशा का करने वाला दुर्भिक्ष पड़ता है ।

२७६-रोहिणीनक्षत्र पर जब सूर्य १३ दिन तक रहता है उन दिनों में द्वितीया के दिन यदि चन्द्रमा का कभी दैवयोग से रोहिणीनक्षत्र के साथ योग हो जाय तो वहाँ महाभय प्राप्त होता है ।

२७७-रोहिणी के सूर्य में यदि चन्द्रमा का रोहिणी से एक घड़ी भी योग न होने पावे तो बहुत श्रेष्ठ है ।

इति मासादि रोहिणी ।

२७८-ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया को आर्द्रानक्षत्र हो और उस दिन यदि वर्षा होजाय तो वर्षा ऋतु का नाश हो जाता है और दुर्भिक्ष पडता है ।

२७९-ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को पूर्व, पश्चिम और उत्तर की हवा सुभिक्ष की करने वाली है किन्तु उत्तर की हवा से शलभादि कीट अवश्य होते हैं ।

* अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषिक, टिड्डी, तोते और समीपवर्ती राजा ईति कहलाते हैं ।

२८०-ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी को वायव्य, नैऋत्य, अग्नि और ईशान-कोण की हवा से अनावृष्टि होती है और चौतरफी हवा से सर्वनाश हो जाता है ।

२८१-ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को यदि दक्षिण का पवन चले और बादलों से घिरे हुए आकाश में गर्जना होवे तो आश्विन में अन्न महँगा रहै ।

२८२-ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को दक्षिण के पवन चलने से और बादल तथा गर्जना होने से कार्तिक में अन्न महँगा रहता है ।

## पवनधारणा ।

२८३-ज्येष्ठ शुक्ल में अष्टमी से चारतिथियाँ वायुधारणा कहलाती हैं। इनमें मृदु, स्निग्ध और स्थगिताभ्र ( बद्दलों को रोकने वाले ) वायु का होना श्रेष्ठ है।

२८४-इन दिनों में बिजलियाँ, जल की बूंदें और धूलिका के सहित हवा का चलना, सूर्य चन्द्रमा पर गदल का छाजाना ये सब शुभ धारणा के लक्षण हैं।

२८५-२८६-इन दिनों में सूर्य चन्द्रमा के सुन्दर और साफ कुण्डलना का होना, इकट्ठे हुए स्निग्ध बादलों का होना तथा उन बादलों की दक्षिण गति होना शुभधारणा के लक्षण हैं। इन चारों तिथियों में एक तरह के लक्षण दिखाई देने से श्रावणादि महीनों में अच्छी वृष्टि होती है। यदि इन दिनों में कुछ वर्षा होजाय अथवा कुछ अन्तर से ये सब लक्षण दीखें तो अशुभ है।

२८७-ज्येष्ठ शुक्ल में आर्द्रा आदि नव नक्षत्रों में जल की परीक्षा करे यदि इन दिनों में बादल नहीं होवें तो जल अच्छा बरसे और यदि इन नक्षत्रों में बादल होजाय तो अवृष्टि कहना चाहिये।

२८८-ज्येष्ठ शुक्ल में स्वाति, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में वृष्टि होजाय तो इस धारणा नाश से श्रावणादि चार मास में अवृष्टि समझनी चाहिये।

इति धारणा।

२८९-ज्येष्ठ में चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्र के दिनों में मेघ और बिजलियों के होने से आषाढ, श्रावण और भाद्रपद में अच्छी वर्षा होती है और सुभिक्ष होता है।

२९०-ज्येष्ठ शुक्ल में चित्रा, स्वाति और विशाखा में बादल न होने से आषाढ में वृष्टि का अभाव रहता है और श्रावण में वर्षा होती है।

२९१-किसी का मत है कि ज्येष्ठ शुक्ल में चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्रों के दिनों में वृष्टि होजाय तो श्रावण में वृष्टि नहीं होय और धान्य महँगा रहै।

२९२-वैशाख और ज्येष्ठ के दोनों पक्ष की चतुर्दशी और अष्टमी तथा ज्येष्ठ शुक्ल की दशमी को शनिवार के होने से अनावृष्टि होती है।

२९३-२९४-ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी की घड़ियों के सात का भाग देने से यदि दो या चार शेष रहें तो खूब वृष्टि, पाँच रहैं तो वायु की अधिकता, छः शेष रहैं तो वर्षा की कमी और एक या शून्य शेष रहै तो सर्वत्र वर्षा होती है।

२९५-ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी से चार दिन तक यदि उत्तर की हवा चलती रहै तो वर्षाऋतु के चारों महीनों में अच्छी वृष्टि होय।

२९६-उपरिलिखित क्रम से यदि उन दिनों में विपरीत हवा चले या बादल विपरीत जाय तो उस महीने के उस नक्षत्र में वृष्टि नहीं होय।

२९७-उपरिलिखित चारों दिनों में प्रारंभ के समय यदि पश्चिम की हवा चले तो अनावृष्टि और दुर्भिक्ष का भय होता है।

२९८-२९९-उपरिलिखित चारों दिनों में चारों दिशाओं की हवा उत्तरोत्तर यदि एक को एक दबावे तो वर्षाऋतु के चारों महीनों में अच्छी वर्षा होती है। और यदि चारों दिशाओं की हवा विपरीत क्रम से चलकर एक दिशा की हवा अन्य दिशा की हवा को दबावे तो वर्षाऋतु में वृष्टि न होकर शीतकाल में वृष्टि होती है।

३००-यदि इन दिनों में वायव्य, पश्चिम और नैऋत्य में वायु चले तो श्रावण तथा कार्त्तिक में वृष्टि न होकर भाद्रपद और आश्विन में उत्तम वृष्टि होय।

३०१-पूर्व, ईशान और अग्निकोण में यदि वायु चले तो भाद्र और आश्विन में वृष्टि न होकर श्रावण, कार्तिक में अच्छी वर्षा होय।

३०२-ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिन वृष्टि होने से गर्भ का नाश होजाता है। इससे वर्षाऋतु में वृष्टि नहीं होती।

३०३-ज्येष्ठ की पूर्णिमा में यदि चन्द्र-ग्रहण होवे तो कौशल ( अयोध्या प्रान्त )और कलिंग ( उड़ीसा ) देशवाले अन्न के न मिलने से पीडित हों।

३०४-ज्येष्ठ की पूर्णिमा के अन्त में यदि मूलनक्षत्र के होते हुए वर्षा हो जाय तो ६० दिन तक वृष्टि नहीं होती और इसके बाद जल बरसता है।

३०५-इस तिथि को मूलनक्षत्र के पाद ( चरण ) विभाग से भी वृष्टि की कल्पना करनी चाहिये। यदि पूर्व पाद में वृष्टि होजाय तो चातुर्मास्य के अन्त में वर्षा समझनी चाहिये।

३०६-वृष राशि पर सूर्य आने पर यदि ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को वृष्टि होजावे तो पूर्वाषाढ के दिन की वर्षा का और मूलनक्षत्र के दिन जल बरसने का दोष नहीं समझना।

३०७-इसी तरह ज्येष्ठमास में श्रवण और धनिष्ठा के दिन यदि गर्जना, वृष्टि तथा बिजलियाँ होजायँ तो ज्येष्ठा और मूल के दिन बरसने का दोष नहीं समझना चाहिये।

३०८-मूलनक्षत्र का पूर्णिमा के दिन होना श्रेष्ठ है, प्रतिपदा के दिन होना सामान्य है और द्वितीया को होना भी खराब है। अनुराधा नक्षत्र के दिन पूर्णिमा का होना खराब है।

३०९-ज्येष्ठ कृष्णा ( प्रचलित हिसाब से आषाढ कृष्णा ) प्रतिपदा के दिन बिजली, गर्जना और वर्षा से घास का दुर्भिक्ष पड़ता है तथा वृष्टि भी कहीं कहीं होती है।

३१०-ज्येष्ठ की पूर्णिमा के समाप्त होने के बाद पूर्वाषाढ नक्षत्र में यदि गर्जना होजाय तथा बिजलियाँ और बादल घेर घुमेर छाये रहें तो वर्षाऋतु में अच्छी वृष्टि होती है।

## प्रवर्षणमितिः

३११-ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा के दिन मूलनक्षत्र आवे, उसके आगे से पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ इत्यादि नक्षत्रों के क्रम से सत्ताईस नक्षत्रों तक वर्षा की परीक्षा करनी चाहिये।

प्रायः ज्येष्ठ की पूर्णिमा के दिन मूल या ज्येष्ठानक्षत्र आया करता है।

३१२-ज्येष्ठ की पूर्णिमा के समाप्त होने पर पूर्वाषाढ आदि सत्ताईस नक्षत्रों में बरसे हुए जल को नाप करके ऋतुओं के क्रमसे वर्षा जानलेनी चाहिये। जल नापने की विधि आगे बताई जारही है।

३१३-३१४-एक हाथ चौड़ा, एक हाथ गहरा और एक हाथ लम्बा जमीन में कुंड* (खड्डा) खोदना चाहिये। और इसमें आगे बताए हुए नाप के चिन्हों को लगाकर इसमें गिरे हुए वर्षा के जल को आढक से नापे। पचास तोलों का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है। ये द्रोण ही।वृष्टि के अन्तिम मान माने गये हैं। अब आगे स्वाभाविक रीति से अर्थात् किसी ग्रह की रुकावट के न होने पर नक्षत्रों में जितने द्रोण जल बरसता है वह कहा जाता है।

३१५-द्रोण की चौथाई ( एक आढक ) का प्रस्थ नाम है। और द्रोण को जल के नाप में 'अक्षर' इस नाम से भी कहा करते हैं।

३१६से३१६-धनिष्ठा, रेवती, चित्रा, हस्त, पूर्वाषाढ और मृगशिर नक्षत्र में १६ द्रोण, स्वाति, ज्येष्ठा और शतभिषा में चार द्रोण; मघा, अनुराधा, भरणी श्रवण और मूल में चौदह द्रोण; उत्तराषाढ, पुनर्वसु और विशाखा में बीस द्रोण; कृत्तिका में दश द्रोण; उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पूर्वफल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में पच्चीस; अश्लेषा में तेरह; पुष्य और पूर्वफल्गुनी में पन्द्रह; आर्द्रा में अठारह द्रोण और अश्विनी में बारह द्रोण जल होता है। यदि कोई उपद्रवी ग्रह न हो तो इस ऊपर लिखे हुए नाप से नक्षत्रों में बरसा करता है।

कितना रसा हुआ जल नापना चाहिये, वह बतलाते हैं।

३२०-जिस वर्षा से पृथ्वी पर जल बहने लगजाय और जिससे घास के अग्रभाग से बूंदे टपकने लगजाय, यहाँ तक का वर्षा का जल नापना चाहिये इससे कम वर्षा हुआ जल नापने के योग्य नहीं।

३२१-दश योजन ( ४० कोस ) के वृत्त ( सर्किल ) में हुआ वर्षा न अल्प और न अतिवृष्टि है बारह योजन (४८ कोस) से आगे बरसने को वर्षा कहते हैं।

३२२-जिन नक्षत्रों में जैसी वर्षा हुई हो वैसी ही वर्षा फिर उन्हीं नक्षत्रों पर सूर्य के आने से वर्षा होती हैं। यदि पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ में वर्षा न होवे तो अनावृष्टि समझनी चाहिये।

कितनी दूरी पर वर्षा या बादल है, वह लिखते हैं।

३२३-३२४-साधारण रीति से गर्जना* एक विपल में तीन सौ चार हाथ दूरी पर जाती है।

* कई इस यन्त्र को काठ ( लकडी ) का भी बनालिया करते हैं।

* एक घड़ी की ६० पल और एक पल की ६० विपल हुआ करती है।

बिजली चमकने पर जितने विपल बाद गर्जना सुनाई देवें ऊपर लिखे हुए एक विपल के हिसाब से उतने हीं हाथ की दूरी पर वर्षा समझनी चाहिए।

इति प्रवर्षणा मितिः।

३२५-ज्येष्ठ में श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र के दिन वायु, वृष्टि, बिजली और गर्जना से वर्षाऋतु में अच्छी वर्षा होती है। और यदि इस दिन गरमी विशेष पड़े तो वृष्टि की रुकावट जाननी चाहिये।

३२६-ज्येष्ठकृष्णा २ ( अर्थात् प्रचलित व्यवहार से अषाढ कृष्णा द्वितीया ) को मंगलवार के होने से अनावृष्टि, रविवार से गरमी, बुध से बादलों की केवल छाया, शनिवार के होने से प्रजा का नाश होता है।

३२७-ज्येष्ठकृष्णा ( आ० कृ० ) चतुर्थी को यदि सूर्य बादलों से केवल ढका हुआ रहै तो तीन महीनों के बाद खूब जल बरसे।

३२८-ज्येष्ठकृष्णा ( आ० कृ० ) चतुर्थी को सूर्य के अस्त होने के बाद जब जल नहीं बरसता है तब वर्षाऋतु में दुःख के साथ वर्षा होती है। अर्थात् बहुत कम वृष्टि होती है। यह भी किसी का मत है।

३२९-ज्येष्ठ कृष्णा ( आ० कृ० ) पंचमी को यदि पश्चिमदिशा का पवन चले और वृष्टि, गर्जना तथा इन्द्रधनुष होवे तो कार्त्तिक में अन्न की महंगाई रहै।

३३०-ज्येष्ठ कृष्णा ( आ० कृ० ) में चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी और अमावास्या को मेघ के लक्षण विशेषकर देखने चाहिए।

३३१-३३२-यदि ऊपर लिखे हुए तिथियों में सूर्यास्त के समय पूर्वदिशा का आकाश, पर्वत, हाथी वगैरह कई रूप वाले बादलों से ढका हुआ होतो पांच या सात रात्रि के अन्दर अन्दर शीघ्र ही वर्षा होने वाली समझनी चाहिये। यही फल सन्ध्या के समय अन्य दिशाओं का भी समझना चाहिये।

३३३-दक्षिण दिशा के कोटीनार सहित पैदा हुए मेघ तीन, पाँच या सात रात के अन्दर अन्दर कुछ वृष्टि करते हैं।

३३४-पश्चिम दिशा में सन्ध्याकाल के समय सूर्य के अस्त होजाने पर यदि पर्वतों की तरह काले बद्दल दिखाई दें तो शीघ्र ही वर्षा आवेगी, यह समझना चाहिये।

३३५–सन्ध्या के समय उत्तर दिशा में पर्वतों की श्रेणी (लाइन) की तरह यदि काले बादल दिखाई दें तो उसके तीसरे दिन मन को तुष्ट करने वाली वृष्टि होती है ।

३३६–३३७–अग्निकोण के बादल जल कम बरसाने वाले और ताप विशेष देने वाले होते हैं, नैऋत्यकोण के बादलों से ६ प्रकार की ईतियों का भय, रोग और वर्षा भी होती है, वायव्यकोण के उन्नत बादलों से हवा और वृष्टि होती है, तथा ईशानकोण के बादल अच्छी बरसा और सुख देनेवाले होते हैं। ये सब लक्षण प्रधानतया पहिले कही हुई ज्येष्ठमास के कृष्णपक्ष ( आ० कृ० ) की चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी और अमावास्या के ही समझने चाहिये ।

३३८–ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष की ( अर्थात् आषाढ कृष्णा की ) अष्टमी और चतुर्दशी को दक्षिणदिशा की हवा चलने से चौतरफ वृष्टि होती है ।

३३९–ज्येष्ठ कृष्णा ( आ० कृ० ) में अष्टमी का चन्द्रमा यदि काले बादलों के होजाने से नहीं दीखे तो पृथ्वी पर जल खूब बरसे । और यदि उस रात में चन्द्रमा साफ दिखाईदे तो वृष्टि का अभाव समझना चाहिये ।

३४०–ज्येष्ठ कृष्णा ( आ० कृ० ) दशमी को जल बरसने से भाद्रपद में वर्षा होती है और यदि उक्त तिथि के दिन रेवती नक्षत्र भी हो तो विशेष श्रेष्ठ है ।

३४१–ज्येष्ठ कृष्णा ( आ० कृ० ) दशमी को शनिवार के होने से प्रजा अनावृष्टि और दुर्भिक्ष से दुःखी रहै ।

३४२–ज्येष्ठ कृष्णा ( आ० कृ० ) दशमी को रेवती नक्षत्र के होने से सुभिक्ष, एकादशी को होने से महामारी और द्वादशी को होने से दुर्भिक्ष पड़ता है ।

३४३–ज्येष्ठ कृष्णा ( आषाढ कृष्णा ) अमावास्या को आर्द्रा के, प्रतिपदा को पुनर्वसु के और द्वितीया को पुष्य के होने से क्रमसे जल, धान्य और घास नहीं होता है ।

३४४–३४५–ज्येष्ठ की अमावास्या और पूर्णिमा में रात दिन बादल रहैं तथा अमावास्या से आषाढ और श्रावण और पूर्णिमा से भाद्रपद और आश्विन को दिन और रात का विभाग माने यदि इनमें पश्चिम की हवा चले तो अनावृष्टि होती है । कहीं कहीं भाग्य से वृष्टि होजाती है ।

## मासांत रोहिणी ।

३४६-रोहिणी नक्षत्र पर से सूर्य के चले जाने के बाद अर्थात् जिसदिन रोहिणी नक्षत्र पर सूर्य आवे उससे तेरह दिन के अनन्तर जब रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा आवे, उस दिन के चार विभाग करके उनमें क्रमसे श्रावणादि चार मासों की कल्पना कर वायु की परीक्षा करे जिस विभाग के मास में अच्छी वायु चले उसमें अच्छी वर्षा समझनी चाहिये ।

३४७-उपर्य्युक्त दिन पूर्व की वायु से वर्षा, अग्निकोण की से गर्मी वा अग्निभय, दक्षिण की हवा से धान्यनाश, नैऋत्य की से दुर्भिक्ष, पश्चिम की से सुवृष्टि, वायव्यकोण की हवा से वृष्टि सहित वायु, उत्तर की से सुवृष्टि और ईशानकोण की वायु से स्वास्थ्य होता है ।

३४८-३४९-३५०-उपर्युक्त दिन मध्याह्न काल से पहिले वायु चलने से श्रावण और भाद्रपद में वृष्टि होती है और मध्याह्न में चलने से भाद्रपद और आश्विन में तथा मध्याह्न के बाद वायु चलने से आश्विन, कार्त्तिक में । यदि दिन भर ही अच्छी वायु चलती रहै तो सब महीनो में अच्छी वर्षा समझनी चाहिये और यदि अशुभ वायु चले तो सर्वथा विपरीत फल मिलता है । यदि शुभ, अशुभ दोनों ही चले तो इनमें जो बलवान् हो उसी का शुभाशुभ फल समझना चाहिये ।

३५१- ज्येष्ठ कृष्णा ( आषाढ कृष्णा ) एकादशी को रोहिणी नक्षत्र के होने से सुभिक्ष होता है यदि यह नक्षत्र न हो तो दुर्भिक्ष कहना चाहिये ।

३५२-ज्येष्ठ ( आषाढ ) कृष्णा एकादशी को जितने विशेष समय तक अर्थात् जितनी घड़ी रोहिणी रहै उतनी ही धान्य की पैदावार उत्तम होती है, इसकी परीक्षा करलेनी चाहिये । तीन घड़ी तक रहने से एक विस्वा, नव घड़ी से तीन विस्वा इत्यादि क्रम समझना चाहिये ।

३५३- ज्येष्ठ कृष्णा ( आषढ कृष्णा ) दशमी को रोहिणी होने से अल्पवृष्टि दुर्भिक्ष और प्रजा को दुःख होता है ।

३५४-ज्येष्ठ ( आषाढ ) कृष्ण एकादशी को कृत्तिका नक्षत्र होने से खंडअकाल अर्थात् कहीं सुभिक्ष और कहीं दुर्भिक्ष होता है । और रोहिणी नक्षत्र होने से सुभिक्ष तथा मृगशीर्ष के होने से बड़ा दुर्भिक्ष होता है ।

३५५-ज्येष्ठ तथा आषाढ में रोहिणी नक्षत्र के दिन वर्षा होने से उस वर्ष अच्छी वृष्टि होती है, यदि वृष्टि न होतो उस वर्ष वृष्टि का अभाव समझना चाहिये ।

३५६–आषाढ कृष्ण ( अर्थात् श्रावण कृष्ण ) में रोहिणी नक्षत्र के दिन का जो फल कहा जायगा वह सब इस मास में समझना चाहिये ।

इति मासांत रोहिणी ।

इति ज्येष्ठमासः ।

## आषाढः ।

आषाढे प्रथमे भौमे निरभ्रे यदि भास्करः ।
न विद्युद्गर्जितं तर्हि द्वौ मासौ स्यादवर्षणम् ॥३५७॥
आषाढशुक्लप्रतिपद्दिने प्रातः पुनर्वसु ।
यावती दृश्यते भुक्तिस्तावती वृष्टिरिष्यते ॥ ३५८ ॥
आषाढशुक्ल पक्षत्यां तद्द्वितियातृतीययोः ।
वृष्ट्या वृष्टेः क्रमाद्द्रोणाः एको द्वादश षोडश ॥३५९॥
आषाढशुक्ले पक्षत्यां द्वादश्यां पूर्णिमातिथौ ।
यदि प्रचण्डः पवनस्तदा मेघो न दृश्यते ॥ ३६० ॥
आषाढशुक्ले प्रतिपत्तिथौ वा पञ्चमीतिथौ ।
गुरुशुक्रेन्दुवारेण सुवृष्टिश्च सुभिक्षता ॥ ३६१ ॥
शुक्लाषाढे द्वितीयायां नवम्यां वा तिथौ यदि ।
गुरुशुक्रेन्दुवाराः स्युः सुवृष्टिश्च समर्घता ॥ ३६२ ॥
उष्मा रवौ बुधे च्छाया भौमेऽनावृष्टिरीक्ष्यते ।
शनिवारे प्रजा पीडा स्यादिति ब्रुवते परे ॥ ३६३ ॥
शुक्लाषाढद्वितीयायां पञ्चम्यां यदि वर्षति ।
मेघो वा दृश्यते तत्र श्रावणे बहु वर्षति ॥ ३६४ ॥
शुक्लाषाढतृतीयायां पवनः पूर्वतो यदि ।
पूर्वागामी च मेघश्चेद् वृष्टिर्भाद्रे तु भूयसी ॥ ३६५ ॥

चतुर्थ्यां यदि शुक्लायामाषाढे दक्षिणोऽनिलः ।
मेघो गच्छति पूर्वस्यामाश्विने तर्हि वर्षति ॥ ३६६ ॥
चतुर्थ्यां यदि शुक्लायामाषाढे गर्जितं तडित् ।
वृष्टिर्भवति चेत्तत्र तदानावृष्टिरुच्यते ॥ ३६७ ॥
आषाढशुक्लापञ्चम्यां वातवृष्टिर्यदा भवेत ।
दुर्भिक्षं जायते तर्हि तत्र देशेऽतिवृष्टितः ॥ ३६८ ॥
आषाढशुक्लपञ्चम्यामुत्तरः पवनो यदि ।
दृश्यन्ते चोन्नता मेघा वृष्टिर्भवति कार्तिके ॥ ३६९ ॥
आषाढशुक्लपञ्चम्यां पश्चिमो यदि मारुतः ।
धनुर्गर्जितवर्षाभिः कार्तिके स्यान्महार्घता ॥ ३७० ॥
अषाढशुक्लपञ्चम्यां विद्युद् विद्योतते भृशम् ।
तदा सुवृष्ट्या सर्वत्र सुभिक्षं जायतेऽनिशम् ॥ ३७१ ॥
आषाढशुक्लपंचम्यां विंदुपाते सति ध्रुवम् ।
वृष्टिः प्राङ्मासतोऽपाते त्वल्पंकृष्णोऽभिवर्षति ॥ ३७२ ॥
आदौ तावद् द्वितीयायां शुक्लाषाढे प्रवर्षति ।
तृतीयायां पूर्ववातो दृश्यन्ते चोन्नता घनाः ॥ ३७३ ॥
चतुर्थ्यां दक्षिणौ वातो मेघा गच्छन्ति पूर्वतः ।
पंचम्यामुत्तरो वातो दृश्यन्ते चोन्नता घनाः ॥ ३७४ ॥
चतुर्ष्वपि दिनेष्वेवं स्थित्या श्रावणमासतः ।
चतुर्ष्वपि च मासेषु साधु वर्षति वासवः ॥ ३७५ ॥
शुक्लाषाढे द्वितीयातो वृष्टे दिनचतुष्टये ।
दृष्टे घनघटाटोपे वाते पूर्वोत्तरेऽपि वा ॥ ३७६ ॥
अतिवृष्टिः सुवृष्टिर्वा सुभिक्षं वा समर्घता ।
अवर्षणे त्वनभ्रे तु दुर्भिक्षं नैऋतेऽनिले ॥ ३७७ ॥

तृतीयायां च पंचम्यां वायुर्दक्षिणपश्चिमः ।
तदा धान्यानि नश्यंति दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥३७८॥
तृतीयायां च पंचम्यां वायुः पूर्वोत्तरो यदि ।
तदा स्याद्धान्यनिष्पत्तिर्बहुला वृष्टिरुत्तमा ॥ ३७९ ॥
शुक्ले चतुर्थीपंचम्योराषाढे विद्युदीक्षणम् ।
पूर्वा विद्युत् पूर्ववायुः सुभिक्षं क्षेमसिद्धये ॥ ३८० ॥
आग्नेय्यां तावनावृष्ट्यै याम्यायां व्याधिमृत्यवे ।
नैऋत्यामीतये मध्यसस्यसिद्ध्यै तु पश्चिमे ॥३८१॥
वायव्यां मध्यसस्याया सौम्यायां भूरिसम्पदे ।
ऐशान्यां सुखसम्पत्त्यै सुवृष्ट्यै वायुविद्युतौ ॥ ३८२ ॥
करोति विषमां वृष्टिं सर्वदिक् प्रभवोऽनिलः ।
विद्युतः प्रतिलोमे तु वाते स्युर्बहुधेतयः ॥ ३८३ ॥
शुभायां स्पन्दमानायां प्रविष्टा स्पन्दते यदि ।
सम्पद्यते तदा सस्यं महांश्च स्यादुपद्रवः ॥ ३८४ ॥
अशुभा स्पन्दते पूर्वं तत्पश्चात् स्पन्दते शुभा ।
सुवृष्टिमेव तत्राहुर्न च सस्यं समृध्यति ॥ ३८५ ॥
चतुर्थीपंचमीषष्ठीसप्तमीषु शुचौ सिते ।
पीताभैः सन्ध्यया कृष्णैरभ्रैर्वर्षा भविष्यति ॥ ३८६ ॥
षष्ठ्यामाषाढशुक्लायां वृष्ट्या नभसि वर्षति ।
षष्ठ्यामवृष्ट्याऽनावृष्टिं श्रावणे परिचक्षते ॥३८७॥
आषाढशुक्लसप्तम्यां वृष्ट्या भाद्रे सुवर्षणम् ।
अवर्षणात्तु सप्तम्यां भाद्रेऽनावृष्टिरुच्यते ॥ ३८८ ॥
आषाढशुक्लगाष्टम्यां विद्युद्गर्जितवर्षणैः ।
आश्विने साधुवृष्टिः स्यादवृष्टौ नात्र वर्षति ॥३८९॥

शुक्लाष्टम्यां तथाषाढे वायुः पूर्वश्च दक्षिणः ।
दुर्भिक्षाय सुभिक्षाय वायुः पश्चिम उत्तरः ॥ ३९० ॥
आषाढशुक्लपञ्चम्यारब्धे तिथिचतुष्टये ।
यावन्त्यभ्राणि दृश्यन्ते वृष्टिः प्रावृषि तावती ॥३९१॥

## स्वातियोगः ।

द्वादशस्वपि मासेषु स्वातीयोगपरीक्षणम् ।
आषाढे तु विशेषेण फलपाकपरीक्षणम् ॥ ३९२ ॥
शुक्लाषाढनवम्यां तु शनिवारश्च मैत्रभम् ।
क्वचिद्धान्यार्घनिष्पत्तिः क्वचिद् दुर्भिक्षसंभवः ॥३९३॥
शुक्लाषाढनवम्यां तु विद्युद्घनघटा यदि ।
जलपातोऽपि वा तत्र तदा स्युरतिवृष्टयः ॥ ३९४ ॥
शुक्लाषाढे नवम्यां तु विद्युद्घनघटा शुभा ।
न विद्युतो न वा मेघा दुर्भिक्षं स्यादवृष्टितः ॥३९५॥
शुक्लाषाढनवम्यां तु वृष्टौ प्रबलधारया ।
अत्यल्पवृष्टिरत्यल्पसस्यं चात्र भविष्यति ॥ ३९६ ॥
दुर्बलायां शनैर्वृष्टौ बहु सस्यं सुवर्षणात् ।
कथंचिद् विन्दुपाते तु सस्यनाशोऽतिवृष्टितः ॥३९७॥
अस्तकाले नभोऽनभ्रं दुर्भिक्षं जनयिष्यति ।
अनूपदेश एवैतत् फलं वृष्टिविशेषजम् ॥ ३९८ ॥
अतिवृष्टयै तु नवमीदशम्योरतिगर्जनम् ।
केचिदाहुस्तु नवमी दुर्भिक्षायातिगर्जति ॥ ३९९ ॥
आषाढशुक्लनवमीदशम्योश्चन्द्रमा यदि ।
निशिच्छन्नो घनैस्तर्हि शीतकालेसुवृष्टिदः ॥४००॥

शुक्लाषाढे शुभा वृष्टिर्नवमीदशमीतिथौ ।
दुर्भिक्षं जायते नूनं वाते वृष्टिविनाकृते ॥ ४०१ ॥
शुक्लाषाढनवम्यां चेदनभ्रमुदयास्तयोः ।
मेघाच्छन्नस्तु मध्याह्नो वर्षर्तुः साधु वर्षति ॥ ४०२ ॥
अस्तोदयौ घनाच्छन्नौ मध्याह्ने निर्मलो रविः ।
तत्र तोयं न पश्यामि किञ्चिद् वृष्टिं समादिशेत् ॥४०३॥
उदयेऽस्ते च मध्याह्ने यदि स्यान्मेघडम्बरः ।
साधु वर्षति वर्षर्तुरवृष्टिर्निर्मले रवौ ॥ ४०४ ॥
उदये निर्मलो भानुर्मध्याह्नास्ते घनावृते ।
अग्रे तोयं न पश्यामि वर्जयित्वा महानदीम् ॥४०५॥
उदये वाथ मध्याह्ने सन्ध्यायां सूर्यमण्डलम् ।
मेघच्छन्नं न शुभदं नवम्यां च शुचौ सिते ॥४०६॥
आषाढशुक्ले पूर्वाह्ने पराह्ने च सुवृष्टये ।
मध्याह्ने कीटसर्पाणां स्वाति वर्षति सृष्टये ॥४०७॥
पूर्वरात्रेऽखिलं सस्यं स्वाती वृष्ट्याभिवर्धयेत् ।
माषमुद्गतिलोत्पत्त्यै मध्यरात्रेऽभिवर्षति ॥ ४०८ ॥
वर्षत्यपररात्रे चेद् ग्रैष्म्यं स्यान्न तु शारदम् ।
वृष्टायां द्युनिशं वृष्टिः प्रावृषि स्यान्निरन्तरा ॥४०९॥
यत्फलं रोहिणीयोगे तत्स्वात्यामपि चिन्तयेत् ।
तत्र वायुवशात्सिद्धिं चातुर्मास्ये परीक्षते ॥ ४१० ॥
चित्रास्वातीविशाखासु त्र्यहमप्यतिवर्षति ।
न वर्षति तदा मेघो दुर्भिक्षस्य हि लक्षणम् ॥४११॥

इति स्वातीपरीक्षा ।

आषाढशुक्लैकादश्यां शनिर्वा मंगलो रविः ।
वारश्चेत् प्रबलो वायुरन्नं याति महार्घताम् ॥४१२॥
आषाढशुक्लैकादश्यां शन्यादित्यकुजैः समम् ।
सम्पूर्णतिथिभागश्चेत्तदा दुर्भिक्षमादिशेत् ॥ ४१३ ॥
आषाढशुक्लैकादश्यां यदि वर्षति वासवः ।
आद्या अपरपक्षे तु तदा वर्षा भविष्यति ॥ ४१४ ॥
आषाढशुक्लद्वादश्यां महावातो भवेद्यदि ।
तदा वर्षति यत्नेन तथाहुः प्रतिपद्यपि ॥ ४१५ ॥
शुक्लाषाढचतुर्दश्यां यदि वृष्टिर्भवेत्तदा ।
वृष्टिः श्रावणकृष्णैकादशीतो नववासरे ॥ ४१६ ॥

## आषाढी परीक्षा ।

गर्भाः पुष्टिकराः सर्वे सुयोगा विलयं गताः ।
आषाढ्यां तु विनष्टायां सर्वमेवाशुभं भवेत् ॥४१७॥
गर्भनाशकराः सर्वे कुयोगा विलय गताः ।
यद्याषाढी शुभा जाता तदा सर्वं शुभं भवेत् ॥४१८॥
आषाढे पूर्णिमायां तु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
मासेऽर्धपञ्चमे सर्वद्रव्याणां हि महार्घता ॥ ४१९ ॥
दृष्टो यदीन्दुर्नाषाढ्यां वर्षर्तुर्बहु वर्षति ।
यदि तत्रामलश्चन्द्रोऽनावृष्टिर्दारुणा भवेत् ॥४२०॥
यदि तत्रामलश्चन्द्रः परिवेषयुतोऽथवा ।
तदातिमात्रं दुर्भिक्षं तत्र देशेऽभिजायते ॥ ४२१ ॥
आषाढे पूर्णिमायां तु मूलभं यदि दृश्यते ।
यावदेव भवेन्मूलं तावद्दुर्भिक्षमादिशेत् ॥ ४२२ ॥

आषाढ्यां यदि मूलं स्यादुत्तराषाढमेव वा ।
आवर्षं मध्यमं धान्यं देशे सर्वत्र जायते ॥ ४२३ ॥
पूर्वाषाढा यदाषाढ्यां तदा वर्षे शुभं भवेत् ।
आवर्षं धान्यनिष्पत्तिः प्रजापि सुखमेधते ॥ ४२४ ॥
शुक्लाषाढे चतुर्दश्याः पूर्णिमा घटिकाऽधिका ।
समर्घं स्यात्समं साम्ये शून्यपाते तु निष्कणम् ॥४२५॥
आषाढ्याः पूर्णिमायास्तु यदि वृद्धिः प्रजायते ।
मासमेकं समर्घं स्यात् पश्चादन्नमहार्घता ॥ ४२६ ॥
आषाढ्यां षष्टिमानायां यावत्सम्वत्सरं शुभम् ।
त्रिंशद्घटीभिः षण्मासान् तदर्द्धेन तदर्द्धके ॥४२७॥
न्यूनाभिः पञ्चदशतो घटीभिर्दुःखसंभवः ।
वातवार्द्दलसंयोगात् तारतम्यं फले पुनः ॥ ४२८ ॥
आषाढ्यां घटिका षष्ट्या मासा द्वादश भाविताः ।
पंचनाड्यो भवेन्मासो मासि मासि फलं वदेत् ॥४२९॥
यत्र मासविभागे वा रात्रौ चंद्रोऽतिनिर्मलः ।
तन्मासगर्भा उत्पातविनष्टा इति निश्चयः ॥ ४३० ॥
यत्र पंचसु नाडीषु निर्मलं दृश्यते नभः ।
तत्र मासविभागे वै वृष्टिहानिर्भविष्यति ॥ ४३१ ॥
यत्र वा पंचनाडीषु मेघाः पूर्वोत्तरानिलौ ।
तत्र मासे भवेद् वृष्टिरित्येवं सर्वनिर्णयः ॥ ४३२ ॥
आद्ये यामे यदाभ्राणि वातौ पूर्वोत्तरौ तथा ।
आद्ये मासे तदा वृष्टिरुपयुक्ताधिका भवेत् ॥ ४३३ ॥
सर्वरात्रे यदाभ्राणि वातौ पूर्वोत्तरौ तथा ।
तस्मिन् वर्षे कणाः पुष्टाश्चातुर्मास्यं सुवर्षति ॥४३४॥

न वर्षति यदा देवो वातौ पूर्वोत्तरौ न हि ।
यदि वा नाभ्रलेशः स्यात् कालो दुष्टस्तदा मतः ॥४३५॥
आषाढ्या रात्रिकाले तु पवनः सर्वदिग्गतः ।
अभ्रैरवृष्टैरपि सा पौर्णमासी शुभावहा ॥ ४३६ ॥
आषाढ्यामप्यनभ्रायां वातौ पूर्वोत्तरौ यदि ।
यामार्द्धसंमिते मासे तत्र वृष्टिर्हि वा भवेत् ॥४३७॥
आषाढ्यामप्यनभ्रायां वातौ पूर्वोत्तरौ यदि ।
यत्र यामार्द्धके तत्र मासे वृष्टिर्हठाद् भवेत् ॥४३८॥
यद्याषाढ्या अष्टयामं गर्भावातश्च पूर्वजः ।
शीतकालिकगर्भाणामविघातं तदा वदेत् ॥ ४३९ ॥
आषाढ्यां तु दिने रात्रौ पूर्वो वायुः सुवृष्टिकृत् ।
किन्तु पश्यंति दुर्भिक्षं मरुदेशे च गुर्जरे ॥ ४४० ॥
अग्नेय्यामल्पवृष्टिः स्यादग्निभीतिर्महार्घता ।
सर्वत्र कठिनः कालो मरुदेशे तु दुर्दशा ॥ ४४१ ॥
दक्षिणे स्यादनावृष्टिः प्रजापीडा महार्घता ।
नैर्ऋते स्यादनावृष्टिर्दुर्भिक्षं दारुणं भयम् ॥ ४४२ ॥
वारुण्यां तु महावृष्टिर्धान्योत्पत्तिस्तु मध्यमा ।
वायव्ये स्यादनावृष्टिर्वायुदोषेण दुर्दशा ॥ ४४३ ॥
उत्तरे स्यान्महावृष्टिरैशान्यां तु सुवृष्टयः ।
ऊर्ध्वे वायौ तु दुर्भिक्षमुग्रवायुरवृष्टिकृत् ॥ ४४४ ॥
अल्पवृष्ट्यै तु चत्वारो वाता वान्त्यपसव्यतः ।
प्रदक्षिणं तु ते वांति सुभिक्षक्षेमसंपदे ॥ ४४५ ॥

समन्ततो यदा वांति परस्परविघातिनः ।
खण्डवृष्टिं सस्यनाशं तृणनाशं च कुर्वते ॥ ४४६ ॥
शुभवातं नेष्टवातो हन्ति पापफलाय तु ।
नेष्टवातं शुभो वातो हत्वा प्रकुरुते शुभम् ॥ ४४७ ॥
दक्षिणः पौर्विकं वातं हन्त्यनावृष्टिहेतवे ।
वायुस्तम्भे तु पर्याप्ता वृष्टिः श्रावणभाद्रयोः ॥४४८॥
कुहूतः षोडषेऽह्नीदं चिंत्यं वाताभ्रलक्षणम् ।
अर्द्धमस्तमिते भानौ तस्माद्वर्षशुभाशुभम् ॥ ४४६ ॥
आषाढ़ीदिवसे वायुं सायंकाले परीक्षयेत् ।
पूर्वैशान्युत्तरावायुसञ्चारे समयः शुभः ॥ ४५० ॥
दुर्भिक्षमाग्निनैर्ऋत्यवायव्यानिलसंचरे ।
पश्चिमे दक्षिणे वायौ त्वर्धं समयमादिशेत् ॥ ४५१ ॥
सुभिक्षमग्निराषाढयां वृष्टिरल्पा समोत्तमा ।
बहुवाता सुपुष्टा च शुभा पूर्वादिवायुभिः ॥ ४५२ ॥
न चेत्पूर्वोत्तरौ वातौ न चाभ्रं न वर्षणम् ।
आषाढयां तर्हि विज्ञेयं दुर्भिक्षं सर्वतोमुखम् ॥४५३॥
आषाढपूर्णिमायां तु विद्युद्गर्जितवर्षणैः ।
दुर्भिक्षलक्षणं नष्टं सर्वानंदः प्रवर्तते ॥ ४५४ ॥

इत्याषाढी परीक्षा ।

शुभो वारः सुभिक्षाय श्रवणेऽषाढयोरपि ।
दुर्भिक्षाद्यशुभप्राप्तिः शनौ सूर्ये च मंगले ॥ ४५५ ॥
कृष्णाषाढे पूर्वभाद्रे चतुर्थ्यां यदि वर्षति ।
पञ्चम्यां गर्जितं घोरं तदा वर्षर्तुरुत्तमः ॥ ४५६ ॥

कृष्णाषाढचतुर्थ्यां चेदभ्राच्छन्नो दिनोदयः ।
विद्युद्वा गर्जितं वृष्टिस्त्रीन् मासांस्तर्हि वर्षति ॥४५७॥
कृष्णाषाढचतुर्थ्यां चेन्निशि वर्षति वासवः ।
तदा मासद्वयं वृष्ट्वा पुनर्वर्षा विलीयते ॥ ४५८ ॥
कृष्णाषाढचतुर्थ्यां चेदस्ते भास्करमण्डले ।
न वर्षति न वा मेघस्तदा कष्टेन वर्षति ॥ ४५९ ॥
कृष्णाषाढचतुर्थ्यां चेत्तुषारानपि पातयेत् ।
तदा नास्ति जलक्लेशः सर्वं सुस्थं भविष्यति ॥४६०॥
यदा घनघटावृष्टिः कृष्णाषाढेऽश्विनीदले ।
सर्वान् दोषान् निहत्येषा सुभिक्षं कुरुते तदा ॥४६१॥
आषाढकृष्णपञ्चम्यां निर्मलं गगनं शुभम् ।
तत्राष्टदशयामान्ते घनस्तोयं व्यपोहति ॥ ४६२ ॥
आषाढकृष्णपंचम्यां न विद्युन्नापि वार्दलम् ।
तदा वृष्टिर्न तत्रास्ति वृथा स्यात्कर्षणश्रमः ॥४६३॥
आषाढकृष्णपंचम्यां यदि वृष्टिर्भवेत्तदा ।
चत्वारो वार्षिका मासा भवेयुर्वारिसंप्लुताः ॥४६४॥
आषाढकृष्णपंचम्यां यदि वायोर्न संचरः ।
यदि वाऽत्युग्रसंचारो दुर्भिक्षं प्रबलं तदा ॥ ४६५ ॥
आषाढकृष्णपञ्चम्यां पश्चिमः पवनो यदि ।
गर्जितं च धनुर्वृष्टिः कार्तिके स्यान्महार्घता ॥४६६॥
आषाढकृष्णसप्तम्यां शनिवारः सुवृष्टिकृत् ।
आषाढकृष्णगाष्टम्यां रविवारः शुभावहः ॥ ४६७ ॥
आषाढकृष्णगाष्टम्यां दुर्भिक्षं दक्षिणेऽनिले ।
पूर्वानिले खण्डवृष्टिः सुवृष्टिः पश्चिमानिले ॥४६८॥

श्रावणे बहुवृष्टिः स्यादुत्तरो यदि मारुतः ।
तत्र चेद् गर्जितं वृष्टिश्चातुर्मास्यं सुवर्षति ॥ ४६९ ॥
आषाढकृष्णगाष्टम्यां शशिनो निर्मलोदये ।
अनावृष्टिः सुवृष्टिस्तु मेघाच्छन्ने विधूदये ॥४७०॥
कृष्णाषाढनवम्यां तु गुरुशुक्रेन्दुभिः शुभम् ।
कुजेन युद्धं दुर्भिक्षं शनिना रविणापि च ॥ ४७१ ॥
कृष्णाषाढनवम्यां तु विद्युद् विद्योतते यदि ।
सुवृष्टिश्च सुभिक्षं च तदा तत्र भविष्यति ॥ ४७२ ॥
आषाढे कृत्तिकायान्तु यदि मेघः प्रवर्षति ।
तदा बहुजला पृथ्वी बहुधान्यधनाः प्रजाः ॥४७३॥
सप्तमी दशमी चैकादशी चाषाढकृष्णगा ।
सन्ध्यायां मेघचिह्नेन त्रिरात्रं वृष्टिकारिणी ॥४७४॥
आषाढकृष्णे जायेत पंचरात्रं झटी यदि ।
तदा तु ज्यैष्ठगे मूले गलितेऽपि सुवृष्टयः ॥ ४७५ ॥
आषाढ़कृष्णैकादश्यामभ्रच्छन्नौ दिनोदयः ।
विद्युद्वा गर्जितं वृष्टिः सुभिक्षं तर्हि निर्दिशेत् ॥४७६॥

## रोहिणीयोगः ।

आषाढकृष्णे चन्द्रेण संगतां पश्य रोहिणीम् ।
चंद्रप्रमाणवर्णाभा मार्गैर्वार्तैश्च तत्फलम् ॥ ४७७ ॥
नगरादुत्तरे पूर्वे स्थलं कृत्वा त्र्यहोषितः ।
सुस्थण्डिलं कुशास्तीर्णमावसेदग्नितत्परः ॥ ४७८ ॥
रत्नौषधिजलैः पूर्णान् प्रवालपिहितान् घटान् ।
अकृष्णाबुध्नानप्यत्र स्थापयेत्तु चतुर्दिशम् ॥ ४७९ ॥

महाव्रतेन मन्त्रेण वीजान्यालभ्य निक्षिपेत् ।
कुम्भे संप्लावयेत्तानि सुवर्णकुशवारिभिः ॥ ४८० ॥

मारुतैर्वारुणैः सौम्यैर्मन्त्रैर्होमो विधीयते ।
योगान्तेऽङ्कुरितं वीजं वीक्ष्य तत्सिद्धिमूहयेत् ॥४८१॥

चन्द्रे योगं तु रोहिण्या गते वायु परीक्षयेत् ।
आदौ दिक्साधनं कृत्वा दिक्साधनविधानतः ॥४८२॥

वंशे द्वादशभिर्हस्तैरुन्नते प्रतिरोपिताम् ।
पताकामसितां श्लक्ष्णां चतुर्हस्तायतां कुरु ॥४८३॥

सव्येन गच्छन् शुभदोऽपसव्येन तु निन्दितः ।
तादिश्य एव बलवान् यत्रासौ प्रतितिष्ठति ॥ ४८४ ॥

सस्यं चाग्निप्रकोपश्च सस्यहानिर्महार्घता ।
वृष्टिर्झञ्झासुवृष्टिश्च शिवं पूर्वादिवायुभिः ॥४८५॥

रोहिण्यां वायुयोगेन चातुर्मास्यपरीक्षणम् ।
प्रहरैरर्धमासाः स्युस्तदंशैर्दिनकल्पना ॥ ४८६ ॥

नीयन्ते वायुना मेघास्तस्मात्तस्मिन् क्षणे पुनः ।
यद्दिगुत्था इमे मेघाः फलं तेषां च वायुवत् ॥४८७॥

सिताः क्वाप्यसिताः क्वापि स्थिताः क्वापि सितासिताः ।
सर्पैः समानाकृतयो वलितोदरपृष्ठकैः ॥ ४८८ ॥

आर्कांशुरञ्जितप्रांताः कमलोदरसन्निभाः ।
कुङ्कुमैः किंशुकैर्भृंगैः सदृशाः क्वापि चित्रिताः ॥४८९॥

असिता विद्युदाक्रांताः क्वचिदिंद्रधनुर्युताः ।
अञ्जनाद्रिशिलाव्रात प्रतिरूपधराः क्वचित् ॥४९०॥

सन्ध्यानुरक्ते नभसि तत्र तत्रान्ववस्थिताः ।
क्वचिदिन्दीवरश्यामाः क्वचिन्मुक्ता हिमप्रभाः ॥४६१॥
सौदामिनी हेमकक्षाः सुण्डादण्डादिमंडिताः ।
स्रवद्गण्डा अभ्रखण्डा गजराजसमाः क्वचित् ॥४६२॥
कृष्णैकांगाः खमाक्रम्य दिगन्तालंबिनो घनाः ।
मन्द्रस्वनाः क्षितौ नम्राः सलिलौघमुचः क्वचित् ॥४६३॥
एवंरूपा घनस्तूपा एकाहं वा द्व्यहं त्र्यहम् ।
स्थगयन्ति यदि व्योम वृष्टिः संभाव्यते तदा ॥४६४॥
नीरवैरूक्षतन्वभ्रैर्मारुताक्षिप्तविग्रहैः ।
उष्ट्रमर्कटकाकादिदुष्टरूपैरवर्षणम् ॥ ४६५ ॥
चन्द्रः कष्टाय जगतो रोहिण्या दक्षिणे पथि ।
करोति विपुलां वृष्टिं रोहिण्या उत्तरश्चरन् ॥ ४६६ ॥
रोहिण्या उत्तरोऽपींदुर्यदि स्पृशति रोहिणीम् ।
तदोपसर्गान् बहुलान् कुरुते वृष्टिदोऽपि सः ॥ ४६७ ॥
रोहिणी शकटं भित्त्वा यदि गच्छति चंद्रमाः ।
तदा महत्यनावृष्टिः पृथ्वी दुर्भिक्षपीडिता ॥ ४६८ ॥
पृष्ठतोऽनुसरत्येषा शशिनं यदि रोहिणी ।
स्त्रियः कामातुराः पुंसां वशे तिष्ठन्ति भूयसा ॥ ४६९ ॥
यदि वा रोहिणी चन्द्रः पृष्ठतोऽनुसरत्ययम् ।
तदा तु पुरुषाः स्त्रीणां वशे गच्छन्ति कामिताः ॥५००॥
उदये चन्द्रमा ब्राह्मया आग्नेय्यामुपसर्गकृत् ।
नैर्ऋत्यां संस्थितः सस्यं विनाशयति चेतिभिः ॥५०१॥
वायव्ये यदि रोहिण्याः समः सस्यचयस्तदा ।
ऐशान्यां सस्यवृद्ध्यादीन् गुणान् प्रकुरुते बहून्॥५०२॥

रोहिणी तारकामिंदुस्ताडयन् भयकृद्भवेत् ।
आवृण्वन् रोहिणीं चंद्रः कंचिद्धन्ति नृपं स्त्रिया ॥५०३॥
रोहिणीसंयुतश्चन्द्रो मेघाच्छन्नो न दृश्यते ।
बहुसस्या बहुजला पृथ्वी रोगेण पीड्यते ॥५०४॥
आषाढकृष्णे रोहिण्यां यदि वर्षति वासवः ।
तदा वृष्टिर्भवेत्तावद्यावन्नोत्तिष्ठते हरिः ॥ ५०५ ॥
अर्के कर्के तु रोहिण्यां चंद्रे वृष्टिर्न जायते ।
तदा भवति दुर्भिक्षमित्याचष्टे पराशरः ॥ ५०६ ॥
आषाढकृष्णैकादश्यां कृत्तिकातः समं फलम् ।
सुभिक्षं रोहिणी कुर्याद् दुर्भिक्षं मृगशीर्षतः ॥ ५०७॥
आषाढकृष्णैकादश्यां रोहिणी घटिकामितिः ।
यावती लभ्यते तावद्धान्यविंशोपका मताः ॥ ५०८ ॥
आषाढकृष्णैकादश्यामुत्तरो यदि मारुतः ।
भानूदयोऽभ्रछन्नो वा तदात्यन्तं शुभावहः ॥ ५०९ ॥
आषाढकृष्णैकादश्यां यदि वर्षा मनागपि ।
तदा शुभावहो योगः साधु वर्षां करिष्यति ॥ ५१० ॥
आषाढकृष्णैकादश्यां निशीथे यदि गर्जति ।
तदा दुर्भिक्षमादेश्यमनावृष्टिर्भविष्यति ॥ ५११ ॥
अभ्रशून्ये वियति चेत्तपति प्रखरो रविः ।
तारा च भासते रात्रौ तदापि स्यात्सुवृष्टिकृत् ॥५१२॥
कृष्णाषाढदशम्यान्तु सुभिक्षायैव रोहिणी ।
एकादश्यां समत्वाय दुर्भिक्षं द्वादशीतिथौ ॥ ५१३ ॥
रोहिणी च त्रयोदश्यां वायुः प्रबलमुद्वहेत् ।
आषाढे केचिदिच्छन्ति ज्येष्ठोक्तं रोहिणीफलम् ॥५१४॥

आषाढे रोहिणीयोगे वायुः पूर्वोत्तरः शुभः ।
तत्राभ्राणि तडिद् वृष्टिः प्रावृट्कालशुभावहाः ॥५१५॥

इति रोहिणीयोगः ।

आषाढे यद्यमावास्यादिने वृष्टिर्घनाघनाः ।
शुभयोगोऽयमाख्यातः सुभिक्षं जायते तदा ॥ ५१६ ॥
आषाढेऽमादिने गर्भः सायंसद्यः फलावहः ।
पूर्वस्यां वार्दलं धूम्रं सूर्यास्ते याति कृष्णताम् ॥५१७॥
उत्तरस्यां मेघमाला प्रभाते विमला दिशः ।
मध्यकाले घर्मतापो निशीथे तर्हि वर्षति ॥ ५१८ ॥
आषाढस्य त्वमावास्या पुष्याश्लेषामघान्विता ।
मध्यमं वर्षमादेश्यं नाधिकं वर्षणं तदा ॥ ५१९ ॥
आषाढमासे संक्रान्तौ यदि वर्षति वासवः ।
व्याधिरुत्पद्यते घोरः श्रावणे च पुनः शुभम् ॥ ५२० ॥

३५७-आषाढ शुक्ल के प्रथम मंगलवार के दिन यदि आकाश बादल रहित हो एवं बिजली और गर्जना भी नहो तो दोमासतक अवृष्टि होती है ।

३५८-आषाढ शुक्ला प्रतिपदा को प्रातःकाल जितनी घड़ी पुनर्वसु नक्षत्र हो उतनी ही वृष्टि समझनी चाहिये । अर्थात् जितनी घड़ी हों उन की तिहाई बिस्वा वृष्टि होती है, क्योंकि ६० घड़ी नक्षत्र और २० विस्वा वर्षा समान है ।

३५९-आषाढ शुक्ला प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को वृष्टि होने से उस वष क्रम से एक, बारह और सोलह द्रोण वर्षा होती है ।

३६०-आषाढ शुक्ला प्रतिपदा, द्वादशी और पूर्णिमा को तेज हवा चलने से उस वर्ष मेघ का अभाव समझना चाहिये ।

३६१-आषाढ शुक्ला प्रतिपदा या पञ्चमी तिथि को वृहस्पति, शुक्र अथवा सोमवार के आने से सुवृष्टि और सुभिक्ष होता है ।

३६२-इस प्रकार आषाढ शुक्ला द्वितीया या नवमी तिथि को भी गुरु, शुक्र अथवा सोमवार के आने से सुवृष्टि और सुभिक्ष होता है वस्तुएँ सस्ती मिलती हैं ।

३६३-कई आचार्यों का मत है कि आषाढ शुक्ला प्रतिपदा को रविवार के होने से गरमी, बुध से छायामात्र, मंगल से अनावृष्टि और शनिवार के होने से प्रजा को दुःख होता है ।

३६४-आषाढ शुक्ला द्वितीया और पंचमी को यदि बादल हों या वृष्टि हो तो श्रावण में अधिक वर्षा होती है ।

३६५-आषाढ शुक्ला तृतीया को पूर्व की हवा चले और पूर्व से ही बादल भी आते हों तो भाद्रपद में अधिक वर्षा होती है ।

३६६-आषाढ शुक्ला चतुर्थी को दक्षिण की हवा चलने और पूर्व की तरफ बादल जाते हों तो आश्विन में अच्छी वर्षा होती है ।

३६७-आषाढ शुक्ला चतुर्थी को गर्जना, बिजली और वर्षा के होने से उस वर्ष अनावृष्टि होती है ।

३६८-आषाढ शुक्ला पंचमी को जिस देश में हवा के साथ जल बरसे वहाँ अतिवृष्टि से दुर्भिक्ष होता है ।

३६९-आषाढ शुक्ला पंचमी को उत्तर की हवा चले और बड़े ऊँचे ऊँचे बादल दिखाई दें तो कार्तिक में वृष्टि होती है ।

३७०-आषाढ शुक्ला पञ्चमी को यदि इन्द्रधनुष, गर्जना और वर्षा के सहित पश्चिम की हवा चले तो कार्तिक में महँगाई होवे ।

३७१-आषाढ शुक्ला पंचमी को यदि बिजलियाँ अधिक चमकें तो सुवृष्टि होकर सर्वत्र सुभिक्ष होता है ।

३७२-आषाढ शुक्ला पंचमी के दिन बूंद गिरने से निस्संदेह मास के पहिले ही वृष्टि होने लगती है, यदि बूंद न पडे तो कृष्णपक्ष में थोड़ी वर्षा होती है ।

३७३से३७५-आषाढ शुक्ला में द्वितीया को प्रथमबार वृष्टि होय, तृतीया को पूर्व की हवा चले और बड़े बड़े बादल दिखाई दें, चतुर्थी को दक्षिण की हवा और पूर्व से बादल जाते हों तथा पंचमी को उत्तर की हवा और ऊँचे ऊँचे बादल होवें तो उस वर्ष श्रावण से चार मास तक अच्छी वर्षा होती है।

३७६-३७७-आषाढ शुक्ला द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी को आकाश बादलों से घिरा हुआ रहे, पूर्वोत्तर की अर्थात् ईशान कोण की वायु चले तो वृष्टि समझनी चाहिये। अर्थात् या तो अतिवृष्टि वा सुवृष्टि होती है जिससे सुभिक्ष वा भाव स्थिर रहता है यदि उक्त दिन वर्षा और बादल न हों और नैऋत्य कोण की हवा चले तो दुर्भिक्ष समझना चाहिये।

३७८-आषाढ शुक्ला तृतीया और पंचमी को दक्षिण तथा पश्चिम की हवा चलने से धान्य नष्ट होता है और दुर्भिक्ष पड़ता है।

३७९-आषाढ शुक्ला तृतीया और पंचमी को पूर्व-उत्तर की हवा से धान्य की पैदायश और वृष्टि उत्तम होती है।

३८०से३८३-आषाढशुक्ला चतुर्थी और पंचमी को पूर्व की बिजली और हवा के होने से सुभिक्ष होता है, अग्नि कोण की बिजली और हवा से अनावृष्टि, दक्षिण की से व्याधि और मृत्यु, नैऋत्य कोण की से सात प्रकार की ईतियों* का कष्ट, पश्चिम की से धान्य, वायव्य कोण की से साधारण धान्य, उत्तर की से अधिक सम्पत्ति और ईशान कोण की बिजली और हवा से अच्छी सुख सम्पत्ति तथा वृष्टि होती है। चौतरफ की वायु से कहीं कहीं वर्षा होती है। तथा बिजली जिधर चमकती हो यदि उसके विरुद्ध दिशा की हवा चले तो ईतियों का प्रायः दुःख रहता है।

३८४-यदि शुभ हवा के बहते हुए भूकंप होजावे तो धान्य तो अवश्य पैदा होता है किन्तु उपद्रव अधिक होते हैं।

३८५-यदि वायु प्रथम तो अशुभ अर्थात आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य का चले और पीछे शुभ अर्थात् पूर्व, ईशान और उत्तर का चलने लगजाय तो सुवृष्टि ही होती है किन्तु धान्य सम्पत्ति नहीं होती।

---

* अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयः स्मृताः।

३८६-आषाढ शुक्ला चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमी की सन्ध्या के समय पीले बादल होने से काले बादल होकर वर्षा होती है।

३८७-आषाढ शुक्ला षष्ठी को वर्षा होने से श्रावण में वर्षा होती है अन्यथा उक्त मास में अवृष्टि समझनी चाहिये।

३८८-आषाढ शुक्ला सप्तमी को वृष्टि होने से भाद्रपद में अच्छी वर्षा होती है और अवृष्टि होने से उस मास में भी अनावृष्टि ही रहती है।

३८९-आषाढ शुक्ला अष्टमी को बिजली, गर्जना और वर्षा होने से आश्विन में अच्छी वर्षा होती है। अवृष्टि होने से उक्त मास में भी वृष्टि का अभाव ही रहता है।

३९०-आषाढ शुक्ला अष्टमी को पूर्व और दक्षिण की हवासे दुर्भिक्ष और पश्चिम तथा उत्तर की वायु से सुभिक्ष होता है।

३९१-आषाढ शुक्ला पञ्चमी से चार दिन तक जितने बादल हों उतनी ही अधिक वर्षा उस वर्षाकाल में समझनी चाहिए।

## स्वाति योगः।

३९२-बारहों महीनों में स्वाति के योगों का परीक्षण होता है। आषाढ में विशेषरूप से फलों के पाक की परीक्षा होती है।

३९३-आषाढ शुक्ला नवमी तिथि को शनिवार और अनुराधा नक्षत्र होने से कहीं तो कुछ धान्य पैदा अथवा महँगा हो जाता है; और कहीं पर दुर्भिक्ष ही रहता है।

३९४-आषाढ शुक्ला नवमी को बिजलियाँ हों और बादलों का घटाटोप हो तथा कुछ जल भी बरस जावे तो उस वर्ष अतिवृष्टि होती है।

३९५-आषाढ शुक्ला नवमी के रोज बिजलियाँ और घटाटोप का होना श्रेष्ठ है। यदि उक्त दिन बिजलियाँ तथा बादल भी न हों तो अवृष्टि से दुर्भिक्ष समझ लेना चाहिये।

३९६-आषाढ शुक्ला नवमी को अत्यन्त ( मूसलाधार ) वर्षा होने से उस वर्ष अत्यन्त वृष्टि और अत्यल्प ही धान्य पैदा होगा।

३९७-वृष्टि दुर्बल हो अर्थात् वेग से हुई हो, किन्तु अधिक मात्रा में हो चुकी हो तो धान्य बहुत पैदा होता है। यदि किसी कारण केवल बूँदमात्र अथवा अतिवृष्टि होजावे तो धान्यनाश समझना चाहिये।

३९८-आषाढ शुक्ला नवमी को सूर्यास्त के समय निर्मल ( बिना बादल ) आकाश रहने से दुर्भिक्ष होता है। वृष्टि विशेष में उत्पन्न होने वाला यह फल अनूप* देश में समझना चाहिये।

३९९-आषाढ शुक्ला नवमी दशमी को अधिक गर्जना होने से अतिवृष्टि होती है। कई ऋषियों का मत है कि अधिक गर्जना से दुर्भिक्ष होजाता है।

वास्तव में दोनों ही मत ठीक हैं, क्योंकि प्रथम मत वालों के विज्ञान से अधिक वर्षा होने के कारण दुर्भिक्ष होना ही सिद्ध होता है।

४००-आषाढ शुक्ला नवमी, दशमी की रात्रि में यदि चन्द्रमा बादलों से आच्छादित हो तो शीतकाल में अच्छी वर्षा होती है।

४०१-आषाढ शुक्ला नवमी और दशमी को वृष्टि का होना शुभ है यदि उक्त दिनों में वृष्टि के बिना वायु का वेग होजावे तो अवश्य दुर्भिक्ष होता है।

४०२-४०३-आषाढ शुक्ला नवमी को सूर्य के उदयास्त काल में तो बादल न हों और मध्याह्न में बादल हों तो चातुर्मास्य में अच्छी वृष्टि होती है। किन्तु यदि सूर्य के उदयास्त के समय बादल हों और मध्याह्न में आकाश साफ रहै तो कुछ थोड़ी सी वृष्टि समझनी चाहिये।

४०४-यदि उक्त दिन सूर्य के उदय, अस्त और मध्याह्न काल में मेघ घिरा हुआ रहै तो वर्षाऋतु में वृष्टि होती है। और यदि तीनों काल में सूर्य साफ ही रहै तो वर्षा का अभाव समझना।

४०५-इसी दिन यदि सूर्य उदयकाल में तो स्वच्छ रहै और मध्याह्न तथा अस्तकाल में मेघाच्छादित रहै तो वर्षा का अभाव रहता है और बड़ी नदी के अतिरिक्त कहीं जल नहीं मिलता।

४०६-किसी का मत है कि आषाढ शुक्ला नवमी को सूर्य का उदय, अस्त और मध्याह्न काल में मेघाच्छादित रहना अशुभ है।

* देश तीन प्रकार के होते हैं अनूप, जांगल और मरु। २१ हाथ तक जहाँ जल निकल आवे वह अनूप कहलाता है।

४०७-आषाढ शुक्लपक्ष में पूर्वाह्न और अपराह्न काल में स्वाति बरस जावे तो आगे अच्छी वर्षा होती है और मध्याह्न में बरसने से कीट, सर्प आदि की सृष्टि अधिक होती है।

४०८-रात्रि के पूर्व भाग में स्वाती बरस जावे तो सब तरह के धान्य अधिक पैदा होते हैं और यदि मध्य रात्रि में स्वाती बरस जावे तो उड़द, मूंग और तिल की ही विशेष उत्पत्ति होती है।

४०९-रात्रि के आखिरी भाग में वर्षा होवे तो गरमी की फसल अच्छी होती है, शरद् की फसल ठीक नहीं होती। दिन रात ही यदि वर्षा होती रहै तो चातुर्मास्य में भी निरन्तर वर्षा होती है।

४१०-जो फल रोहिणी योग में कहा गया है वह स्वाती के योग में भी समझ लेना चाहिये। रोहिणी के योग में वायु को देखकर चौमासे में वर्षा कही गई वही यहाँ भी समझना।

४११-चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रों में खूब वृष्टि रहै तो समय पर वर्षा का अभाव रहता है और दुर्भिक्ष का लक्षण रहता है। क्योंकि चित्रा में वायु का आरंभ, स्वाती में वायु की प्रधानता और विशाखा में वायु की हीनता रहती है।

## इति स्वाति परीक्षा।

दशमी का योग कहने के पश्चात् अब क्रमागत एकादशी का फल कहते हैं।

४१२-आषाढ शुक्ला एकादशी के दिन शनि, मंगल अथवा रविवार हो और तेज हवा चले तो अन्न महँगा होजाता है।

४१३-यदि आषाढ शुक्ला एकादशी शनि, रवि और मंगलवार के साथ तिथि सम्पूर्ण अर्थात् ६० घड़ी न हो तो दुर्भिक्ष समझना चाहिये।

४१४-आषाढ शुक्ला एकादशी को वृष्टि होने से भाद्रपद कृष्ण में वर्षा होती है।

४१५-आषाढ शुक्ला द्वादशी को प्रचण्ड हवा चले तो यत्न करने पर कठिनता से वृष्टि हो। इसी प्रकार प्रतिपदा का भी फल समझना।

४१६-आषाढ शुक्ला चतुर्दशी को वर्षा होने से श्रावण कृष्णा एकादशी से श्रावण शुक्ला चतुर्थी तक (९ दिन) वर्षा होती है।

## आषाँढी-परीक्षा । *

४१७-४१८-आषाढ शुक्ला पूर्णिमा के योग यदि सभी खराब होजायँ तो गर्भ को पुष्ट करने वाले सब योग नष्ट होजाते हैं । और यदि इस दिन के योग अच्छे होजायँ तो गर्भ के नाश करने वाले कुयोग भी सुयोग बन जाते हैं । इसीलिये इसकी विशेष परीक्षा लिखी जाती है ।

४१९-आषाढी पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण होवे तो साढेचार मास तक सब चीजें महँगी रहती हैं ।

४२०-आषाढी पूर्णिमा में यदि बादलों के कारण चन्द्रमा दिखाई न दे तो वर्षा अच्छी होती है और यदि चन्द्रमा स्वच्छ दृष्टिगत होवे तो भयंकर अनावृष्टि समझनी चाहिये ।

४२१-जिस देश के अन्दर इस पूर्णिमा में चन्द्रमा निर्बल अथवा मण्डल युक्त दिखाई देता हो उस देश में घोर दुर्भिक्ष होता है ।

४२२-आषाढी पूर्णिमा को जितनी घड़ी मूल हो उतना ही दुर्भिक्ष समझना । अर्थात् इस दिन जितनी घड़ी मूल रहेगा उन घड़ियों की तिहाई संख्या के विस्वा का दुर्भिक्ष होगा ।

४२३-आषाढी पूर्णिमा में मूल अथवा उत्तराषाढ नक्षत्र के होने से साल भर संपूर्ण देश में धान्य मध्यम रहता है ।

४२४-आषाढी पूर्णिमा में पूर्वाषाढ नक्षत्र के होने से साल भर तक खूब धान्य पैदा होता है। सालभर प्रजा में सुख की वृद्धि होती है और वर्षा शुभ होती है ।

४२५-आषाढ शुक्ला चतुर्दशी में पूर्णिमा की घड़ियाँ अधिक हो तो महँगाई रहती है अथवा भाव स्थिर रहता है, समान होने से समानता रहती है और यदि चतुर्दशी में पूर्णिमा की घड़िगें का सर्वथा ही अभाव हो तो धान्य प्राप्ति का भी सर्वथा अभाव रहता है । अर्थात् चतुर्दशी में पूर्णिमा की घड़ियाँ जितनी अधिक हों उतना ही अच्छा है ।

४२६-आषाढी पूर्णिमा की वृद्धि अर्थात् इस तिथि के दो होने से एकमास तक मूल्य स्थिर रहता है पीछे अन्न का भाव तेज होजाता है ।

---

* आषाढ शुक्ला पूर्णिमा की परीक्षा को आषाढी-परीक्षा कहते हैं ।

४२७-४२८-आषाढी पूर्णिमा के दिन यदि यह तिथि ६० घड़ी की हो तो सालभर शुभ ही होता है, ३० घड़ी हो तो ६ मास और १५ घड़ी हो तो तीन मास शुभ होते हैं । इससे भी यदि कम हो तो दुःख ही समझना, किन्तु वायु और बादलों के योग से फल कुछ घट बढ जाता है ।

४२९-आषाढी पूर्णिमा का परिमाण ६० घड़ी हो तो उसमें पाँच पाँच घड़ी के १२ विभाग करके एक एक विभाग के अनुसार एक एक मास का फल समझना चाहिये ।

४३०-बारह भागों में से जिस भाग की रात्रि में चन्द्रमा अति निर्मल दिखाई देता हो उस भाग सम्बन्धी मास के जो गर्भ होवे वह उत्पातों से निश्चय नष्ट होजाते हैं ।

४३१-किसी का मत है कि १२ भागों में से जिस भाग में आकाश स्वच्छ दिखाई देता हो उस भाग सम्बन्धी मास में वृष्टि का नाश अथवा अल्पवृष्टि वा वृष्टि के द्वारा हानि समझनी चाहिये ।

४३२-साठ (६०) घड़ी की आषाढी पूर्णिमा के १२ भागों में जिस भाग में बदल रहै और पूर्व तथा उत्तर की वायु चले तो उस भाग सम्बन्धी मास में वृष्टि होती है । यह निर्णय सभी का है।

४३३-आषाढी पूर्णिमा के पहिले प्रहर में बादलों के होने से और पूर्व एवं उत्तर की वायु चलने से आद्यमास ( कार्त्तिक ) में अत्यन्त उपयुक्त वर्षा होती है ।

४३४-आषाढी पूर्णिमा को रातभर बादल रहैं, उत्तर और पूर्व की हवा चले तो उस वर्ष अन्नकण मोटे पैदा हों और चातुर्मास्य में भी अच्छी वर्षा हो ।

४३५-आषाढी पूर्णिमा को यदि वर्षा हुई न हो, पूरब और उत्तर की हवा न चली हो और कुछ बादल भी न हुए हों तो वह वर्ष सर्वथा खराब समझलेना चाहिये ।

४३६-हाँ यदि इस पूर्णिमा की रात्रि में चौतरफी हवा चल जाय तो वर्षा आदि शुभ शकुनों के न होने पर भी वह वर्ष शुभ ही समझलेना चाहिये ।

४३७-आषाढी पूर्णिमा में बादल न भी हुए हों और वायु पूर्व और उत्तर की चलती हो तो ढाई घड़ी के तुल्य २४ विभागों में, जिस विभाग में वर्षा होती है, उसी उसी विभाग के अनुरूप आधे आधे मासों में वृष्टि समझनी चाहिये ।

४३८–इस पूर्णिमा में बादल न भी हो, किन्तु वायु उत्तर और पूर्व की चलती हो तो २॥ घड़ी के जिस भाग में वर्षा होती है उसी के अनुसार मास के पक्ष में अवश्य वृष्टि होती है ।

४३६–यदि आषाढी पूर्णिमा को ८ प्रहर पूर्व दिशा की हवा गर्भ के चिन्ह रूप में चलती रहे तो शीतकाल में होने वाले गर्भों का नाश नहीं होता ।

अब इस पूर्णिमा की रातदिन वायु चलने का फल लिखते हैः—

४४०–आषाढी पूर्णिमा को रातदिन पूर्व की हवा चलने से अच्छी वर्षा होती है किन्तु मरुस्थल ( मारवाड ) और गुर्जर ( गुजरात ) देशों में दुर्भिक्ष होता है ।

४४१–आषाढी पूर्णिमा को रातदिन अग्निकोण की हवा से अग्नि भय, अल्पवृष्टि और सर्वत्र महँगाई रहती है और मारवाड की तो बडी दुर्दशा होती है ।

४४२–इसी पूर्णिमा को दक्षिण की हवा चलने से अनावृष्टि, प्रजा को पीड़ा और धान्य की महँगाई रहती । नैऋत्य कोण की से अनावृष्टि और कठोर दुर्भिक्ष पड़ता है और महाभय होता है ।

४४३–पश्चिमी वायु से महावृष्टि और धान्य की उत्पत्ति मध्यम होती है । वायव्य कोण की वायु से अनावृष्टि और वायु के दोष से देश की दुर्दशा होती है ।

४४४–उत्तरी वायु से भी महावृष्टि होती है और ईशान कोण की वायु से वर्षा अच्छी होती है । ऊर्ध्व वायु से दुर्भिक्ष और तेज हवा से वर्षा का नाश समझना चाहिये ।

४४५–आषाढी पूर्णिमा के दिन पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर से क्रमशः वायु चले तो अल्पवृष्टि होगी । और यदि पूर्व उत्तर, पश्चिम और दक्षिण के क्रम से वायु चले तो सुभिक्ष और क्षेम होगा ।

४४६–यदि चारों ओर की वायु एक दूसरी हवा को रोकती हुई चले तो खण्डवृष्टि और धान्य तथा तृण ( घास ) का नाश होगा ।

किसी वायु के रोकने से कैसा फल मिलता है, यह क्रम से लिखते हैः—

४४७–अनिष्ट वायु अच्छी वायु को रोक लेता है, तो जल नहीं बरसता और यदि अच्छी वायु अनिष्ट वायु को रोक लेता है तो अच्छी वर्षा होती है ।

४४८-दक्षिण की वायु यदि पूर्व की वायु को नष्ट करती हो तो अनावृष्टि समझना। यदि वायु रुक जावे तो श्रावण, भाद्र में पर्याप्त वर्षा होगी।

दिनरात की वायु का लक्षण लिखने के अनन्तर अब केवल सूर्यास्त काल की वायु की परीक्षा लिखते हैं—

४४६-अमावास्या को गिनकर ठीक उसके १६ वें दिन सायंकाल के समय हवा और बादलों की परीक्षा करके सालभर का शुभा शुभ समझना चाहिये।

४५०-आषाढी पूर्णिमा को सूर्य जब आधा अस्त होजाय तब वायु की परीक्षा करे। उस समय यदि पूर्व, ईशान अथवा उत्तर की वायु चले तो शुभ समय समझना चाहिये।

४५१-सूर्य के उसी अर्धास्त के समय यदि अग्निकोण, नैऋत्यकोण वा वायव्यकोण की वायु चले तो दुर्भिक्ष होता है। पश्चिम और दक्षिण की हवा चले तो आधा समय शुभ और आधा समय अशुभ निकलता है।

४५२-किसी का मत है कि आषाढी पूर्णिमा को पूर्व की वायु से सुभिक्ष, अग्निकोण की से गर्मी, दक्षिण की से वृष्टि, नैऋत्य की से अल्पवृष्टि, पश्चिम की से सम ( साधारण ) वृष्टि, वायव्य की से उत्तम वर्षा, उत्तर की से बहुत वायु युक्त वर्षा और ईशानकोण की वायु चलने से शुभ वृष्टि होती है।

४५३-आषाढ पूर्णिमा को यदि पूर्व और उत्तर की हवा न चली हो और बादल तथा जल भी न गिरा हो तो चारों ओर दुर्भिक्ष ही समझ लेना चाहिये।

४५४-आषाढी पूर्णिमा का यदि बिजली, गर्जना और वर्षा होजाय तो दुर्भिक्ष के जो लक्षण पहिले हुए हों वे नष्ट होजाते हैं और सर्वत्र आनन्द ही होता है।

इति आषाढ पूर्णिमा परीक्षा।

क्रमागत अब आषाढ कृष्ण ( आज कल के हिसाब से श्रावण कृष्ण ) की परीक्षा लिखते हैं—

४५५-श्रवण और अषाढ़ (पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़) नक्षत्रों में गुरु, बुध, भृगु और चन्द्रवार के होने से सुभिक्ष और रवि, भौम, शनिवार के होने से दुर्भिक्ष आदि अशुभ फल मिलते हैं।

४५६-आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को पूर्वभाद्रपदनक्षत्र के होने पर यदि गर्जना के साथ वर्षा होजाय तो वर्षाऋतु उत्तम समझनी और यही फल पंचमी का समझना चाहिये।

४५७-आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को यदि सूर्य का उदय बादलों में हो या बिजली अथवा गर्जना हो रही हो तो तीन मास तक वर्षा होती है।

४५८-आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को रातदिन वर्षा होते रहने से दो मास ही केवल वर्षा होती है इसके पश्चात् वह नष्ट होजाती है।

४५९-आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को सूर्य के अस्त होने पर यदि न बादल हुए हो और न जल बरसा हो तो उस वर्ष में वर्षा कष्ट से होती है।

४६०-आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी में यदि तुषार ( पाला ) भी पड़ जाय तो भी जल का क्लेश नहीं रहता और सब शुभ ही होता है।

४६१-आषाढ़ कृष्णपक्ष में अश्विनी नक्षत्र के दिन घनघटा से वृष्टि होजावे तो यह सब दोषों को दूर करके सुभिक्ष करती है।

४६२-आषाढ़ कृष्णा पंचमी में आकाश का निर्मल रहना शुभ है। इस से १८ प्रहर के पश्चात् वर्षा होती है।

४६३-आषाढ़ कृष्णा पंचमी को यदि न बादल हों और न बिजली ही चमकी हो तो उस वर्ष वर्षा का अभाव समझना। खेती करना वृथा ही है।

४६४-आषाढ़ कृष्णा पंचमी को वर्षा होने से चारों महीनों में खूब वृष्टि होती है।

४६५-आषाढ़ कृष्णा पंचमी को वायु न चले अथवा अधिक चले तो प्रबल दुर्भिक्ष होता है।

४६६-आषाढ़ कृष्णा पंचमी को पश्चिमी वायु चले, गर्जना हो और इन्द्रधनुष दीखे तथा वर्षा भी होजावे तो कार्तिक में मँहगाई होजाती है।

४६७-आषाढ़ कृष्णा सप्तमी को शनिवार होने से अच्छी वर्षा होती है और अष्टमी को रविवार के होने से वर्ष शुभ होता है।

४६८-४६९-आषाढ़ कृष्णा अष्टमी को दक्षिण की हवा से दुर्भिक्ष, पूर्व की से खण्डवृष्टि और पश्चिम की हवा से अच्छी वृष्टि होती है। यदि उत्तर की वायु चले तो श्रावण में खूब वर्षा होगी और यदि गर्जना के साथ वृष्टि भी होजावे तो चातुर्मास्य भर में अच्छी वर्षा होगी।

४७०-आषाढ़ कृष्णा अष्टमी को निर्मल आकाश में चन्द्रोदय होने से अनावृष्टि और मेघाच्छादित आकाश में चन्द्रोदय होने से सुवृष्टि होती है।

४७१-आषाढ़ कृष्णा नवमी को गुरु, शुक्र और चन्द्रवार का होना शुभ है और मंगल, रवि अथवा शनिवार का होना दुर्भिक्ष का सूचक है।

४७२-आषाढ़ कृष्णा नवमी को बिजली चमके तो सुभिक्ष और सुवृष्टि हो।

४७३-आषाढ़ में कृत्तिका नक्षत्र के होने पर यदि जल गिर जाय तो पृथ्वी में खूब धन, धान्य और जल होता है।

४७४-आषाढ़ कृष्णा सप्तमी, दशमी और एकादशी को सन्ध्या समय में मेघ के चिह्न मालूम हो तो तीन रात तक वृष्टि समझनी चाहिये।

४७५-आषाढ़ कृष्णा में पाँच रात तक यदि अनवरत कुछ कुछ मेघ बरसता रहै अर्थात् झड़ी लगी रहै तो ज्येष्ठमास में मूलनक्षत्र के बरस जाने पर भी अच्छी वर्षा होती है।

४७६-आषाढ़ कृष्णा एकादशी को सूर्योदय यदि बादलों से आच्छादित हो अथवा उस समय बिजली चमके, गर्जना या वर्षा हो तो सुभिक्ष समझ लेना चाहिये।

## रोहिणी योगः।

४७७-आषाढ़ के कृष्णपक्ष में चन्द्रमा से संगत हुई रोहिणी (तारा) को देखना चाहिए। चन्द्रमा के प्रमाण और वर्ण अर्थात् चन्द्रमा से कितनी दूरी पर तथा किस वर्ण वाली है यह देखकर उसके मार्ग और वायु से उसका आगे लिखे क्रमानुसार फल कहना चाहिये।

४७८-नगर से उत्तर वा पूर्व में भूमि शोध करके वहाँ अच्छा स्थंडिल (वेदी, चबूतरा) बनाकर और उस पर कुशा बिछा कर अग्निहोत्र करता हुआ तीन दिन तक रहै।

४७९-रत्नौषधियों के जल से भरे हुए प्रवाल (आम या अशोक के नये पल्लव) से ढके हुए

और जिनके पेंदे काले न हों ऐसे चार घड़ों को वहाँ चारों दिशाओं में रक्खे।

४८०-जिन चीजों को बोना हो उनके बीजों को महाव्रत ( वैदिक ) मन्त्र के द्वारा उठाकर घड़े में डाल दे और सुवर्ण, कुश तथा जल से हिलादे।

४८१-हिलाने के पश्चात् मरुत्, वरुण और सोम देवताओं के मन्त्रों से हवन करे। रोहिणी योग के अन्त में ऊगे हुए बीजों को देखकर फल का विचार करे। अर्थात् अच्छा अङ्कुरित हो तो फसल अच्छी, थोड़ा अङ्कुरित होने से थोड़ी और अङ्कुरित न होने से फसल भी नहीं पैदा होगी।

४८२-रोहिणी और चन्द्रमा का योग होने पर दिक्साधन की विधि से दिक्साधन ( दिशा का शोधन ) करके वायु परीक्षा करे।

४८३-बारह हाथ के ऊँचे बाँस में काले रंग की चिकनी, सुन्दर, चार हाथ लम्बी ध्वजा लगाओ।

४८४-ध्वजा की लहर बाँई तरफ उठकर चले और दाहिनी ओर को जाय तो शुभ फल समझो और दाहिनी ओर से उठकर चले और बाँई तरफ को जाय तो अशुभ समझना चाहिये। जिधर को ध्वजा की रुख हो उसी दिशा में वायु का बल रहता है।

४८५-पूर्व की वायु से धान्य, अग्निकोण की से गर्मी, दक्षिण की से धान्यनाश, नैऋत्य की से महँगाई, पश्चिम की से वृष्टि, वायव्य की से वायु सहित वर्षा, उत्तर की से सुवृष्टि और ईशानकोण की वायु चलने से कल्याण होता है।

४८६-रोहिणी में वायु के योग से चातुर्मास्य की परीक्षा की जाती है। आठों प्रहरो में चातुर्मास्य आठ पक्षों की कल्पना करनी चाहिये और एक एक प्रहर के पन्द्रहवें भाग अर्थात् आधी आधी घड़ी के विभाग से एक एक दिन के फल को समझना चाहिये।

४८७-जिस दिशा से मेघ उठकर जारहे हों उसी दिशा की वायु समझनी चाहिये और उनका फल भी उसी वायु के समान समझना चाहिये।

४८८-बादल कई प्रकार के होते हैं-कहीं श्वेत, कहीं कृष्ण, कहीं दोनों रंग के, कहीं जिनके उदर और पीठ टेढ़े मेढ़े हैं ऐसे सर्पाकार मेघ होते हैं।

४८६-कहीं सूर्य की किरणों से रंगे हुए प्रान्त भागवाले, कहीं कमल के मध्य भाग के सदृश कहीं केसर, किंशुक और भौंरों के समान विचित्र वर्षा के मेघ होते हैं।

४६०-कहीं काले रंग के, कहीं बिजली से घिरे हुए, कहीं इन्द्रधनुष से युक्त और कहीं काजल के पहाड़ के समान मेघ होते हैं।

४६१- सन्ध्या के समय आकाश के कुछ रंग जाने पर भिन्न भिन्न स्थान में विद्यमान मेघ कहीं इन्दीवर ( नीलकमल ) समान श्याम रंग के, कहीं मोती तथा वर्फ के समान श्वेत शोभित होते हैं।

४६२-कहीं पर तो बादल उन हाथियों के समान शोभित होते हैं जिनके कक्षभाग ( कोंख ) में बिजली के समान सुवर्ण मौजूद हैं, शुण्डादण्ड से जो शोभित हैं और जिनके मण्डस्थल बह रहे हैं।

४६३-४६४-जिनका एक अंग ( भाग ) काला है, आकाश में फैलकर जो दिगन्तों में फैले हुए हैं, जिनमें मन्दगर्जना होरही है, भूमि पर लटके हुए जल गिरा रहे हैं, इस प्रकार विचित्र बादलों के समूह यदि दो या तीन दिन आकाश में छाये हुए रहें तो वृष्टि अवश्य होती है।

४६५-यदि शब्द-शून्य, रूखे, पतले, वायु द्वारा छिन्न भिन्न भाग वाले, ऊँट, मर्कट, काक आदि दुष्ट जीवों की आकृति वाले बादल हों तो वर्षा नहीं होगी।

४६६-यदि रोहिणी के दक्षिणी भाग से चन्द्रमा की गति हो तो दुःख होता है और रोहिणी के उत्तर भाग से चन्द्रमा की गति हो तो खूब वर्षा होती है।

४६७-चन्द्रमा यदि रोहिणी के उत्तर भाग से रोहिणी के स्थान को स्पर्श करे तो वृष्टि विधायक होता हुआ भी वह अनेक उपद्रवों को करता है।

४६८-चन्द्रमा यदि रोहिणी के शकट को भेद कर जावे तो घोर अनावृष्टि होती है और पृथ्वी पर दुर्भिक्ष पड़ता है।

४६६-यदि रोहिणी की गति चन्द्रमा के पीछे हो तो कामातुर स्त्रियाँ विशेषतः पुरुषों के वश में रहती हैं।

५००-अथवा चन्द्रमा की गति रोहिणी के पीछे हो तो कामुक पुरुष स्त्रियों के वश में होजाते हैं।

५०१–उदयकाल में चन्द्रमा यदि रोहिणी से आग्नेयकोण में रहै तो आपत्तियाँ होती हैं। इसी तरह अस्तकाल में चन्द्रमा रोहिणी से नैऋत्य में अस्त होवे तो छः प्रकार की ईतियों के द्वारा धान्य का नाश होता है।

५०२–चन्द्रमा यदि रोहिणी से वायव्यकोंण में रहता हुआ अस्त होवे तो धान्य-वृद्धि अच्छी होती है। इसी प्रकार उदयकाल में चन्द्रमा यदि रोहिणी से ईशानकोण में रहै तो भी धान्य-वृद्धि आदि नाना संपत्तियाँ पैदा होती हैं।

५०३–चन्द्रमा यदि रोहिणीतारे को ताडना ( अर्थात् अपने प्रकाश से रोहिणीतारे का अभिभव करता हो तो ) इससे बड़ा भय समझना। किसी स्त्री के द्वारा राजा की,मृत्यु होती है।

५०४–रोहिणी से युक्त चन्द्रमा यदि मेघों के कारण न दिखाई दे तो धान्य भी बहुत होता है, जल भी खूब बरसता है किन्तु पृथ्वी पर रोग अधिक फैलता है।

५०५–आषाढ़ कृष्ण एकादशी को रोहिणीनक्षत्र के होने पर यदि वर्षा होजावे तो हरि के उठने तक अर्थात् कार्त्तिक शुक्ला ( देव प्रबोधिनी ) एकादशी तक वृष्टि होती रहती है।

५०६–पराशर महर्षि का मत है कि–सूर्य को कर्कराशि पर रहते हुए और चन्द्र को रोहिणी पर रहते हुए यदि वर्षा न हो तो दुर्भिक्ष होता है।

५०७–आषाढ़ कृष्णा एकादशी को कृत्तिका होने से समान ( साधारण ) फल, रोहिणी-नक्षत्र होने से सुभिक्ष और मृगशीर्ष के होने से दुर्भिक्ष होता है।

५०८–आषाढ़ कृष्णा एकादशी में जितनी घड़ी तक रोहिणी रहै उतनी घड़ियों के तिहाई बिस्वे धान्य पैदा होता है।

५०९–आषाढ़ कृष्णा एकादशी को उत्तर की हवा चले और सूर्योदय मेघाच्छन्न हो तो अत्यन्त शुभ समझना चाहिये।

५१०–आषाढ़ कृष्णा एकादशी को यदि कुछ भी वर्षा हो जावे तो यह योग शुभ समझना चाहिए, इससे आगे अच्छी वर्षा होती है।

५११–आषाढ़ कृष्णा एकादशी को अर्धरात्रि के समय यदि गर्जना होजावे तो दुर्भिक्ष और अनावृष्टि समझलेना चाहिये।

५१२-आषाढ़ कृष्णा एकादशी को यदि रोहिणी का योग होजावे तो आकाश के निर्मल होने पर भी, तीव्रता के साथ सूर्य के तपते रहने पर भी और रात को तारा चमकने पर भी अच्छी वर्षा समझलेनी चाहिए। अर्थात् इसमें कुयोग होते हुए भी एक रोहिणी योग से अच्छी वर्षा हो जाती है।

५१३-किसी का मत है कि आषाढ़ कृष्णा दशमी में रोहिणी के योग से सुभिक्ष ही होता है, किन्तु एकादशी में समता और द्वादशी में रोहिणी योग से दुर्भिक्ष होता है।

५१४-त्रयोदशी में रोहिणी के योग से तेज हवा चलती है। कई व्यक्तियों का विचार है कि ज्येष्ठ में कहे हुए रोहिणी के फल को आषाढ़ में भी मानो।

५१५-आषाढ़ में जिस दिन रोहिणी का योग हो उस दिन वायु पूर्वोत्तर की हो तो श्रेष्ठ शकुन समझना चाहिये और उस समय बादल, वृष्टि और बिजली का होना भी वर्षाकाल का शुभ शकुन है।

इति रोहिणी योगः।

एकादशी को रोहिणी का योग लिखने के पश्चात् अब क्रमागत इससे आगे की तिथियों की परीक्षा लिखते हैं।

५१६-आषाढ़ की अमावास्या को वृष्टि हो और बादल छाये रहें तो यह शकुन शुभ है, इससे सुभिक्ष होता है।

५१७-आषाढ़ की अमावास्या में सायंकाल यदि गर्भ के चिन्ह दिखाई देते हों तो शीघ्र ही वर्षा का आगमन समझलेना चाहिये। पूर्व दिशा में धूम्रवर्ण का बादल होकर सूर्यास्त होने पर काला हो जावे तो उसी रात में वर्षा आवेगी।

५१८-इस अमावास्या को उत्तर दिशा में मेघों के समूह हों, किन्तु प्रातःकाल दिशाएँ निर्मल दीखती हों, मध्याह्न में धूप हो तो अर्धरात्रि में वर्षा समझनी चाहिए।

५१९-आषाढ़ी अमावास्या को पुष्य, अश्लेषा अथवा मघा के होने से वह वर्ष मध्यम (साधारण) कहना चाहिये क्योंकि उस वर्ष अधिक वर्षा नहीं होगी।

५२०-आषाढ़ मास में सूर्य संक्रान्ति के दिन यदि मेघ बरस जावे तो उस मास में घोर रोग पैदा होता है और पुनः श्रावण में शान्ति प्राप्त होती है।

## श्रावणः

श्रावणे शुक्लपक्षे तु सिंहसंक्रान्तिसम्भवः ।
समुद्रे पूर्णवृष्टिः स्यादन्यदेशे तु कुत्रचित् ॥ ५२१ ॥
कर्कसंक्रमणे वृष्टिरवृष्टिः सिंहसंक्रमे ।
कर्णधूरं वहेत् कन्या तुले निर्वातवृष्टयः ॥ ५२२ ॥
कर्कप्रवेशसमये सूर्यं पश्यति चेद् गुरुः ।
पूर्णं पादोनदृष्ट्या वा तत्र काले सुवृष्टयः ॥ ५२३ ॥
कर्कसंक्रमकालात्तु यदा दशदिनांतरे ।
समुदेति बुधस्तर्हि सुवृष्टिः श्रावणे सिते ॥ ५२४ ॥
सिंहसंक्रमकालात्तु यदा दश दिनान्तरे ।
समुदेति बुधस्तर्हि तत्र स्युरतिवृष्टयः ॥ ५२५ ॥
अस्तं गच्छति शुक्रश्चेदुदेति श्रवणे बुधः ।
तदा भाद्रपदे मासे मेघो नैव प्रवर्षति ॥ ५२६ ॥
कर्के बृहस्पतिः सिंहे शुक्रः स्यान्मंगलस्तुले ।
आषाढकृष्णेऽनावृष्टयै कलहः श्रावणे सिते ॥ ५२७ ॥
अनावृष्टिकरः शुक्रः सिंहे श्रावणशुक्लके ।
अतिवृष्टिकरो वा स्याद् रोगा स्युस्तर्हि कार्तिके॥५२८॥
चतुर्थ्यां श्रावणे शुक्ले भानुरुद्यन्न दृश्यते ।
मेघावरणतस्तर्हि पुष्यार्को नहि वर्षति ॥ ५२९ ॥
पञ्चम्याः श्रावणे शुक्ले वायुः पश्चिमदक्षिणः ।
द्वयहे यदि भवेद्वृष्टिर्दुर्भिक्षं तर्हि जायते ॥ ५३० ॥
श्रावणे शुक्लपञ्चम्यां वृष्टिश्चेदभ्रमेव वा ।
तदा तु चतुरो मासान् वृष्टिर्भवति भूयसी ॥ ५३१ ॥

श्रावणे शुक्लसप्तम्यामुदयास्तमने रवेः ।
मेघच्छन्ने यदि स्यातां तदा वृष्टिर्न चान्यथा ॥५३२॥
श्रावणे शुक्लसप्तम्यामस्तं याते दिवाकरे ।
न वर्षति न वा मेघास्तदानावृष्टिसंभवः ॥ ५३३ ॥
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां सोमे हस्तसमागमे ।
दुर्भिक्षं जायते घोरं निर्जला जलदायिनी ॥ ५३४ ॥
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां यदि स्वाती प्रवर्षति ।
निष्पत्तिः सर्वधान्यानां प्रजाश्च निरुपद्रवाः ॥५३५॥
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां स्वात्यामुदयते रविः ।
यदि वर्षति पर्जन्यस्तदा जलमयी मही ॥ ५३६ ॥
चित्रा-स्वाती-विशाखासु श्रावणे चेन्न वर्षति ।
न च वृष्टिर्न वा सस्यं तद्देशे तर्हि जायते ॥ ५३७ ॥
अष्टम्यां श्रावणे शुक्ले प्रभाते मेघडम्बरम् ।
रविराच्छादितस्तेन महावृष्टिं करिष्यति ॥ ५३८ ॥
चतुर्थी पञ्चमी शुक्ला सप्तमी च चतुर्दशी ।
श्रावणे न विना पूर्णा वृष्टियुक्ताः शुभावहाः ॥५३९॥
दशम्यां श्रावणे सूर्यः सिंहे संक्रमते शनौ ।
तदा जलमयी पृथ्वी पूर्णाः सस्यसमृद्धयः ॥ ५४० ॥
श्रावणे पूर्णिमायां तु श्रवणा चेन्न वर्षति ।
तदा सुभिक्षमादेश्यमित्याहुर्दैवचिन्तकाः ॥ ५४१ ॥
मेघैराच्छादितं चन्द्रं श्रावणी पूर्णिमादिने ।
शुभमाहुः परे त्वाहुर्निरभ्रं निर्मलं शुभम् ॥ ५४२ ॥
श्रावणे पूर्णिमायां तु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
यमुनांते कान्यकुब्जैर्दौर्लभ्यं रसमूलयोः ॥ ५४३ ॥

प्रतिपच्छ्रावणे कृष्णा श्रावणे गुरुवासरे ।
शुभः संवत्सरस्तर्हि सर्वसस्यसमृद्धयः ॥ ५४४ ॥
श्रावणस्य द्वितीयायां यदि चन्द्रो न दृश्यते ।
तदा तेन भवेद् वर्षे सस्यसंपत्तिरुत्तमा ॥ ५४५ ॥
श्रावणस्य तृतीयायां कृष्णे यामे तृतीयके ।
उत्तरस्यां घनैः सौख्यं षष्ठे मासि महार्घता ॥५४६॥
यदि वा श्रावणे कृष्णे चतुर्थी जायते शनौ ।
तदा दुर्भिक्षमादेश्यं देशभंगः प्रजायते ॥ ५४७ ॥
श्रावणे कृष्णसप्तम्यां रोहिणी गुरुणाथवा ।
शुक्रेण शनिनार्केण संयुक्ता यदि दृश्यते ॥ ५४८ ॥
तदा तृतीयमासान्ते यवगोधूमशालयः ।
महार्घा ऐक्षवं हिंगुर्हरिद्राजीरकं तिलम् ॥ ५४९ ॥
यदि तु श्रावणेऽष्टम्यां कृष्णायां रोहिणी भवेत् ।
तदा सुभिक्षमादेश्यं प्रजापि सुखमेधते ॥ ५५० ॥
अमायां श्रावणे भानुवारे चेत्पश्चिमे धनुः ।
तदा सस्यमहार्घत्वं प्रजापीडा च जायते ॥ ५५१ ॥

५२१–श्रावण शुक्लपक्ष में यदि सिंहराशि के ऊपर सूर्य का संक्रमण ( आगमन ) हो तो समुद्र में अर्थात् समुद्र प्रान्त देशों में पूर्ण वर्षा होगी किन्तु अन्य देशों में कहीं कहीं ही वर्षा होगी ।

५२२–कर्क की संक्रान्ति में वर्षा हो और सिंह की संक्रान्ति में वर्षा न हो तो कन्या की संक्रान्ति आने पर वायु रहित वर्षा हो ।

५२३–कर्कराशि पर जब सूर्य का प्रवेश होता हो उस समय वृहस्पति यदि सूर्य को पूर्ण अथवा चौथाई दृष्टि से भी देखता हो तो उस वर्ष अच्छी वृष्टि होती है ।

५२४—कर्कसंक्रान्ति के दिन से १० दिनों के भीतर यदि बुध का उदय होजावे तो श्रावण शुक्ला में अच्छी वृष्टि होती है ।

५२५-इसी तरह सिंहसंक्रान्ति के काल से दश दिनों के भीतर यदि बुध का उदय होजाय तो श्रावण शुक्ला में अच्छी वृष्टि होती है ।

५२६-श्रावण में यदि शुक्र का अस्त और बुध का उदय हो तो भाद्रपद में वर्षा का अभाव समझना चाहिये ।

५२७-कर्कराशि पर बृहस्पति, सिंह राशि पर शुक्र और तुला पर मंगल हो तो आषाढ़ कृष्णा ( श्रावण कृष्णा ) में अनावृष्टि और श्रावण शुक्ल में कलह ( उपद्रव ) होता है ।

५२८-सिंहराशि पर शुक्र के होने से अनावृष्टि होती है, यदि अनावृष्टि न होकर अतिवृष्टि होजावे तो कार्त्तिक में अनेक रोग पैदा होंगे ।

५२९-श्रावण शुक्ला चतुर्थी को उदय होता हुआ सूर्य यदि बादलों के कारण दिखाई न देवे तो पुष्य का सूर्य वर्षा नहीं करेगा ।

५३०-श्रावण शुक्ला पञ्चमी को पश्चिम, दक्षिण अर्थात् नैऋत्यकोण की हवा चले और दो दिन तक वर्षा होती रहै तो दुर्भिक्ष समझना चाहिये ।

५३१-श्रावण शुक्ला पञ्चमी को वृष्टि अथवा केवल बादल ही रहै तो चार मास अर्थात् श्रावण से कार्त्तिक तक खूब वर्षा समझनी चाहिए ।

५३२-श्रावण शुक्ला सप्तमी को ( स्वातिनक्षत्र पर ) सूर्य के उदयास्त मेघाच्छन्न रहै तभी वृष्टि की आशा रखनी चाहिये, अन्यथा नहीं ।

५३३-श्रावण शुक्ला सप्तमी को ( स्वातिनक्षत्र पर ) सूर्यास्त होने पर यदि न मेघ बरसे और न बादल ही हुए हों तो अनावृष्टि समझ लेनी चाहिये । यह भी किसी का मत है ।

५३४-श्रावण शुक्ला सप्तमी को चन्द्रमा यदि हस्त नक्षत्र पर आवे तो घोर दुर्भिक्ष होता है । जल दायिनी तिथि होते हुए भी जल नहीं बरसता ।

५३५-श्रावण शुक्ला सप्तमी को स्वाति नक्षत्र के होने पर वर्षा होने से सब धान्यों की उत्पत्ति और प्रजा को शान्ति प्राप्त होती है ।

५३६-श्रावण शुक्ला सप्तमी को स्वाति नक्षत्र के रहते हुए यदि सूर्योदय होवे और वर्षा भी हो तो पृथ्वी पर जल ही जल दृष्टि में आता है।

५३७-श्रावण में चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्रों में वर्षा न होने से उन देशों में न वृष्टि और न धान्योत्पत्ति होती है।

५३८-श्रावण शुक्ला अष्टमी को प्रातःकाल के समय मेघ छाये हुए हों और सूर्य ढका हुआ हो तो महावृष्टि होती है।

५३९-श्रावण के शुक्लपक्ष की चतुर्थी, पञ्चमी, सप्तमी और चतुर्दशी को यदि वर्षा हो तो शुभ शकुन समझने चाहिये, किन्तु पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र नहीं होना चाहिये।

५४०-श्रावण शुक्ला दशमी को शनिवार के होने पर यदि सूर्य सिंहराशि पर आवे तो पृथ्वी पर खूब वर्षा और धान्य की समृद्धि होती है।

५४१-श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को श्रवण नक्षत्र हो, किन्तु वर्षा न हुई हो तो सुभिक्ष ही समझना चाहिये। यह ज्योतिषियों का विचार है।

५४२-श्रावण की पूर्णिमा को चन्द्रमा यदि बादलों से ढका रहे तो शुभ समझना, किन्तु कई कहते हैं कि बादल रहित आकाश का स्वच्छ रहना ही शुभ है।

५४३-श्रावण की पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण होने से यमुना तक कान्यकुब्ज देश में अर्थात् कानपुर के जिले, मथुरा प्रयाग के बीच में रस और मूल ( कन्द ) नहीं मिलते।

श्रावण शुक्ला की परीक्षा लिखकर अब श्रावण कृष्णपक्ष की ( आज कल के व्यवहार से भाद्र कृष्ण की परीक्षा लिखते हैं—

५४४-जिस वर्ष में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को श्रवण नक्षत्र और गुरुवार हो, वह संवत्सर शुभ समझना चाहिये। उस वर्ष सब धान्य पैदा होते हैं।

५४५-श्रावण कृष्णा द्वितीया को चन्द्रमा के न दीखने से वर्ष शुभ समझा जाता है और धान्य अच्छा पैदा होता है।

५४६-श्रावण कृष्णा तृतीया को तीसरे प्रहर में उत्तर की तरफ बादलों के होने से सुख होता है, किन्तु छठे मास में महँगाई होजाती है।

५४७–श्रावण कृष्णा चतुर्थी को शनिवार के होने से दुर्भिक्ष और देश का नाश समझना चाहिए ।

५४८-५४९-श्रावण कृष्णा सप्तमी को रोहिणी और गुरु, शुक्र, शनि अथवा रविवार के होने से तीसरे महीने के अन्त में जौ, गेहूँ, चावल, गुड़, खांड आदि गन्ने की चीजें, तिल,हींग जीरा और हलदी ये वस्तुएँ महँगी होजाती हैं ।

५५०–श्रावण कृष्णा अष्टमी को यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो सुभिक्ष और प्रजा को सुख प्राप्त होता है ।

५५१-श्रावण कृष्णा अमावास्या को रविवार और पश्चिम दिशा में इन्द्रधनुष हो तो अन्न की महँगाई और प्रजा को पीड़ा की प्राप्ति होती है ।

इति श्रावण मासः ।

## भाद्रः ।

प्रतिपद् सप्तमी भाद्रे द्वादशी च त्रयोदशी ।
पूर्णिमा चासुवारुण्यां श्रितैर्मेघैः प्रवर्षणम् ॥ ५५२ ॥
भाद्रशुक्लद्वितीयायां यदि चन्द्रो न दृश्यते ।
तदा तेन भवेद् वर्षे सस्यसंपत्तिरुत्तमा ॥ ५५३ ॥
भाद्रशुक्लतृतीयायां भौमे चोत्तरफाल्गुनी ।
प्रोन्नतोऽपि घनस्तत्र न च वृष्टिकरी भवेत् ॥ ५५४ ॥
भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां चेद्वाराजीवेन्दुभार्गवाः ।
उत्तराहस्तचित्राभिः सुभिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ ५५५ ॥
शुक्लायां भाद्रपञ्चम्यां स्वातीभं यदि जायते ।
तदा सुभिक्षमादेश्यमित्याहुर्दैवचिन्तकाः ॥ ५५६ ॥
शुक्लायां भाद्रपंचम्यां यदि वृष्टिर्न जायते ।
दुर्योगं तर्हि जानीयाद् दुर्भिक्षं दैवकोपतः ॥ ५५७ ॥

शुक्ले भाद्रपदे षष्ठीमनुराधा भवेद् यदि ।
नक्षत्रांतरदोषेऽपि सुभिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ ५५८ ॥
यदि भाद्रपदे शुक्ले षष्ठयां भवति मैत्रभम् ।
तत्राभ्राणि तडिद्वृष्टिर्धान्यनिष्पत्तिहेतवे ॥ ५५६ ॥
भाद्रषष्ठयां यदा मैत्रे विद्युद्गर्जितवृष्टयः ।
सुभिक्षाय क्षतिर्नास्ति श्रावणे स्वात्यवर्षणात् ॥५६०॥
भाद्रषष्ठयां तु मैत्रेऽपि विद्युद्गर्जितवृष्टयः ।
न भवंति तदा तत्र देशे दुर्भिक्षमादिशेत् ॥ ५६१ ॥
सप्तम्यां भाद्रशुक्लायामनुराधा भवेद् यदि ।
न च वर्षति पर्जन्यस्तदानावृष्टिरुच्यते ॥ ५६२ ॥
चित्रास्वातीविशाखासु शुक्ले भाद्रपदे यदा ।
नातिवर्षति पर्जन्यः प्रावृट् संतिष्ठते तदा ॥ ५६३ ॥
प्रावृट्प्रांतेऽनुराधायां शुक्ले भाद्रपदे यदि ।
स्यादभ्रंगर्जितं विद्युत् सुभिक्षं पूर्णमादिशेत् ॥५६४॥
सप्तम्यां भाद्रमासस्य न विद्युन्न च गर्जितम् ।
न च वृष्टिस्तदा नूनं तत्र दुष्कालसंभवः ॥ ५६५ ॥
मूलचन्द्रार्कसंयुक्ता शुक्ला भाद्रपदेऽष्टमी ।
तदा स्यात् पंचमे मासि शणसूत्रमहार्घता ॥ ५६६ ॥
भाद्रशुक्ले चतुर्थेऽह्नि पंचमे सप्तमेऽष्टमे ।
पूर्णिमायां च गर्भेण सद्यो मेघमहोदयः ॥ ५६७ ॥
पञ्चमी सप्तमी वा स्याद्दिनैरेकार्णवा मही ।
नवम्यां भाद्रमासस्य वृष्टौ दुष्कालसंभवः ॥ ५६८ ॥
भाद्रशुक्लदशम्यां चेन्मूलभं रविवासरे ।
दुर्भिक्षं स्यादथान्यत्र तिथौ मूलरविः शुभः ॥५६६॥

एकादश्यां तु भाद्रस्य सुभिक्षायाभ्रडम्बरः ।
निशि गर्जति चेत्तत्र शलभोपद्रवस्तदा ॥ ५७० ॥
भाद्रस्य पूर्णिमायां तु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
मासद्वयेन तत्र स्याद्दौर्लभ्यं रसमूलयोः ॥ ५७१ ॥
भाद्रकृष्णचतुर्थ्यां चेद्वार्ईलान्यरुणोदये ।
तदा क्षेमाय लोकानां वृष्टिः संजायते शुभा ॥५७२॥
अमा भाद्रपदे मासे शनिवारे भवेद् यदि ।
तदा समर्घता नास्ति क्वचिद् दुर्भिक्षसंभवः ॥५७३॥
प्रतिपत् पंचमी भाद्रेऽमावास्या च त्रयोदशी ।
आसु पूर्वोत्थितैर्मेघैर्वृष्टिः स्यात् पंचयोजना ॥५७४॥
भाद्रे पश्चिमतो वायौ मेघाभावं विनिर्दिशेत् ।
मेघे तु सत्यनेकाहं झञ्झावृष्टिर्भविष्यति ॥ ५७५ ॥
भाद्रे सर्वदिशीनस्तु यदा वहति मारुतः ।
आगत्यागत्य चाक्रम्य गच्छेन्मेघो न वर्षति ॥५७६॥
सिंहार्कदिवसे वृष्टिर्न शुभाय परन्तु चेत् ।
दिनद्वयांतरे वृष्टिर्मेघो वा तर्हि न क्षतिः ॥ ५७७ ॥
भाद्रे वृष्टया चतुर्दश्यां वृष्टया संक्रमणेऽहनि ।
जायन्ते बहवो रोगा आश्विने न शुभं भवेत् ॥५७८॥

५५२-भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा, सप्तमी, द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा के दिन पश्चिम में बादलों के होने से अच्छी वर्षा होती है ।

५५३-भाद्रपद शुक्ला द्वितीया को चन्द्रमा यदि न दीखे तो वर्ष भर में धान्य की अच्छी उत्पत्ति होती है ।

५५४-भाद्रपद शुक्ला तृतीया को मंगलवार और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो तो बड़ी बड़ी घटाएँ भी वर्षा नहीं करेंगी ।

५५५-भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को गुरुवार के होने पर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के होने से, सोमवार के होने पर हस्त नक्षत्र के होने से और भृगुवार के होने पर चित्रा नक्षत्र के होने से निस्सन्देह सुभिक्ष होता है।

५५६-निमित्त ( लक्षण ) शास्त्र जानने वाले कहते हैं कि भाद्रपद शुक्ला पंचमी को स्वाती नक्षत्र के होने से सुभिक्ष समझना चाहिए।

५५७-भाद्र शुक्ला पंचमी को यदि वर्षा न होवे तो यह दुष्ट योग समझना चाहिए। किसी दैव कोप से दुर्भिक्ष पड़ता है।

५५८-भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को अनुराधा नक्षत्र के आजाने से अन्य नक्षत्रों के दोष होने पर भी निस्संदेह सुभिक्ष होता है।

५५९-भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को अनुराधा नक्षत्र हो और वर्षा बिजली तथा खूब बादल भी हों तो धान्य की अधिक उत्पत्ति समझनी चाहिए।

५६०भाद्र शुक्ला षष्ठी को अनुराधा नक्षत्र होने पर बिजली, गर्जना और वर्षा होजावे तो श्रावण के महीने में स्वाती नक्षत्र के बरस जाने पर भी कोई हानि नहीं होती, सुभिक्ष होता ही है।

५६१ किसी का मत है कि भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को अनुराधा नक्षत्र चाहे हो, किन्तु बिजली गर्जना और वर्षा न हुई हो तो उस देश में दुर्भिक्ष ही समझना चाहिये।

५६२-भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को अनुराधा नक्षत्र होने से अनावृष्टि होती है, जल नहीं बरसता।

५६३-भाद्रपद शुक्ला में चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रों के दिन वर्षा न होने से चातुर्मास्य की समाप्ति समझ लेनी चाहिये। अर्थात् वृष्टि की आशा नहीं करनी चाहिये।

५६४-प्रावृट् के अन्त में भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में अनुराधा नक्षत्र के दिन बादल, गर्जना और बिजली हो तो पूर्ण सुभिक्ष कहना चाहिये।

५६५-भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को वर्षा, गर्जना, बिजली और बादल भी न हुए हों तो निश्चय ही कठोर दुर्भिक्ष समझ लेना चाहिये।

५६६-भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को यदि मूलनक्षत्र में चन्द्र और रविवार से युक्तहो तो पाँचवे महीने में सन की चीजें महँगी होजाती हैं।

५६७-भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी, पंचमी, सप्तमी, अष्टमी और पूर्णिमा को गर्भ के लक्षण दिखाई देने से शीघ्र ही मेघ का आगमन समझना चाहिये।

५६८-कुछ दिनों से आरंभ करके पंचमी या सप्तमी तिथि में पृथिवी तक समुद्र की तरह दृष्टि गत होवे और भाद्र शुक्ला नवमी में वृष्टि होजावे तो दुष्काल की आशा करनी चाहिये।

५६९-भाद्रपद शुक्ला दशमी को मूलनक्षत्र और रविवार के योग होने से दुर्भिक्ष होता है। किन्तु यह योग अन्य तिथियों में हो तो सुभिक्ष होता है।

५७०-भाद्रपद शुक्ला एकादशी के दिन बादलों का घिर जाना सुभिक्ष का सूचक है। यदि रात में गर्जना होवे तो इससे टिड्डियों का उत्पात होता है।

५७१-भाद्रपद की पूर्णिमा को यदि चन्द्रग्रहण हो तो दो महीने के पश्चात् रस और मूल दुर्लभ होजाते हैं।

शुक्ल पक्ष की परीक्षा के पश्चात् अब भाद्र कृष्ण ( व्यवहार से आश्विन कृष्ण ) की परीक्षा लिखते हैं—

५७२-भाद्रपद कृष्णा चतुर्थी को सूर्योदय के समय बादलों का होना संसार की कुशलता और वर्षा का शुभ सूचक है।

५७३-भाद्रपद की अमावास्या को शनिवार के होने से सस्ताई नहीं रहती कहीं कहीं पर तो दुर्भिक्ष भी पड़ जाताहै।

५७४-भाद्रपद कृष्णा की प्रतिपदा, पंचमी, त्रयोदशी और अमावास्या को पूर्व दिशा से उठे हुये मेघों से पाँच योजन ( २० कोस ) तक वर्षा होती है।

५७५-भाद्रपद में पश्चिम की वायु चले तो मेघ का अभाव समझना चाहिए कदाचित् वर्षा हो जावे तो अनेक दिनतक प्रचण्ड वायु के साथ वर्षा होती रहेगी।

५७६-भाद्र में यदि चौतरफ़ी वायु चले तो घटा उमड़ उमड़ कर भी योंही चली जाय और वर्षा नहीं करे।

५७७–सिंह की संक्रान्ति के दिन वृष्टि न होना शुभ है यदि दो दिन के पश्चात् बादल या वृष्टि हो जावे तो कोई हानि नहीं।

५७८–भाद्रपद की चतुर्दशी और सूर्य संक्रान्ति के दिन वर्षा होने से नाना रोग पैदा होते हैं और आश्विन में भी शुभ नहीं होता।

इति भाद्रपद मासः।

## आश्विनः।

नापेक्षते गर्भसिद्धिं चतुर्थी पंचमी तिथिः।
ग्रहयोगवशादेवाश्विने वर्षति तच्छुभम् ॥ ५७९ ॥
चतुर्थ्यामपि पञ्चम्यामाश्विने शीघ्रगर्भता।
पंचभिः सप्तभिर्वा स्याद्दिनैरेकार्णवा मही ॥ ५८० ॥
आश्विनस्य चतुर्थ्यां चेदभ्रं स्यादरुणोदये।
तदा क्षेमाय लोकानां शुभा वृष्टिः प्रजायते ॥५८१॥
अष्टम्यां च दशम्यां च प्रतिपद्याश्विने यदि।
दृश्यतेऽभ्रघटा व्योम्नि न चिरात्तर्हि वर्षति ॥५८२॥
आदित्यास्तमने मेघाः पर्वताकारसंनिभाः।
यदि स्युर्जलपातः स्यात्तस्मिन्नेव दिने तदा ॥५८३॥
आश्विनी सप्तमी शुक्लाष्टमी यदि जलान्विता।
तदा तत्र सुभिक्षं स्यादित्याहुर्दैवचिन्तकाः ॥५८४॥
सप्तम्यामाश्विने शुक्ले शनिवारो भवेद्यदि।
श्रवणं च धनिष्ठा च तदा दुर्भिक्षसंभवः ॥ ५८५ ॥
आश्विनस्य त्रयोदश्यां शनिवारो भवेद् यदि।
यदि संक्रमणं तत्र तदा सस्याकुला मही ॥ ५८६ ॥

आश्विने पूर्णिमायां तु यदीन्दुग्रहणं भवेत् ।
प्रयांति सर्वधान्यानि द्विमासांते महार्घताम् ॥५८७॥

दीपोत्सवदिनेऽमायां शनिभौमार्कवासराः ।
स्वातीभं योग आयुष्मान् कालःप्रलयवत्तदा ॥५८८॥

दीपावली त्वमावास्या स्वातीयोगेन दुष्यति ।
गोक्रीडा चेद् विशाखायां जातं सस्यं विनश्यति॥५८९॥

आश्विने शनिवक्रं स्याद् बुधो राश्यन्तरं व्रजेत् ।
शुक्रश्चास्तमनं याति तदान्नाप्लाविता धरा ॥ ५९० ॥

नक्षत्रे वा तिथौ गर्भयोगा उक्ताः शुभाशुभाः ।
यत्र वर्षे शुभाधिक्यं तत्रानन्दः प्रवर्तते ॥ ५९१ ॥

५७९-आश्विन के शुक्लपक्ष की चतुर्थी और पंचमी तिथि गर्भ सिद्धि की परवाह नहीं करती। तात्कालिक ग्रह योग से इन दिनों में जो वर्षा होती हैं, वह शुभ हैं।

५८०-आश्विन शुक्ला चतुर्थी और पंचमी में भी शीघ्र ही गर्भ होजावे तो पाँच सात दिनों में हीं पृथिवी एक समुद्र के समान होजाती है ।

५८१-आश्विन शुक्ला चतुर्थी को सूर्योदय के समय श्वेत बादल होने से संसार के कल्याण के लिये अच्छी वर्षा होती है ।

५८२-आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, अष्टमी और दशमी को आकाश में बादलों की घटा दिखाई देने से तत्काल वृष्टि होती है ।

५८३-आश्विन में सूर्यास्त के समय आकाश में पर्वताकार मेघों के होने से उसी दिन वर्षा आती है।

५८४-आश्विन के शुक्लपक्ष की सप्तमी और अष्टमी यदि जलयुक्त हो तो सुभिक्ष होता है। इस तरह निमित्त शास्त्र के जानने वाले ज्योतिषी कहते हैं।

५८५-आश्विन शुक्ला सप्तमी को शनिवार के आने पर श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र का भी यदि उस दिन योग होजाय तो दुर्भिक्ष की संभावना समझनी चाहिये ।

५८६-आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को शनिवार हो और यदि संक्रान्ति भी हो तो पृथिवी में अन्न खूब पैदा होता है ।

५८७-आश्विन की पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो दो महींने की समाप्ति में सब धान्य महँगे होजाते हैं ।

शुक्लपक्ष के पश्चात् आश्विन कृष्णा (व्यवहार से कार्त्तिक कृष्णा) की परीक्षा लिखते हैं ।

५८८-आश्विन कृष्ण की अमावास्या ( वर्तमान हिसाब से कार्तिक कृष्ण की अमावास्या ) अर्थात् दीपमालिका के दिन शनि, रवि अथवा मंगलवार हो, स्वाती नक्षत्र हो और आयुष्मान् नाम का योग हो तो प्रलय के तुल्य वह काल समझना चाहिए ।

५८९-दीपमालिका की अमावास्या के दिन स्वाती नक्षत्र का होना खराब योग है । गोक्रीड़ा अर्थात् गोवर्धन पूजा विशाखा नक्षत्र में हो तो पैदा हुआ अन्न भी नष्ट होजाता है ।

५९०-आश्विन के महींने में शनैश्चर बक्री हो, बुध अन्य राशि पर जाता हो और शुक्र अस्त हो रहा हो तो पृथिवी में खूब अन्न पैदा होता है ।

५९१-नक्षत्र और तिथि के शुभ और अशुभ गर्भयोग कह चुके हैं । जिस वर्ष में शुभ योग अधिक हों उस वर्ष में आनन्द होता है ।

इति आश्विन मासः ।

## सिंहावलोकः ।

माघे हिमं न पतितं वातो वाति न फाल्गुने ।<br>
चैत्रे नाभ्राणि वैशाखे करकापतनं यदि ॥ ५९२ ॥<br>
ज्यैष्ठे चण्डातपस्तु स्यात्प्रावृट्काले तदागते ।<br>
अतितुच्छा भवेद् वृष्टिरित्याहुर्दैवचिन्तकाः ॥ ५९३ ॥<br>
माघे घनघटा नास्ति चैत्रे वर्षति वारिदः ।<br>
तृतीया नाक्षया गर्जेत्तदानावृष्टिसम्भवः ॥ ५९४ ॥

माघे भवति चेदूष्मा ज्यैष्ठे शैत्यं प्रवर्तते ।
श्रावणे शीतलो वायुस्तदानावृष्टिसम्भवः ॥ ५९५ ॥
न माघे पतितं शीतं ज्येष्ठे मूला न निर्घना ।
नार्द्रायां पतितं तोयं कालो दुष्टस्तदेष्यते ॥ ५९६ ॥
विद्युन्न स्पन्दते चैत्रे वैशाखोपक्रमे जलम् ।
अत्युग्रस्तपति ज्यैष्ठे तदात्यन्तं सुवृष्टयः ॥ ५९७ ॥
शैत्येन कम्पनं चैत्रे वैशाखे करकाभ्रटी ।
ज्यैष्ठे चेन्निर्मलं व्योम तदा वर्षा भविष्यति ॥५९८॥
ऊष्मा पौषे च वैशाखे शैत्यं भवति चेत्तदा ।
वृष्टिः स्यात्पूर्वमाषाढे न तु श्रावणभाद्रयोः ॥५९९॥
चैत्रे सितप्रतिपदि रेवत्यां बहुलं जलम् ।
वैशाखशुक्लप्रतिपद् भरण्यां तृणसम्भवः ॥ ६०० ॥
ज्यैष्ठशुक्लप्रतिपदि मृगे वातः शुभो भवेत् ।
आषाढशुक्लप्रतिपदादितो धान्यसम्भवः ॥ ६०१ ॥
तृतीया त्वक्षया ब्राह्मया ज्यैष्ठी मूलेन युज्यते ।
विजया दशमी श्रुत्वा सुभिक्षायान्यथा क्षतिः ॥६०२॥
ज्यैष्ठे मूला विगलता पूर्वाषाढा न गर्जिता ।
आषाढी मूलपूर्णा चेदवृष्ट्या पीड्यते जगत् ॥६०३॥
श्रावणी कार्तिकी पौषेऽमा तृतीया तु माधवी ।
विष्ण्वग्निनिऋतिब्रह्मवर्जिता न शुभावहाः ॥ ६०४ ॥
सप्तमी पंचमी शुक्ला तृतीया प्रतिपत् क्रमात् ।
माघी च फाल्गुनी चैत्री वैशाखी गर्भतः शुभाः ॥६०५॥
एतासु तिथिषु प्रायो वान्ति वाताः शुभावहाः ।
तदा प्रावृषि वृष्टिः स्यादन्यथा त्वन्यथा भवेत् ॥६०६॥

कार्तिकद्वादशीमार्गदशमी पौषपञ्चमी ।
माघी च सप्तमीत्येताः सिता अभ्रध्रुवा मता ॥६०७॥
वातोऽभ्रं गर्जितं विद्युद् वृष्टिर्वा तत्र जायते ।
वर्षत्येव तदाषाढे श्रावणे भाद्र आश्विने ॥ ६०८ ॥
दीपावल्यामुग्रवायुर्होलिकायान्तु दक्षिणः ।
आषाढ्यां नैऋतः सायं महादुर्भिक्षकारकः ॥ ६०९ ॥
यदि शुक्लत्रयोदश्यां चैत्रवैशाखफाल्गुने ।
धूमिका जायते तर्हि देवस्तत्र न वर्षति ॥ ६१० ॥
आश्विनी कार्तिकी माघी चैत्री ज्यैष्ठी च फाल्गुनी ।
श्रावणी पूर्णिमा सप्त निरभ्राः शुभदायिकाः ॥६११॥
पौषी भाद्री च वैशाखी मार्ग्याषाढी च पूर्णिमा ।
धूमिका मेघविद्युद्भिः शुभवातैः शुभावहा ॥ ६१२ ॥

कार्तिक से आश्विन मास तक के बारहों महीनों के तिथियों की विस्तृत परीक्षा लिखने के अनन्तर अब प्रत्येक मास की खास खास परीक्षा लिखते हैं ।

५९२-५९३-माघ में शीत न पड़े, फाल्गुन में वायु न बहे, चैत्र में बादल न हो, वैशाख मास में ओले गिरें और ज्येष्ठ में प्रचण्ड धूप पड़े तो वर्षाऋतु में बहुत कम वृष्टि होती है ।

५९४-माघ में यदि बादलों की घटा न हो, चैत्र में जल बरसे और अक्षयतृतीया को गर्जना न होवे तो अनावृष्टि होती है ।

५९५-माघ में गरमी पड़े, ज्येष्ठ में शीत पड़े और श्रावण में ठंढी वायु चले तो भी अनावृष्टि होती है ।

५९६-माघ में ठंढ न पड़े, ज्येष्ठ में मूलनक्षत्र पर बादल हों या आर्द्रा में जल न बरसे तो दुष्काल समझना चाहिये ।

५९७-चैत्र में बिजली न चमके, वैशाख के प्रारंभ में जल बरसे और ज्येष्ठ अधिक तपे तो अत्यन्त सुवृष्टि होती है ।

५९८-चैत्र में ठंढ के कारण शरीर काँपने लगे, वैशाख में ओले की झड़ी लगे और ज्येष्ठ में आकाश निर्मल रहै तो समझना चाहिये कि वर्षा अच्छी होगी ।

५९९-पौष में गरमी हो और वैशाख में ठंढ हो तो आषाढ़ में कुछ वृष्टि होजाती है, श्रावण और भाद्रपद में नहीं होती ।

६००-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को रेवती नक्षत्र के होने पर जल अधिक बरसता है, वैशाख शुक्ल प्रतिपदा को भरणी नक्षत्र के होने पर तृण की विशेष उत्पत्ति होती है ।

६०१-ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा को मृगशीर्ष नक्षत्र में वायु का चलना शुभ है । आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को आर्द्रा नक्षत्र के होने से धान्य की उत्पत्ति होती है ।

६०२-अक्षय तृतीया ( वैशाख शुक्ला तृतीया ) को रोहिणी, ज्येष्ठ की पूर्णिमा को मूल और विजयादशमी ( आश्विन शुक्ला दशमी ) को श्रवण नक्षत्र के होने से सुभिक्ष होता है, अन्यथा हानि होती है ।

६०३-ज्येष्ठ के महीने पूर्णिमा में मूलनक्षत्र के गल ( बरस ) जाने से, श्रावण कृष्णा चतुर्दशी को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में गर्जना न होने से, और आषाढ़ की पूर्णिमा में पूरे ६० घड़ी मूल नक्षत्र के होने से संसार को अवृष्टि के कारण कष्ट होता है ।

६०४-श्रावण की पूर्णिमा को श्रवण नक्षत्र के न होने से, कार्तिक की पूर्णिमा को कृत्तिका नक्षत्र के न होने से, पौष की अमावास्या को मूलनक्षत्र के न होने से और वैशाख की तृतीया को रोहिणी नक्षत्र के न होने से अशुभ समय समझा जाता है ।

६०५-माघ शुक्ला सप्तमी, फाल्गुन शुक्ला पंचमी, चैत्र शुक्ला तृतीया और वैशाख शुक्ला प्रतिपदा इन तिथियों में रेवती वा अश्विनी नक्षत्र के होने पर गर्भ लक्षण दिखाई देने से शुभ समय समझा जाता है ।

६०६-इन तिथियों में यदि शुभप्रद वायु ( पूर्व, ऐशान्य और उत्तर के ) बहुधा चलें तो वर्षाकाल में वर्षा होती है, अन्यथा विपरीत फल होता है ।

६०७-कार्तिक शुक्ला द्वादशी, मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी, पौष शुक्ला पञ्चमी और माघ शुक्ला सप्तमी में रेवती वा अश्विनी नक्षत्र के होते हुए बादल होना स्वाभाविक है, यदि बादल न हो तो अनिष्ट समझना चाहिये ।

६०८-इन तिथियों में हवा, बादल, गर्जना, बिजली अथवा वृष्टि होजावे तो आषाढ़ से आश्विन तक के महीनों में उक्त चिह्नों के अनुसार तिथि क्रम से अवश्य ही वर्षा होवे ।

६०९-दीपमालिका को सायंकाल प्रचण्ड वायु का चलना, होलिका को सायंकाल दक्षिण की हवा बहना, और आषाढ़ की पूर्णिमा को सायंकाल नैऋत्य कोण की वायु का चलना महान् दुर्भिक्ष करने वाला होता है ।

६१०-चैत्र, वैशाख और फाल्गुन के शुक्लपक्ष की त्रयोदशियों में धुन्ध छाजावे तो वर्षा का अभाव समझना चाहिये ।

६११-आश्विन, कार्तिक, माघ चैत्र, ज्येष्ठ, फाल्गुन और श्रावण इन सातों मासों की पूर्णिमा यदि बादल के बिना हो तो शुभ फल देने वाली समझनी चाहिये ।

६१२-पौष, भाद्रपद, वैशाख, मार्गशीर्ष और आषाढ़ की पूर्णिमाओं में धुन्ध, मेघ, बिजली और शुभ पवन चले तो शुभ फल समझना चाहिये ।

इति सिंहावलोकः ।

इति चान्द्रनाक्षत्रिकम् ॥

## रविनाक्षत्रिकम् ।

मघाप्रवेशदिवसं त्यक्त्वाऽन्यत्रार्कसंचरे ।
वर्षणं हर्षणं नृणां कर्षणं फलदायकम् ॥ ६१३ ॥
आर्द्राप्रवेशकालेऽपि वर्षणं न शुभावहम् ।
सार्द्धमासं न वृष्टिः स्यात्ततः पश्चात् प्रवर्षति ॥ ६१४ ॥
शुभो नार्द्राप्रवेशोऽर्को नवम्यामष्टमीतिथौ ।
चतुर्थ्यां च तृतीयायां चतुर्दश्यमयोरपि ॥ ६१५ ॥

यमाग्नीशा हि पित्रिन्द्र रत्नोवारि भवासरे ।
शुभो नार्द्रा प्रवेशेऽर्कः शेषभेषु शुभो मतः ॥ ६१६ ॥
दिनान्त्ययामादारभ्य रात्रियामत्रयं शुभम् ।
आर्द्राप्रवेशे सूर्यस्य शेषकालो न शोभनः ॥ ६१७ ॥
शुभो नार्द्रा प्रवेशेऽर्को दिवारात्रौ शुभावहः ।
शनिमंगलसूर्यान्यवारेषु शुभदो मतः ॥ ६१८ ॥
आर्द्राप्रवेशे वृष्टिश्चेत् सार्द्धमासमवर्षणम् ।
रविरार्द्रां जलैर्गच्छन् जलान्नक्षयकारकः ॥ ६१९ ॥
हस्तार्कसंक्रमाद्वर्षा सर्वामीतिं निवारयेत् ।
स्वातीवृष्टिर्मौक्तिकानि निष्पादयति नीरधौ ॥६२०॥
रेवती जलनाशाय सस्यनाशाय चाश्विनी ।
भरणी सर्वनाशाय यदि वर्षेन्न कृत्तिका ॥ ६२१ ॥
पतन्ति कृत्तिकासूर्ये पञ्चषा अपि विन्दवः ।
पूर्वपश्चाद्भवान् दोषान् निरस्य जनयन्तिशम् ॥६२२॥
भवन्ति कृत्तिकासूर्ये यदि चातिप्रवृष्टयः ।
तदा तु मध्यमं वर्षं दुर्भिक्षं वा समादिशेत् ॥ ६२३ ॥
यदि वा कृत्तिकासूर्ये विन्दुपातोऽपि नो भवेत् ।
तदापि मध्यमं वर्षमवर्षं वा समादिशेत् ॥ ६२४ ॥
कृत्तिकायां रवौ वृष्टी रोहिण्यां प्रबलातपः ।
मृगाद्ये वायुसंरोधो मृगान्ते वायुसंचरः ॥ ६२५ ॥
आर्द्रायां विन्दुपातः स्यादप्रचण्डोऽनिलो यदि ।
पुनर्वसौ वायुरोधः सुवृष्टेर्लिंगमिष्यते ॥ ६२६ ॥

न कृत्तिकायां नार्द्रायां त्विन्दुपातो भवेद्यदि ।
न रोहिण्यामातपोष्मा मृगशीर्षे न वायवः ॥ ६२७ ॥
रोहिण्यां वायवो वांति देवो वा तत्र वर्षति ।
मृगशीर्षे त्वातपोष्माथार्द्रायां वांति वायवः ॥ ६२८ ॥
कृत्तिकायामातपोष्मा रोहिण्यां यदि गर्जति ।
एतैर्निमित्तैस्तद्देशे दुर्भिक्षं प्रबलं भवेत् ॥ ६२९ ॥
रोहिण्यर्के न वायुः स्यान्नाभ्रं विद्युन्न गर्जति ।
तादार्द्रायां शुभा वृष्टिर्नक्षत्रेपूत्तरेष्वपि ॥ ६३० ॥
रोहिण्याश्चतुरः पादा नातपन्ति खराः कराः ।
निश्चितं चतुरो मासान् प्रवर्षन्ति पयोधराः ॥ ६३१ ॥
रोहिण्यां यदि वृष्टिः स्याद्बिन्दुपातोऽपि वा भवेत् ।
अवग्रहस्तदावश्यमुत्तरत्र प्रजायते ॥ ६३२ ॥
रोहिण्यर्के विद्युता च प्रतप्ता उन्नता घनाः ।
श्लेषार्के पुनरागत्य वर्षंति न ततः पुरा ॥ ६३३ ॥
रोहिण्यर्के तु वर्षं चेत्ततो द्यौर्याति शून्यताम् ।
द्वासप्ततिदिनान्यत्र संभविष्यत्यवग्रहः ॥ ६३४ ॥
रोहिण्यर्के बिन्दुपातो वृष्टिरप्यशुभं दिशेत् ।
सरित्प्रवाहिका त्वेषा वर्षा नात्र विदूषिता ॥ ६३५ ॥
रोहिण्यर्के त्वनेकाहं विद्युतो वृष्टयो यदि ।
द्वासप्तत्यन्तरेऽपि स्युर्वृष्टयो न त्ववग्रहः ॥ ६३६ ॥
आद्यः पादो जलं हंति द्वासप्ततिदिनानि तु ।
परस्तृणं तृतीयस्तु चतुर्थो याति सागरम् ॥ ६३७ ॥
रोहिणी भानुभोग्येषु त्रयोदशदिनेष्वपि ।
यत्र यत्र भवेद् वृष्टिस्ततोऽवग्रहचिन्तनम् ॥ ६३८ ॥

१— रसैर्नामैर्धवै रावैर्धूलैर्भालैः पलैर्नलैः ।
हरैर्भरैः करैस्तापैरयैर्वृष्टिर्न वासरैः ॥ ६३६ ॥

कृत्तिकार्कस्य तपनाद् रोहिण्यर्कस्य गर्जनात् ।
मृगान्त्यचरणस्तम्भादार्द्रावातात् तृणक्षयः ॥ ६४० ॥

मृगान्त्यचरणे नास्ति वायुर्वर्षति रोहिणी ।
तदा वदंति दैवज्ञा न विद्युन्नापि गर्जितम् ॥ ६४१ ॥

मृगस्य प्रथमे पादे न सञ्चरति मारुतः ।
तदाभ्रं श्रावणे मासि दिवसान् दश गर्जति ॥६४२॥

मृगान्त्यचरणे वायुस्तम्भश्चोष्मा च वर्तते ।
निर्जलाः श्रावणे मासि तदा षोडश वासराः ॥६४३॥

मृगशीर्षे तपतु वा रोहिण्यां वान्तु वायवः ।
आर्द्रायां यदि वृष्टिः स्यात्सर्वानंदः प्रवर्तते ॥ ६४४ ॥

आश्लेषामागतो भानुर्यदि वृष्टिं न मुञ्चति ।
मघादिपञ्चनक्षत्रेष्वसौ दास्यत्यलं जलम् ॥ ६४५ ॥

इत्थं गर्भध्रुवा उक्ता एते द्वादशमासिकाः ।
भवारतिथिसंक्रांतिसंक्रांता वर्षपूरकाः ॥ ६४६ ॥

---

१ इसमें अक्षरों से जिस प्रकार की गणना किई गई है उसका विवरण "निगमबोध" नामक ग्रंथ में कई प्रकार से किया गया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है । तथापि इस श्लोक में समझने के लिये उस क्रम का निदर्शन किया जाता है कि जिस क्रम से यहां संख्या की गणना लीगई है ।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क | ख | ग | घ | ङ | च | छ | ज | झ | ञ |
| ट | ठ | ड | ढ | ण | त | थ | द | ध | न |
| प | फ | ब | भ | म | ० | ० | ० | ० | ० |
| य | र | ल | व | श | ष | स | ह | ० | ० |

"अङ्कानां वामतो गतिः" इस सिद्धान्त के अनुसार "रसैः" इन दो अक्षरों में 'र' से २, 'सै' से ७ = ७२ हुए और "नामैः" इन में 'न' से ० (शुन्य), 'म' से ५ = ५० हुए । इसी प्रकार "धवैरावैः" इत्यादि की भी गणना समझनी चाहिये ।

संपादक ।

नक्षत्रों के साथ सूर्य का अथवा सूर्य के साथ नक्षत्रों का सम्बन्ध होने से जिन जिन महीनों में वृष्टि के विषय की जो परीक्षा किई जाती है, वह इस प्रकरण में लिखी जाती है।

६१३—मघा नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश होने के दिवस को छोडकर अन्य नक्षत्रों में सूर्य के प्रवेश होने पर वर्षा होवे तो मनुष्यों को आनन्द प्राप्त होता है और किसानों का हल चलाना फलदायक होता है।

६१४—आर्द्रा में भी सूर्य के प्रवेशाकाल में वर्षा होना शुभ नहीं है। इससे डेढ़ महीने तक वृष्टि नहीं होती और इसके पश्चात् ही होती है।

६१५—सूर्य का आर्द्रानक्षत्र पर नवमी, अष्टमी, चतुर्थी, तृतीया. चतुर्दशी और अमावास्या में आना शुभ नहीं है।

६१६—भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, मघा, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रों के दिन में आर्द्रा में सूर्य का प्रवेश करना शुभ नहीं है, शेष नक्षत्रों के दिन प्रवेश करना शुभ है।

६१७—दिन के आखिरी प्रहर से प्रारंभ करके रात्रि की तीन प्रहरों में सूर्य का आर्द्रानक्षत्र में प्रवेश करना शुभ है, अन्य समयों में शुभ नहीं।

६१८—किसी का मत है कि-सूर्य का आर्द्रा में प्रवेश करना दिन में शुभ नहीं है, रात्रि में शुभ है। तथा शनि, मंगल और रविवार के अतिरिक्त अन्य वारों में प्रवेश करना शुभ होता है।

६१९—सूर्य के आर्द्रा प्रवेश के दिन वर्षा होने से डेढ़मास के पश्चात् वृष्टि होती है और वर्षा होते हुए यदि आर्द्रा पर सूर्य आवे तो जल और अन्न का नाश होता है।

६२०—हस्त में सूर्य के प्रवेश होने पर वर्षा होने से छः ईतियों का सब कष्ट दूर होता है और स्वाती की वृष्टि से समुद्र में मोती विशेष पैदा होते हैं।

६२१-कृत्तिका के सूर्य में यदि वर्षा न होवे तो रेवती के सूर्य में जल नाश, अश्विनी के सूर्य में धान्य नाश और भरणी के सूर्य में सर्वनाश का भय है।

६२२-वैशाख में कृत्तिका के सूर्य में यदि पाँच छः जल की बूंदें भी गिर जावें तो आगे पीछे के दोषों का नाश होकर शान्ति पैदा करती है।

६२३-कृत्तिका के सूर्य में अतिवृष्टि होने से वर्ष मध्यम (साधारण) समझा जाता है अथवा दुर्भिक्ष होजाता है।

६२४-अथवा कृत्तिका के सूर्य में विन्दुमात्र जल न गिरे तो भी वह वर्ष मध्यम ही होता है, अथवा वर्षा ही नहीं होती।

६२५-६२६-कृत्तिका के सूर्य में कुछ वृष्टि होना, रोहिणी के सूर्य में प्रचण्ड धूप पड़ना मृगशीर्ष के सूर्य के शुरू में हवा का बन्द होना और अन्त में हवा का चलना, आर्द्रा के सूर्य में जल की बूंदें गिरना और मन्द पवन का बहना और पुनर्वसु नक्षत्र के सूर्य में फिर पवन का बन्द होजाना ये सुवृष्टि के चिह्न हैं।

६२७-कृत्तिका और आर्द्रा के सूर्य में जल की बूंदें न गिरें, रोहिणी के सूर्य में धूप की गरमी न हो और मृगशीर्ष के सूर्य में वायु न चले तो उस देश में प्रबल दुर्भिक्ष होता है।

६२८-६२९-इसी प्रकार यदि रोहिणी के सूर्य में तो वायु चले अथवा जल बरस जावे, मृगशीर्ष के सूर्य में भी धूप की गरमी हो, आर्द्रा के सूर्य में हवा चले, कृत्तिका के सूर्य में भी धूप की गरमी हो और रोहिणी के सूर्य में गर्जना होजावे तो इन कारणों से उन उन देशों में प्रबल दुर्भिक्ष होता है।

६३०-यदि रोहिणी के सूर्य में वायु, बिजली, बादल और गर्जना इनमें से कोई भी न हुए होंतो आर्द्रा में तथा आगे के नक्षत्रों में अच्छी वर्षा होती है।

६३१-रोहिणी के सूर्य में रोहिणी के चारों चरणों तक अर्थात संपूर्ण रोहिणी के सूर्य में यदि सूर्य की प्रचण्ड किरणें अर्थात् तेज धूप पड़े तो चारों (चातुर्मास्य के) महीनों में अच्छी वर्षा होगी।

६३२-रोहिणी के सूर्य में वृष्टि होजावे अथवा बूंदमात्र भी होजावे तो आगे वृष्टि रुक जाती है।

६३३-रोहिणी के सूर्य में यदि बिजली के द्वारा बादल तपादियें जावें अर्थात् बिजली और बादल होजावें तो अश्लेषा के सूर्य के बीत जाने पर बादल आकर वर्षा करते हैं। इसके पूर्व नहीं।

६३४-रोहिणी के सूर्य में वर्षा होने से आकाश बादल रहित होजाता है। ७२ दिन तक वर्षा नहीं होती।

६३५-किसी का कहना है कि रोहिणी के सूर्य में वृष्टि होना ही नहीं, बूंद गिरना भी अशुभ है। परन्तु नदी चला देने वाली यदि वर्षा होजावे तो वह अशुभ नहीं होती है।

६३६-रोहिणी के सूर्य में कई दिन तक बिजली और वर्षा होती रहै तो ७२ दिन के अन्दर भी वर्षा होगी और उसकी रोक नहीं होगी।

६३७-सूर्य यदि रोहिणी के प्रथम चरण में वृष्टि करे तो ७२ दिन तक जल का नाश और दूसरे, तीसरे चरण में वृष्टि करे तो घास का नाश होता है। यदि चतुर्थ चरण में वर्षा हो तो समुद्र पर वर्षा चली जाती है, अन्यत्र बादल भी नहीं रहते।

६३८-रोहिणी नक्षत्र के ऊपर जब तक सूर्य रहता है उन सूर्य भोग्य के तेरह दिनों में जहाँ जहाँ वृष्टि होती है, वहाँ वहाँ वर्षा की रुकावट समझनी चाहिये।

६३९-रोहिणी नक्षत्र पर जब तक सूर्य रहता है उन सूर्य भोग्य के तेरह दिनों में से प्रथम दिन वर्षा होने से ७२ दिन का, दूसरे दिन की वर्षा से ५० दिन तक का, तीसरे दिन की से ४६ दिन का, चौथे दिन की से ४२ दिन का, पाँचवे दिन की वर्षा से ३६ दिन की वर्षा का, छठे दिन की से ३४ दिन का, सातवें दिन की से ३१ दिन का, आठवें दिन की वर्षा से ३० दिन का, नवें दिन की वर्षा से २८ दिन का, दशवें दिन की वर्षा से २४ दिन की वर्षा का, ग्यारहवें दिन की वर्षा से २१ दिन का, बारहवें दिन की से १६ दिन की वर्षा का और तेरहवें दिन की वर्षा से १२ दिन तक को वर्षा का अवरोध ( रुकावट ) होता है।

६४०-कृत्तिका के सूर्य के तपने से, रोहिणी के सूर्य के गर्जने से, मृगशीर्ष के सूर्य के आखिरी चरण में वायु के न चलने से और आर्द्रा के सूर्य में हवा चलने से घास का नाश होता है।

६४१-मृगशीर्ष के सूर्य के आखिरी चरण में वायु न चले और रोहिणी के सूर्य में वर्षा हो तो न बिजली और न कभी मेघ-गर्जना की आशा रखनी चाहिये इस तरह ज्यौतिषी कहते हैं।

६४२-मृगशीर्ष पर जब सूर्य रहै तब उस नक्षत्र के प्रथम चरण में वायु न चले तो श्रावण में जब वह नक्षत्र आवे तब दश दिन तक गर्जना और वर्षा होती है।

६४३-इसी प्रकार यदि मृगशीर्ष के आखिरी चरण में वायु न चले और घाम रहै तो श्रावण मास में १६ दिन तक वर्षा नहीं होगी।

६४४-कोई कहता है कि मृगशीर्ष के सूर्य में चाहे घाम पड़े, रोहिणी के सूर्य में चाहे हवा चले, किन्तु यदि आर्द्रा में वृष्टि हो जावे तो सब आनन्द होता है ।

६४५-अश्लेषा नक्षत्र पर सूर्य के आने से यदि वर्षा न हो तो मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा इन पाँचों नक्षत्रों में पर्याप्त वर्षा होती है ।

६४६-इस तरह नक्षत्र, वार, तिथि और संक्रान्ति के सहित बारह महीनों के गर्भध्रुवक जो कि वर्षा के पूरक हैं, इस द्वादशमासिक नामक दूसरी अध्याय में कहे गये हैं ।

## इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतायां कादम्बिन्यां द्वादशमासिकोऽध्यायो द्वितीयः ॥

## अथ निमित्ताध्यायस्तृतीयः ।

वैकारिका गर्भरूपाण्युल्का रविकरा अपि ।
प्रकीर्णकाश्च पञ्चैते विकारा दिवि सर्गजाः ॥ १ ॥
वाताद्याः खपुराद्याश्च सन्ध्याद्याः कुलिशादिकाः ।
ग्रहणाद्या विकाराः खे जलदोषांशुशक्रजाः ॥ २ ॥
एषां प्रभेदा उच्यन्ते नाम रूपं च कर्म च ।
यैर्विशेषा विधीयन्ते प्रतिवर्षं प्रवर्षणे ॥ ३ ॥

### गर्भरूपम् ।

गर्भरूपाणि वाताभ्रविद्युत्स्तनितवृष्टयः ।
एषां भेदा महावातझञ्झावातादयः पृथक् ॥ ४ ॥

### वातः ।

पूर्वोऽभ्रजननो वायुरितरोऽभ्रविनाशनः ।
उत्तरो वृष्टिजनको वर्षत्येव च दक्षिणः ॥ ५ ॥
वातस्त्रिधा भावकश्च स्थापको ज्ञापकस्तथा ।
अभ्राद्युत्पादयेदाद्यो दिवि संचारयेत् परः ॥ ६ ॥
ज्ञापको भाविनीं वृष्टिं पूर्वमेव निवेदयेत् ।
आद्यस्तु वृष्टिं तत्काले कुर्यात्कालांतरेऽपि वा ॥ ७ ॥
सूर्यचन्द्रकुजादीनां ज्योतिर्भिर्भैश्च योगतः ।
भवेदुत्पातको वायुर्गर्भप्रसवकालयोः ॥ ८ ॥
आर्तवो नियतो वायुः स्थापकः स्थापयेद्दिवि ।
समुद्रादुत्थितं तोयं दोषाद् व्यभिचरत्यपि ॥ ९ ॥

ज्ञापका धारणाकाले ये चोक्ता गर्भमासिके ।
तिथिसम्बन्धजा वाता इत्थं वातस्त्रिधोदितः । १० ॥

उत्पादकः ।

करकायास्तुषारस्याम्बुनो वा वर्षणं क्वचित् ।
प्रचण्डवायुना विद्यादर्वाक् क्रोशचतुःशतात् ॥ ११ ॥
पूर्वतो दक्षिणात् पश्चादुत्तरादुग्रमारुतः ।
याम्ये च वारुणः सौम्ये शाक्रे वर्षणतः क्रमात् ॥१२॥
पूर्वस्यामथवोदीच्यां पवनः शीघ्रवृष्टये ।
दक्षिणस्यां वृष्टिनाशं पश्चिमायां विलम्बकृत् ।।१३ ॥
आग्नेयो विग्रहं वह्निभयं वृष्टिविघातनम् ।
नैर्ऋतः पवनो यावत्तावत्कुर्यान्महातपम् ॥ १४ ॥
वायव्यो वायुः कुरुते वृष्टिं पवनसंयुताम् ।
पतंगदंशमशकक्षुद्रजन्तुसमुद्भवम् ॥ १५ ॥
ऐशानः पवनो विश्वहिताय जलवृष्टये ।
आनन्दं वर्धयत्येवं वायुचक्रमिदं मतम् ॥ १६ ॥
आग्नेयो न कदापीष्ट ऐशानः सर्वदा शुभः ।
नैर्ऋतः कुरुते रोगं दुर्भिक्षं विग्रहं भयम् ॥ १७ ॥
सगर्जितान् सविद्युत्कान् महतोऽपि घनाघनान् ।
वाता नूनं विनिघ्नन्ति नैर्ऋताग्नेयदक्षिणाः ॥ १८ ॥
सौम्यं निवर्त्य शाक्रश्चेत् पञ्चाहाद् वृष्टयः परम् ।
शाक्रं निवर्त्य याम्यश्चेद् वृष्टयः स्युस्त्र्यहोत्तरम् ॥१९॥
निवर्त्य वारुणं वायुर्नैर्ऋतः संचरेद् यदि ।
तदातिवायवो वान्ति जलमल्पं च वर्षति ॥ २० ॥

दिग्भ्यो वहति सर्वाभ्यो यदि वायुर्यदा तदा ।
तदा वदन्ति दैवज्ञा अत्यल्पं वर्षति क्वचित् ॥ २१ ॥
न कुण्डलं न च धनुर्वायुश्चेत् सर्वदिग्भवः ।
दूरदेशांतरोद्भूतां स घटामानयिष्यति ॥ २२ ॥

## स्थापकः ।

हेमन्ते दक्षिणो वायुः शिशिरे नैर्ऋतः शुभः ।
बसन्तः वारुणः श्रेष्ठः फलं शरदि वारुणात् ॥ २३ ॥
शरत्काले पूर्ववायुः बसन्ते चोत्तरानिलः
विहन्ति फलपुष्पाणि न पोषस्तेषु जायते ॥ २४ ॥
आषाढे चाश्विने वृष्टिं पश्चिमः कुरुते दृढ़म् ।
श्रावणे तूत्तरी वायुः पूर्वो भाद्रपदेऽनिलः ॥ २५ ॥
आषाढे यदि वायव्यः कदाचित्तत्र चोत्तरः ।
श्रावणे पुनरैशानस्तदा भाद्रे न वर्षति ॥ २६ ॥
आषाढे यदि वायव्यः श्रावणे यदि पूबजः ।
भाद्रे पश्चिमतो वाति स्यात्तदान्नमहार्घता ॥ २७ ॥
आषाढे दक्षिणो वायुः श्रावणे यदि पूर्वतः ।
भाद्रे तूत्तरतो वाति जलं तर्हि न वर्षति ॥ २८ ॥
आषाढे नैर्ऋतो वाति श्रावणे वाति दक्षिणः ।
आश्विने यदि चाग्नेयः क्षेत्रे सस्यं स शोषयेत् ॥२९॥
श्रावणे नैर्ऋतो वायुर्भाद्रे वहति दक्षिणः ।
आश्विने पूर्ववायुश्चेत् क्षेत्रे सस्य विशुष्यति ॥ ३० ॥
श्रावणे यदि चाग्नेयो भाद्रे वहति नैर्ऋतः ।
न वर्षेदथ वर्षेच्चेन्न विद्युन्नापि गर्जितम् ॥ ३१ ॥

श्रावणे चाग्नितो वायुर्भाद्रे नैऋत्यतो यदि ।
मेघा आलम्ब्य वर्षंति विद्युद्गर्जितवर्जितम् ॥ ३२ ॥
श्रावणे पश्चिमो वायुर्भाद्रे वहति नैर्ऋतः ।
आश्विने पूर्वतो वाति फलं पुष्पं च नश्यति ॥ ३३ ॥
भाद्रे पश्चिमतः वायौ वाति मेघो न वर्षति ।
बहून् वा दिवसांस्तत्र घटाटोपेन वर्षति ॥ ३४ ॥
भाद्रे वहति सर्वासु वायुर्दिक्षु विदिक्षु वा ।
अपि मेघघटाटोपं स तत्र विलयं नयेत् ॥ ३५ ॥
श्रावणे यदि वायव्यो भाद्रे वहति पूर्वतः ।
आश्विने पश्चिमो वाति कार्तिके सस्यसिद्धयः ॥ ३६ ॥

## मेघः ।

धराधरो जलधरो वारिवाहो बलाहकः ।
अम्बुभृद् वारिदो मेघो जीमूतो मुदिरो घनः ॥३७॥
जलमुग् जलदो न आडब्दोनदनुरम्बुदः ।
धूमयोनिः पयोगर्भस्तडित्वांस्तनयित्नुकः ॥ ३८ ॥
धूमाग्निमरुदंबूनां संघातो मेघ उच्यते ।
मेघस्थितिश्चतुर्धाभ्रं वार्दलं च घनो घटा ॥ ३९ ॥
अभ्रं नभः प्रसारि स्याद् घनखण्डं तु वार्दलम् ।
घनस्तु प्रसृता खण्डा अखण्डा प्रसृता घटा ॥४०॥
मेघश्चतुर्विधो नागः पर्वतो वृषभोऽर्बुदः ।
नागशैलगजाभ्राणां योनिरेकैव तूदकम् ॥ ४१ ॥
हिमवृष्टिन्तु कुर्वंति शीतकाले हि दिग्गजाः ।
पुष्करावर्तसंवर्तद्रोणाः स्युर्मेघजातयः ॥ ४२ ॥

पुष्करो दुष्करोदः स्यादावर्तो निर्जलो घनः ।
बहूदकस्तु संवर्तो द्रोणः सस्यप्रपूरकः ॥ ४३ ॥
अग्निर्ब्रह्म च पक्षं च त्रिविधा मेघयोनयः ।
एषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ॥ ४४ ॥
अग्निजा ऊष्मजा मेघा स्विन्नजा गर्भजाश्चते ।
धूमैः प्रवर्तितास्तेषु श्रेष्ठा दुर्दिनवातजाः ॥ ४५ ॥
मातंगैर्महिषैः कोलैः सदृक्षाः क्षितिमागताः ।
विपिने पर्वताग्रे च वर्षंति विचरन्ति च ॥ ४६ ॥
मृदुसेका महाकायाः प्रत्यासन्नाश्च ते भुवः ।
क्रोशार्द्धे क्रोशमात्रे वा वर्षन्त्यबहुदूरतः ॥ ४७ ॥
खयोगाच्च भयोगाच्च ग्रहयोगाच्च सम्भवः ।
येषां ते ब्रह्मजा मेघा अग्निजादूर्ध्वखं गताः ॥ ४८ ॥
धारासाराः प्रवर्षंति प्रदेशे बहुयोजने ।
अग्निजा अपि वर्षंति ब्रह्मजानां प्रसंगतः ॥ ४९ ॥
गोत्रविच्छिन्नपक्षा ये पर्वतास्ते तु पक्षजाः ।
अनेकरूपसस्थाना महाघोरस्वनाश्च ते ॥ ५० ॥
युगान्ते चातिवर्षंति पूरयन्तो महीं जलैः ।
कल्पांतवृष्टेः स्त्रष्टारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः ॥ ५१ ॥
अतिवातं च निर्वातमत्युष्णमतिशीतलम् ।
अत्यभ्रं च निरभ्रं च षड्विधं मेघलक्षणम् ॥ ५२ ॥
आषाढी रोहिणी स्वाती योगे द्वादशमासिके ।
मेघे विशेषा आख्याता यत्परं तदिहोच्यते ॥ ५३ ॥
भानुत्यक्ता तदाक्रान्ता तदेष्या दीप्तदिङ् मता ।
इतरास्तु दिशः पञ्च शान्ता इत्यभिचक्षते ॥ ५४ ॥

श्यामो रक्तोऽथवा पीतः शान्तायां दिशि दृश्यते ।
स्निग्धो मन्दगतिर्मेघस्तदा विद्याज्जलागमम् ॥ ५५ ॥
शुक्लवर्णस्तु यो मेघः शान्तायां दिशि दृश्यते ।
स्निग्धो मन्दगतिश्चापि निवृत्तः स जलावहः ॥५६॥
स्निग्धवर्णास्तु ये मेघाः स्निग्धनादा भवन्ति ये ।
मन्दगाः सुमुहूर्ताश्च ते सर्वत्र जलावहाः ॥ ५७ ॥
मेघाः सुविद्युदाक्रान्ताः सुगन्धाः सुस्वराश्च ये ।
सुवेषाश्च सुवाताश्च सुधाराश्च सुभिक्षदाः ॥ ५८ ॥
रूक्षा वातं प्रकुर्वंति व्याधींश्चानिष्टगन्धिनः ।
कुशब्दाश्च विवर्णाश्च मेघा वर्षं न कुर्वते ॥ ५९ ॥
कुङ्कुमोदकसंकाशो नीलो वाञ्जनसप्रभः ।
याम्यातोऽग्निदिशं गच्छन् मेघस्तत्रैव वर्षति ॥६०॥
रक्तपीतोऽथवा नीलो दक्षिणादुत्तरां व्रजन् ।
मेघः क्षिप्रे सर्ववातं कृत्वा पश्चात् प्रवर्षति ॥ ६१ ॥
दक्षिणादुत्तरां गच्छेदुत्तरादपि दक्षिणाम् ।
न वर्षति तदा यद्वाऽनेकाहं स प्रवर्षति ॥ ६२ ॥
पश्चिमेन यदा मेघाः कोणं गच्छन्ति चञ्चलाः ।
अल्पोदका भवन्त्येते ततो वृष्टिर्न जायते ॥ ६३ ॥
पश्चिमेन यदा मेघा आगच्छन्ति समाकुलाः ।
वातवृष्टिं तदा कृत्वा जलवृष्टिं प्रकुर्वते ॥ ६४ ॥
पश्चिमाद् गच्छति प्राचीं प्राच्या गच्छति पश्चिमाम् ।
परस्पराहतो मेघो दिनानि दश वर्षति । ६५ ॥
प्रशान्तार्तववाताया दिशो यांति शनैर्दिशि ।
उद्दामार्तववातायां धवला अभ्रपर्वताः ॥ ६६ ॥

उद्दामार्तववाताया दिशो यांति शनैर्दिशि ।
प्रशान्तार्तववातायां तूलपुञ्जनिभा घनाः ॥ ६७ ॥
तूलपुञ्जनिभाः मेघा वायव्योत्तरतो यदि ।
वेगादायांति ते नूनं यामेष्वष्टसु वर्षति ॥ ६८ ॥
तूलपुञ्जनिभा मेघा याम्यनैर्ऋत्यतो यदि ।
आयांति तर्हि करका शीते वर्षासु वर्षति ॥ ६९ ॥
तमालाञ्जननीलाब्जप्रभामौक्तिकरौप्यभाः ।
गर्भे जलचराकारा वारिदा बहुवारिदाः ॥ ७० ॥
पुराकारा द्रुमाकारा जन्त्वाकाराश्च वारिदाः ।
तद्विकारास्तु खपुराभ्रवृत्तपरिघादयः ॥ ७१ ॥

## विद्युत् ।

विद्युत् क्षणप्रभा मेघप्रभा वीपाऽचिरप्रभा ।
ह्रादिन्यैरावती चम्पा शम्पा सौदामिनी तडित् ॥७२॥
आकालिकी शतावर्ता जलदा जलपालिका ।
क्षणांशु क्षणिका राधा चटुला चिलमीलिका ॥७३॥
सर्जूरचिररोचिश्च चपला चञ्चला चला ।
शतह्रदाऽशनिर्नीलांजना च तटिदस्थिरा ॥ ७४ ॥
ऐन्द्री जलप्रदा विद्युदाग्नेयी जलनाशिनी ।
दक्षिणोत्था स्वल्पजला नैर्ऋत्या डमरप्रदा ॥ ७५ ॥
प्रभूतजलदा सर्वसस्यदा पश्चिमोत्थिता ।
वातं करोति वायव्या कौवेरी जलवर्षिणी ॥ ७६ ॥
शीघ्रवृष्टिकृदैशानी दिश्यं वैद्युतलक्षणम् ।
यत्र देशे सुभिक्षं स्याद् विद्युत् तत्रैव गच्छति ॥७७॥

उत्तरस्यां यदा विद्युत् स्वर्णवर्णा प्रदीप्यते ।
सावश्यं जलदा ज्ञेया शीघ्रं मेघमहोदयः ॥ ७८ ॥
स्निग्धेष्वभ्रेषु संलाव्या स्निग्धा विद्युज्जलावहा ।
कृष्णा तु कृष्णमार्गस्था वातवर्षावहा भवेत् ॥ ७९ ॥
स्निग्धा रश्मिवती विद्युद्धरिता हरितप्रभा ।
दक्षिणा दक्षिणावर्ता कुर्यादुदकसंप्लवम् ॥ ८० ॥
रश्मिभिर्भासयन्ती गां या स्यादपरदक्षिणा ।
हरितालाऽतिरोमा च सोदकं बहु वर्षति ॥ ८१ ॥
विद्युच्चरति या नूनमपरेणोत्तरामुखी ।
कृष्णाभ्रसंस्थिता स्निग्धा सापि कुर्य्याज्जलागमम् ॥८२॥
श्वेता पूर्वोत्तरा विद्युद्दक्षिणस्यां प्रधावति ।
तिर्यगूर्ध्वं च चरति सापि कुर्याज्जलागमम् ॥ ८३ ॥
अधश्चोर्ध्वं च चरति स्निग्धा रश्मिवती भृशम् ।
अघोषा वा सघोषा वा विद्युत् सर्वत्र वर्षति ॥ ८४ ॥
नीला ताम्रा गौरवर्णा श्वेता वाऽभ्रान्तरं चरेत् ।
मन्दघोषातिघोषा वा कुर्यादुदकसंप्लवम् ॥ ८५ ॥
वाताय कपिला विद्युदातपाय तु लोहिता ।
पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षायासिता भवेत् ॥ ८६ ॥
विद्युतो न च वर्षन्ति श्यामास्ताम्रा हिमर्तुषु ।
रक्ताः पीताश्च शिशिरे नीलाः श्वेता वसन्तके ॥८७॥
हरिन्मधुनिभा ग्रीष्मे या रूक्षा याश्च निश्चलाः ।
वर्षासु ताम्राश्च गौराश्च नीलाः शरदि निर्जलाः ॥८८॥

अभ्रेषु रक्ता रिक्तेषु हरिता हरितेषु च ।
नीला नीलेषु वर्षंति विद्युतस्ताः स्वयोनिजाः ॥८९॥
( स्विष्टयोनिषु )

महामेघेतरे मेघा न वर्षन्ति जलं बहु ।
न गर्जन्ति च ते जातु विना विद्युद्विकाशतः ॥ ९० ॥
मुसलो गजनीलश्च दुन्दुभिः क्रमपार्थिवौ ।
पर्जन्यो माधवो धाता महामेघाः प्रकीर्तिताः ॥९ ॥
विद्युतं नानुरुन्धन्ति न वा गर्जन्ति तेऽधिकम् ।
सकृत् प्रवर्षणादेव प्लावयन्ति जगज्जलैः ॥ ९२ ॥

## गर्जितम् ।

मेघाद् वज्राच्च वाताच्च शब्दस्त्रेधाऽन्तरिक्षजः ।
गर्जितं स्तनितं मेघनिर्घोषो रसितं च तत् ॥ ९३ ॥
आप्तभाषितवत् सत्यं प्रभाते देवगर्जितम् ।
यामद्वयेन वर्षा वा वातो वा जायते ध्रुवम् ॥ ९४ ॥

## वृष्टिः ।

आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति ।
पुनः पतति तद् भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः ॥ ९५ ॥
( कौर्मे-उपरिभागे ४२ अ० )

तेजो हि सर्वभूतेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम् ।
सामुद्रादम्भसो योगाद्रश्मयः प्रवहन्त्यपः ॥ ९६ ॥
( ब्रह्माण्डे )

ततोऽयनवशात् काले परावृत्तो दिवाकरः ।
नियच्छति पयो मेघे शुक्लाशुक्लैर्गभस्तिभिः ॥ ९७ ॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
अभिष्यंति यथा चापस्तदन्तं कवयो विदुः ॥ ९८ ॥
( ब्रह्माण्डे )

तीव्रार्ककिरणोत्तप्ता जलदा मन्दमारुताः ।
प्रावृट्कालेऽभिवर्षन्ति धाराभी रुषिता इव ॥ ९९ ॥
यदि प्रभातसमये पतंति जलविन्दवः ।
तदा यामे चतुर्थे वा पंचमे वा प्रवर्षति ॥ १०० ॥
यद्यस्तमनवेलायां पतंति जलबिन्दवः ।
तदाऽहनि चतुर्थे वा पञ्चमे वा प्रवर्षति ॥ १०१ ॥
क्षारं वा कटुकं वापि दुर्गन्धं सस्यनाशनम् ।
यत्र वर्षति देशोऽसौ कृषिनाशाद् विनश्यति ॥१०२॥
सुभिक्षं जायते वृष्टौ मत्स्यमण्डूकवर्षणात् ।
शङ्खशम्बूककमठीवृष्टौ दुर्भिक्षमादिशेत् ॥ १०३ ॥
जिन्वरावृत्प्रभृतयो वृष्टेरष्टौ विशेषकाः ।
पुरो वातादिभिर्वेदे क्लृप्ता योगविशेषजाः ॥ १०४ ॥
धारासम्पात आसारः सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः ।
द्रप्सः स्तोकः पृषद्बिन्दुः पृषतो विप्रुडित्यपि ॥१०५॥
वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्रहावग्रहौ समौ ।
करका हिमपातश्च वृष्टेरेवापरा विधा ॥ १०६ ॥

इति वातादिगर्भरूपाधिकारः ।

गत अध्याय में बारह महीनों की और गर्भ के लक्षण आदि की भी परीक्षा लिखी गई है, गर्भ के और महीनों के अच्छे शकुन आदि होते हुए भी किस कारण से वर्षा नहीं होती यह इस अध्याय में बताया जाता है।

१—गर्भरूप[१], वैकारिक[२], सूर्य की किरणें[३], उल्का[४] और प्रकीर्णक[५] ये पाँच विकार आकाश में स्वभाव ही से होते रहते हैं।

२—वायु आदि, गन्धर्वनगर आदि, सन्ध्या आदि, वज्र आदि और ग्रहण आदि विकार आकाश में जल के दोष से सूर्य की किरणों में विकार होने के कारण पैदा होते हैं।

३—इन विकारों के भेद और इनके नाम, रूप, कर्म ये सब यहाँ कहे जाते हैं। जिनके द्वारा प्रति वर्ष वर्षा के भेद होजाया करते हैं।

## १—गर्भरूपाधिकारः।

४—वायु, बादल, बिजली ऊपर कहे हुए पाँच विकारों में पहला गर्भरूप नामक विकार का वर्णन किया जाता है।

५—वायु, बादल, बिजली, गर्जना और वृष्टि ये पाँच गर्भ के रूप हैं। इन्हीं के महावात, झञ्झावात आदि भेद पृथक् और हैं।

### वायुः (सामान्यवात)

गर्भ के पाँचों रूपों का वर्णन करते हुए ग्रंथकार पहले वायु का वर्णन लिखते हैं—

सामान्य तरीके से पूर्व की हवा बादल और वर्षा लाती है, पश्चिम की वर्षा नष्ट करती है, उत्तर की वर्षा पैदा करती है और दक्षिण की हवा केवल हवा ही चलाती है वृष्टि नहीं करती।

६—७—हवा तीन तरह की होती है भावक, स्थापक और ज्ञापक। इन में पहिली हवा से बादल आदि पैदा होते हैं, दूसरी हवा से आकाश में बादल स्थित रहते हैं, तीसरी ज्ञापक नामक वायु से आगे आने वाली वृष्टि का पहले ही से ज्ञान होजाता है। इनमें पहला भावक नामक पवन तत्काल या कालान्तर में भी वृष्टि कर दिया करता है।

८—सूर्य, सोम और मंगल आदि ग्रहों की ज्योतियों और नक्षत्रों के साथ मेल होने पर गर्भ और प्रसवकाल में उत्पादक नामक पवन होता है ।

९—आर्त्तव अर्थात् ऋतु संबन्धी जो नियत वायु है वह स्थापक कहलाती है, यह आकाश में गर्भ की स्थापना करती है, किन्तु कभी कभी समुद्र से उठे हुए जल के दोष से नहीं भी स्थित होती है ।

१०-मासिक गर्भ के धारण काल संबन्धी जो वायु है वही ज्ञापक कहलाती है । इस तरह ये तीन प्रकार की वायु कही गई है ।

## भावक या उत्पादक ।

११-प्रचण्ड वायु से ओले, बर्फ़ वा जल की वर्षा ४०० कोस के अन्दर होती है ।

१२-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की प्रचण्ड हवा से क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा में वर्षा होती है ।

१३-पूर्व अथवा उत्तर की हवा से शीघ्र ही वृष्टि आती है । दक्षिण की वायु से वृष्टि आने में विलम्ब होता है ।

१४-अग्निकोण की वायु से युद्ध, अग्निभय और वृष्टि का नाश होता है । नैऋत्यकोण की वायु जब तक रहे तब तक बड़ी धूप पड़ती है ।

१५-वायव्यकोण की वायु से हवा के साथ वर्षा आती है और मच्छर डाँस आदि छोटे जीव पैदा होते हैं ।

१६-ईशानकोण की वायु से संसार के कल्याण के लिये अच्छी वृष्टि होती है और चारों ओर आनन्द की वृद्धि होती है । इस प्रकार यह वायुचक्र का फल कहा गया है ।

१७-अग्निकोण की हवा कभी अच्छी नहीं है, ईशानकोण की हवा सदा शुभ है और नैऋत्यकोण की हवा रोग, दुर्भिक्ष, युद्ध और भय की उत्पत्ति करती है ।

१८-नैऋत्य, आग्नेय और दक्षिण की हवा गर्जना और बिजली वाले बड़े बड़े मेघों को भी अवश्य उड़ा लेजाती है ।

१९-२०-जिस दिन उत्तर की हवा को रोककर पूर्व की हवा चले उस दिन से आगे पाँच दिन तक वृष्टि होती है। पूर्व दिशा की हवा को रोककर दक्षिण दिशा की हवा चले तो तीन दिन तक वृष्टि होती रहती है। पश्चिम की हवा को रोककर नैऋत्यकोण की यदि हवा चले तो इससे वायु अधिक चलती है और वर्षा कम होती है।

२१-यदि ठहर ठहर कर सभी दिशाओं से वायु चले तो कभी कभी अत्यन्त अल्पवृष्टि की आशा रखनी चाहिये।

२२-यदि सूर्य-चन्द्रमा के कुण्डलना न हो, इन्द्रधनुष न हो और सर्व दिशाओं की वायु चले तो वह वायु दूर देशों में उठी हुई मेघ घटा को भी वहाँ ले आवेगी।

## स्थापक वायु।

२३-स्थापक वायु ऋतुसंबन्धी हवा को कहते हैं। हेमन्तऋतु में दक्षिण की, शिशिर में नैऋत्यकोण की, वसन्त और शरत्ऋतु में पश्चिम की हवा श्रेष्ठ होती है।

२४-शरत्काल में पूर्व की वायु से और बसन्त में उत्तर की वायु से फल पुष्प नष्ट होते हैं और वे पुष्ट नहीं होते।

२५-पश्चिमी वायु से आषाढ़ और आश्विन में, उत्तर की वायु से श्रावण में और पूर्व की वायु से भाद्रपद में अवश्य वर्षा होती है।

२६-आषाढ़ में यदि वायव्यकोण की हवा हो, कभी उत्तर की भी होजावे, पुनः श्रावण में ईशानकोण की हवा होजावे तो भाद्रपद में वर्षा नहीं होगी।

२७-आषाढ़ में वायव्यकोण की हवा हो, श्रावण में पूर्व की और भाद्रपद में पश्चिम की हवा हो तो अन्न की महँगाई होजावेगी।

२८-आषाढ़ में दक्षिण की हवा, श्रावण में पूर्व की और भाद्रपद में उत्तर की हवा हो तो वर्षा नहीं होगी।

२९-आषाढ़ में नैऋत्य की हवा, श्रावण में दक्षिण की और आश्विन में यदि अग्निकोण की हवा चले तो खेतों में धान्य सूख जाता है।

३०-इसी तरह यदि श्रावण में नैऋत्य की हवा हो, भाद्रपद में दक्षिण की और आश्विन में पूर्व की वायु हो तो खेतों में अन्न सुख जाता है पैदावार नहीं होती।

३१-श्रावण में अग्निकोण की हवा और भाद्रपद में नैऋत्यकोण की हवा चले तो वर्षा नहीं होती, यदि होती है तो बिजली तथा गर्जना रहित होती है ।

३२-श्रावण में अग्निकोण की हवा चले और भाद्रपद में नैऋत्यकोण की हवा चले तो बिजली और गर्जना से रहित मेघ पृथ्वी पर झूम करके वर्षा करते हैं ।

३३-इसी प्रकार यदि श्रावण में पश्चिम की हवा, भाद्रपद में नैऋत्य की और आश्विन में पूर्व की हवा चले तो वर्षा न हो यदि हो तो बिजली और गर्जना से रहित हो ।

३४-भाद्रपद में पश्चिम की हवा चलने से वर्षा नहीं होती, यदि होती है तो कई दिनों तक घटाटोप होकर होती है ।

३५-भाद्रपद में सब दिशा और विदिशा ( कोण ) से हवा चले तो घटाटोप के सहित भी मेघ का नाश होजाता है ।

३६-श्रावण में वायुकोण की, भाद्रपद में पूर्व की और आश्विन में पश्चिम की हवा चलने से कार्त्तिक में धान्य अच्छा पैदा होता है ।

## मेघ ।

गर्भरूप के पाँचों भेदों में से मेघ ( बादल ) नाम का यह दूसरा भेद है ।

३७-३८-धाराधर, जलधर, वारिवाह, बलाहक, अम्बुभृत्, वारिद, मेघ, जीमूत, घन, जलमुक्, जलद, नभ्राट्, अब्द, नदनु, अम्बुद, धूमयोनि, पयोगर्भ, तड़ित्वान्, स्तनयित्नु ये सब मेघ के ही नामान्तर हैं ।

३९-धूआँ, आग, वायु और इनके संघात ( मेल ) को ही मेघ कहते हैं। इस मेघ की स्थिति ( हालत ) चार तरह की होती है अभ्र, बादल, घन और घटा ।

४०-इनमें आकाश के अन्दर फैलने वाला अभ्र कहलाता है। घन के टुकड़ों को बादल कहते हैं, फैले हुए खण्ड घन होते हैं, और खण्ड खण्ड न हों और एक ही रूप में फैले हुए हों तो उन्हें घटा के नाम से पुकारते हैं ।

४१-मेघ चार तरह के होते हैं—नाग, पर्वत, वृषभ और अर्बुद । इन चारों का जल ही एक कारण है ।

४२-शीतऋतु में दिग्गज जाति के मेघों से हिम की वर्षा होती है। पुष्कर, आवर्त्त, संवर्त्त और द्रोण ये मेघ की जातियाँ हैं।

४३-दुःख से जल देने वाला मेघ पुष्कर जाति का, निर्जल मेघ आवर्त्त जाति का, अधिक जल वाला संवर्त जाति का और धान्य के योग्य बरसने वाला मेघ द्रोण जाति का होता है।

४४-अग्नि, ब्रह्म और पक्ष ये तीन मेघ की योनि ( उत्पत्ति कारण ) हैं। इन की भी वृद्धि का साधारण हेतु धूम है।

४५-अग्नि, ऊष्मा, स्विन्न ( गीले पदार्थ ) और गर्भ से उत्पन्न हुए मेघों का धूम से आरंभ होता है। इन मेघों में श्रेष्ठ मेघ दुर्दिन की हवा से उत्पन्न हुए होते हैं।

४६-हाथी, भैंसे और सुअर की समानता वाले पृथिवी पर आये हुए मेघ वन में और पर्वत शिखरों पर वर्षा करते हैं।

४७-थोड़ी वर्षा करने वाले बड़े शरीर वाले, पृथिवी के समीप आये हुए मेघ एक वा आधे कोस के अन्दर पास ही में बरसते हैं।

४८-आकाश, नक्षत्र और ग्रहों के योग से जिनकी उत्पत्ति है वे मेघ ब्रह्मज कहलाते हैं, अग्नि से पैदा होने के कारण ऊपर आकाश में गए हुए होते हैं।

४९- जो धारासार अर्थात् मोटी बूंदों वाले मेघ हैं वे बहुत दूर तक वर्षा करते हैं। ब्रह्मज मेघों के प्रसङ्ग से अग्नि से उत्पन्न हुए भी मेघ बरस जाया करते हैं।

५०-पक्षवाले पर्वतों के पक्ष कटने से जो मेघ बनते हैं, वे पक्षज कहलाते हैं। वे मेघ अनेक प्रकार की आकृति वाले और घोर अवाज़ वाले होते हैं।

५१-युगान्त में पृथिवी को जल से पूरित करने वाले और कल्पान्त वृष्टि से पैदा करने वाले मेघ संवर्ताग्नि से बने होते हैं।

५२-अधिक पवन चलना या सर्वथा ही पवन का बन्द होना, अधिक गरमी पड़ना या अधिक ठण्ढ का ही गिरना, अधिक बादलों का होना अथवा सर्वथा ही बादलों का न होना ये छः चिह्न मेघ के होते हैं, अर्थात् मेघ के आने से ये लक्षण हुआ करते हैं।

५३-आषाढ़ी रोहिणी और आषाढ़ी एवं बारह मास की स्वाती के योग में मेघ की विशेषतायें पहिले कहदी गई हैं। उससे अधिक यहाँ कुछ और भी कहते हैं।

५४-आठ दिशाओं में से सूर्य से छोड़ी हुई, सूर्य से आक्रमण किई हुई और सूर्य से आक्रमण की जाने वाली ये तीन दिशाएँ दीप्तदिक् अर्थात् सूर्य से प्रकाशित अथवा सूर्य वाली कहलाती हैं शेष पाँच दिशाएँ शान्त कहलाती हैं।

५५-शान्त दिशा में श्याम, रक्त अथवा पीले रंग का स्निग्ध और मन्दगति का मेघ दिखाई दे तो जल का आगमन जानना चाहिए।

५६-शान्त दिशा में जो मेघ शुक्लवर्ण का दृष्टिगत हो तो स्निग्ध और मन्दगति होने पर भी उस मेघ को बरसा हुआ ( खाली ) समझना चाहिये।

५७-स्निग्ध वर्ण ( सुन्दर रंग ) और स्निग्ध आवाज के तथा मन्दगति और अच्छे मुहूर्त में उठे हुए मेघ सदा सर्वत्र जल बरसाने वाले होते हैं।

५८-अच्छी बिजली, गन्ध, स्वर, वेष, वायु और बूंदों वाले मेघ सुभिक्ष करने वाले होते हैं।

५९-रूखे मेघ वायु पैदा करते हैं, खराब गन्ध वाले व्याधि पैदा करते हैं और खराब आवाज़ तथा वर्ण वाले मेघ बरसते नहीं हैं।

६०-केसर के जल समान, नीला और काले रंग का मेघ दक्षिण से अग्निकोण को जाता हुआ वहाँ ही बरस जाता है।

६१-लाल, पीला अथवा नीला मेघ उत्तर को जाता हुआ शीघ्र ही चौतरफी हवा चलकर बरस जाता है।

६२-दक्षिण से उत्तर को जावे और उत्तर से दक्षिण को आवे तो वह मेघ बरसता नहीं अथवा बरसे तो कई दिन तक बरसता है।

६३-पश्चिम से जब मेघ वायव्य, नैऋत्य आदि कोणों की तरफ जाते हैं तब वे कम जल के होजाते हैं, उनसे वृष्टि नहीं होती है।

६४-पश्चिम से जब मेघ आकुल होते हुए आते हैं तब वे वायु पैदा करते हैं और फिर जल वृष्टि करते हैं।

६५-पश्चिम से पूर्व को और पूर्व से पश्चिम को जब मेघ जाते हैं तब वे आपस में भिड़े हुए दस दिन तक वर्षा करते हैं।

६६-प्रशान्त ( अत्यन्त मन्द ) मौसमी ( monsoon ) वायु की दिशा से सफेद बादलों के पर्वत उदास ( प्रचण्ड ) मौसमी वायु वाली दिशा में धीरे से चले जाते हैं।

६७-प्रचण्ड मौसमी वायु वाली दिशा से प्रशान्त मौसमी वायु वाली दिशा में रूई के ढेर के सदृश जो श्वेत बादल हैं वे चले जाते हैं।

६८-रूई के ढेर के समान सफ़ेद बादल वायव्य वा उत्तर से वेग से आते हों तो वे आठों प्रहर अवश्य वर्षा करेगें।

६९-रूई के ढेर के समान श्वेत बादल दक्षिण वा नैऋत्य से आते हों तो वे शीतकाल में वर्षा के अन्दर ओले गिराते हैं।

७०-तमाल, अञ्जन और नीलकमल की सी प्रभावाले, मोती और चाँदी की सी आभा वाले और गर्भ में जलचरों की आकृति वाले मेघ अधिक जल बरसाने वाले होते हैं।

७१-जो मेघ गन्धर्वपुर के आकार के, वृक्ष के आकार के और जन्तुओं के आकार के होते हैं उन्हीं के खपुर-अभ्रवृक्ष-परिघ आदि विकार होते हैं।

## विद्युत।

गर्भरूप के पाँचों भेदों में से यह विद्युत् तीसरा भेद है।

७२-७३-विद्युत, क्षणप्रभा, मेघप्रभा, वीपा, अचिरप्रभा, ह्लादिनी, ऐरावती, चम्पा, शंपा, सौदामिनी, तडित्, आकालिकी, शतावर्ता, जलदा, जलपालिका, क्षणांश, क्षणिका, राधा, चटुला, चिलमीलिका, सर्जू, अचिररोचि, चपला, चंचला, चला, शतह्रदा, अशनि, नीलांजना और अस्थिरा ये नाम बिजली के हैं।

७५-पूर्व की बिजली से जल की वर्षा, अग्निकोण की से जल का नाश, दक्षिण की से कम जल और नैऋत्य की बिजली से डमर* अर्थात् धुंध छाजाती है।

७६-पश्चिम से उठी हुई बिजली अधिक जल और धान्य देने वाली होती है, वायव्यकोण की बिजली वायु पैदा करती है और उत्तर की बिजली से मेघ आता है।

७७-ईशानकोण की बिजली से शीघ्र ही मेघ आता है। इस प्रकार सब दिशाओं की बिजली की परीक्षा जाननी चाहिये। जिस देश में सुभिक्ष होता है बिजली उधर ही जाती है।

७८-उत्तर दिशा में सुनहरी रंग की बिजली चमके तो उसे अवश्य ही वर्षा करने वाली समझनी चाहिये। शीघ्र ही मेघ का उदय होगा।

* कई विद्वान् डमर का अर्थ महामारी भी करते हैं।

७९-स्निग्ध बादलों में होने वाली स्निग्ध बिजली जल बरसाने वाली होती है। कृष्णमार्ग (दक्षिणमार्ग) में होने वाली बिजली वायु और वर्षा करती है।

८०-स्निग्ध विद्युत् किरणों वाली होती है, हरित् विद्युत् हरे रंग की कान्ति वाली होती है, दक्षिण विद्युत दाहिने चक्करों वाली होती है। इन विद्युतों से खूब जल बरसता है।

८१-जो विद्युत् अपनी किरणों से भूमि को प्रकाशित करती हुई पश्चिम से दक्षिण दिशा को जाती है, हरिताल के रंग की हो और अधिक रोम वाली हो तो उसे अधिक जल देने वाली समझनी चाहिये।

८२-जो विद्युत् पश्चिम से उत्तर को जाती हो, काले बादलों में संस्थित अर्थात् चमक रही हो और स्निग्ध हो तो वह भी वर्षा करने वाली होती है।

८३-सफेद रंग वाली ईशानकोण की विद्युत् दक्षिण दिशा में यदि दौड़े, टेढ़ी और ऊर्ध्वगति की हो तो वह भी वर्षा करती है।

८४-जो बिजली नीचे और ऊपर विचरने वाली होती है, स्निग्ध और रश्मि वाली होती है वह शब्द करे या न करे सर्वत्र वर्षा करती है।

८५-जो विद्युत् मेघ के अन्दर नील, ताम्र या सफेद रंग की चमकती हो वह चाहे धीमी वा तेज आवाज वाली हो खूब जल बरसाती है।

८६-किसी का मत है कि-कपिल रंग की विद्युत् हवा के लिये, लाल रंग की धूप के लिये, पीली वृष्टि के लिये और दुर्भिक्ष डालने के लिये काले रंग की बिजली चमकती है।

८७-८८-श्याम और ताँबे के रंग की विद्युत् हेमन्त ऋतु में, लाल और पीली शिशिर में, नीले और पीले रंग की बसन्त में, हरे और मधु के रंग की ग्रीष्म में, रूखी और स्थिर विद्युत् वर्षाऋतु में तथा गौर और नील विद्युत शरद् काल में निर्जल (जल रहित) होती है।

८९-अपने किरणों की समानता वाली लाल विद्युत् लाल बादलों में, हरी विद्युत हरे बादलों में और नीले रंग की विद्युत् नीले बादले में वर्षा करती है।

९०-आगे लिखे हुए महा मेघों से इतर जो छोटे मेघ हैं वे विद्युत् के प्रकाश के बिना न कभी जल बरसाते हैं और न कभी गर्जना करते हैं।

९१-मुसल, गजनील, दुन्दुभि, क्रम, पार्थिव, पर्जन्य, माधव और धाता ये महा मेघ कहलाते हैं।

९२-ऊपर कहे हुए महा मेघ वर्षा करने के लिये न तो बिजली का अनुरोध करते हैं और न वे अधिक गर्जना ही करते हैं, वे मेघ एक ही बार की वर्षा से संपूर्ण संसार को जल से भर देते हैं।

## गार्जितम्।

गर्भरूप का गर्जित ( गर्जना ) नाम का यह चौथा भेद है।

९३-आकाश से पैदा हुआ शब्द तीन कारण से होता है-मेघ से, वज्र से और वायु से। इन शब्दों के गर्जित, स्तनित, मेघनिर्घोष और रसित ये नाम हैं।

९४-प्रातःकाल के समय की गर्जना सत्यवादी की सत्य होती है। इससे दो प्रहर के अन्दर अवश्य ही वर्षा होगी या वायु चलेगी।

## वृष्टिः।

गर्भरूप का यह अन्तिम पाँचवां भेद है।

९५-कूर्मपुराण के उपरिभाग में, ४२ वीं अध्याय में लिखा है कि सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता है। फिर वह जल समय आने पर भूमि पर पड़ता है और उससे समुद्र भरता है।

९६-इसी प्रकार ब्रह्माण्डपुराण में भी लिखा है कि तेज ( सूर्य ) सब भूतों ( भौतिक वस्तुओं ) से किरणों के द्वारा जल लेलेता है समुद्र ( पारमेष्ठय सोम समुद्र ) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को लेजाती है।

जल की चार अवस्थायें होती हैं-अम्भ, मरीची, मर और आप्। इनमें अम्भ जल परमेष्ठी नामक सूर्य के ऊपर के भाग में वाय्वात्मक रूप से सूर्य की किरणों द्वारा आता रहता है। इसे आजकल ' हाईड्रोजन (Hydrogen) कहते है। आप् नामक जल कहलाता है, जिसे आजकल सब पीने आदि के काम में लेते हैं।

९७-अपनी गति के कारण हटा ( लौटा ) हुआ सूर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता है।

९८-मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु ( आर्तव Monsoon ) से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता है। जल जिस प्रकार या जिन कारणों से इधर उधर घूमते हैं इसका कारण बुद्धिमान् वैज्ञानिक ही जानते हैं।

९९-तेज किरणों से तपते हुए और मन्दपवन वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी बड़ी धाराओं से बरसते हैं।

१००-प्रातःकाल के समय जल की बूँदे गिरे तो चौथे या पाँचवें प्रहर में मेघ बरसता है।

१०१-सूर्यास्त काल में यदि जल की बूंदें गिरें तो चौथे या पाँचवें दिन में जाकर मेघ बरसता है।

१०२-जिस देश में खारी, कड़वी, दुर्गन्ध वाली और धान्य नाश करने वाली वर्षा होती है, वह देश खेती के नाश से नष्ट होजाता है।

१०३-वर्षा के अन्दर मत्स्य और मेढकों के गिरने से सुभिक्ष होता है तथा शंख, शंबूक ( जल में पैदा होने वाली सीपें ) और कछुआ इनके गिरने से दुर्भिक्ष होता है।

१०४-जिन्वरावृत् प्रभृति वृष्टि के आठ विशेषक हैं। वेद में पुरोवात आदि से योगविशेषज कहे गये हैं।

१०५-१०६-धारा सम्पात, आसार, सीकर, अम्बुकण, द्रप्स, स्तोक, पृषद्बिन्दु, पृषत, विप्रुट् इतनी अवस्थाओं में वृष्टि होना बरसना कहलाता है। वृष्टि और वर्षा वृष्टि के नाम हैं। अवग्रह और वग्रह वृष्टि के न होने को कहते हैं। करका और हिमपात भी वृष्टि के ही नाम हैं।

इस प्रकार गर्भरूप के वायु, मेघ, विद्युत्, गर्जित और वृष्टि इन पाँच भेदों का वर्णन यहाँ समाप्त हुआ।

इति वातादिगर्भरूपाधिकारः ( १ )

## २—वैकारिकाधिकारः ।

——:०:——

खपुरं शाखि परिघौ निर्घातः करका हिमम् ।
वैकारिका इमे भावा जीमूतादिप्रभेदजाः ॥ १०७ ॥

### खपुरम् ।

अनेकवर्णाकृतिकं पताकाध्वजतोरणैः ।
युक्तं गन्धर्वनगरं पुरवत् खे प्रकाशते ॥ १०८ ॥
शुभ्रैरभ्रैर्यदा मिश्रं सविद्युत्सवलाहकम् ।
गन्धर्वनगरं स्निग्धं तदा विद्याज्जलागमम् ॥ १०६ ॥
कपिलं सस्यनाशाय मांजिष्ठं पशुघातकम् ।
अव्यक्तवर्णं कुरुते बलक्षोभं विदुर्बुधाः ॥ १० ॥

### अभ्रतरुः ।

शाखी खशाखी खतरुरभ्रतर्वादयोऽपि च ।
दिवि द्रुविटपाकारे मेघे शब्दा उदाहृताः ॥ १११ ॥
नीलो दधिवदग्रोऽर्कच्छादी शाखी खमध्यगः ।
घनमूला घनाः पीतच्छुरिता भूरिवृष्टिदाः ॥ ११२ ॥

### परिघः ।

परिघस्तु तिरश्चीना मेघरेखाऽरुणोपरि ।
ह्रस्वा वा यदि वा दीर्घा सिता वा यदि वाऽसिता ॥११३॥
राजान्तं परिघः श्वेतः शोणः सैनप्रकोपनम् ।
बलवृद्धिं सुवर्णाभः करोत्यर्कोदयोत्थितः ॥ ११४ ॥

## निर्घातः।

स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषो निर्घातोऽनभ्रगर्जितम् ।
अनभ्रगर्जितं याति यस्यां दिशि विहंति ताम् ॥११५॥
गगनादवनौ यातिः पवनः पवनाहतः ।
घोरं नादं प्रकुर्वाणः स निर्घात इतीर्यते ॥ ११६ ॥

## करका ।

धाराङ्कुरो, राधरङ्कवर्षोपलघनोपलाः ।
मेघोपलश्च मेघास्थि मटची पुंजिकापि च ॥ ११७ ॥
वीजोदकं घनकफो वार्चरः करकापि च ।
भूयसा करकापाते दुर्भिक्षं तत्र जायते ॥ ११८ ॥

## हिमम् ।

हिमं चतुर्विधं दृष्टं प्रालेयं च तुषारकः ।
धूमिका चाप्यवश्यास्तेषां सूक्ष्मं परं परम् ॥ ११९ ॥
जले तु कठिने भूते प्रालेयं तुहिनं समम् ।
मेरुप्रांते हिमाद्रौ च करकादौ च दृश्यते ॥ १२० ॥
स्ववर्षणांते करकावर्षणांते द्व्यहं त्र्यहम् ।
योत्यर्थकम्पनो वृक्षान्नाशयेत् स तुषारकः ॥ १२१ ॥
प्रातःकाले विशेषेण धूमिका पौषमाघयोः ।
क्षिणोत्यर्ककरं सर्वमावृणोति च धूमवत् ॥ १२२ ॥
कुहिढश्च कुहेडिश्च कुहेलिश्च कुहेलिका ।
नभोरेणुः कुज्झटिका कुज्झटिः कुज्झटी च सा ॥१२३॥

धूमिका धूममहिषी रतान्ध्रीति च कथ्यते ।
सा चात्यर्थघनीभूतावश्यायपतनोद्भवा ॥ १२४ ॥
प्रतिवासरमुत्थाय चुद्रचुद्रा अपां कणाः ।
प्रतिरात्रं प्रवर्षंति सोऽवश्याय इतीर्य्यते ॥ १२५ ॥

प्रथम गर्भरूप विकार का वर्णन कर चुके अब दूसरा वैकारिकाधिकार यहाँ से प्रारंभ होता है।

१०७-जीमूत आदि मेघों के भेद से उत्पन्न हुए खपुर, शाखी (अभ्रतरु) परिघ, निर्घात, करका और हिम ये छः वैकारिकभाव हैं क्रमशः इनका वर्णन आगे लिखते हैं।

## खपुर ।

१०८-आकाश में किसी पुर के समान अनेक रंग और आकृति वाला तथा पताका, ध्वजा और तोरणों से युक्त जो गन्धर्वनगर दिखाई देता है वह खपुर कहलाता है।

१०९-यह गन्धर्वनगर जब सुफ़ेद बादल, बिजली और मेघों के सहित स्निग्ध दिखाई दे तो जल का आगमन समझना चाहिये।

११०-यदि गन्धर्वनगर कपिल रंग का हो तो धान्य का नाश, मंजीठ के रंग का ( लाल ) हो तो पशुघात और अव्यक्तवर्ण ( अस्पष्ट रंग ) का हो तो सेनाओं में बलका चोभ करता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

## अभ्रतरु ।

१११-आकाश के अन्दर होने वाले वृच के आकार के मेघों के वास्ते शाखी, खशाखी, खतरु और अभ्रतरु आदि शब्दों के प्रयोग होते हैं।

११२-आकाश में नील समुद्र के समान आगे के भाग वाले और सूर्य को ढकने वाले जो शाखी होते हैं, वे यदि मोटी जड़ के घने और पीले हों तो अधिक वृष्टि होती है।

## परिघ ।

११३-सूर्य के ऊपर मेघ की तिरछी रेखा को परिघ कहते हैं । वह रेखा चाहे ह्रस्व, दीर्घ, काली या सफेद हो।

११४-सूर्योदय समय में उठीहुई परिघ रेखा यदि सुफ़ेद हो तो राजा का अन्त, शोण ( लाल ) हो तो सेना में हलचल और सुनहरी हो तो बल की वृद्धि करती है ।

## निर्घात ।

११५-स्फूजँथु, वज्रनिर्घोष, निर्घात, अनभ्रगर्जित ये गर्जना के नाम हैं । जिस दिशा में अनभ्रगर्जित ( बिना बादल के गर्जना ) हो उस दिशा का नाश होजाता है ।

११६-आपस में पवन से पवन आहत होकर आकाश से पृथ्वी पर आती है तब जोर की आवाज होती है, इसी आवाज का नाम निर्घात है ।

## करका ।

११७-११८-धाराङ्कुर, राधरङ्कु, वर्षोपल, घनोपल, मेघोपल, मेघास्थि, मटची, पुंजिका, बीजोदक, घनकफ, वार्चर और करका ये ओलों के नाम हैं । अधिक ओलों के गिरने से दुर्भिक्ष होता है ।

## हिम ।

११९-हिम चार तरह की होती है—प्रालेय, तुषा, धूमिका और अवश्याय । इनमें अगला अगला सूक्ष्म समझना चाहिये ।

१२०-जल बरफ के समान कठिन होजाने पर प्रालेय कहलाता है । मेरुप्रान्त में, हिमालय में और ओले आदि में इस प्रालेय का रूप दिखाई देता है ।

१२१-तुषार वह कहलाता है, जो अपने बरस जाने के बाद और ओलों के बरसने के बाद दो तीन दिन तक अत्यन्त कँपाने वाला तथा वृक्षों का नाश करने वाला होता है ।

१२२-धूमिका वह होती है, जो प्रायः प्रातःकाल में पौष, माघ के महीनों में सूर्य की किरणों को क्षीण ( निस्तेज ) बना देती है और धूआँ की तरह सब को ढक लेती है ।

१२३-१२४ कुहिढ, कुहेड़ि, कुहेलिका, नभोरेणु, कुज्झरिका, कुज्झटि, कुज्झटी, धूममहिषी और रतान्धी ये धूमिका के नाम हैं । ये धूमिका अत्यन्त घनी भूत बनकर अवश्याय ( ओस ) के पतन का कारण होता है ।

१२५-हर रोज जल के जो छोटे छोटे कण प्रतिरात्रि में बरसते हैं उन्हें अवश्याय ( ओस ) कहते हैं ।

इति खपुरादिवैकारिकाधिकारः ( २ )

## ३—रविकराधिकारः ।

सन्ध्या च कुण्डलं शक्रायुधं दण्डस्त्रिशूलकम् ।
मत्स्योमोघश्च सप्तैते विकारा रविरश्मिजाः ॥१२६॥

### सन्ध्या ।

सन्ध्या भवत्यहोरात्रसन्धिस्था नाडिकद्वयी ।
नाडी त्रयी वा यावद्वा ज्योतिषां दर्शनं भवेत् ॥१२७॥
सन्ध्यायां सुरभिः शीतो मृदुश्चरति मारुतः ।
शुभाय विमलं व्योम दिशः पद्मारुणप्रभाः ॥१ ८॥
द्योतयन्ती दिशः सर्वा यदि सन्ध्या प्रदृश्यते ।
महामेघोदयं विद्याद् वृष्टिस्तर्हि भविष्यति ॥ १२९ ॥
वैडूर्याम्बुजकिंजल्कप्रभा कुवलयप्रभा ।
सन्ध्या करोति निर्वाता वृष्टिं सद्योऽर्कभासिता ॥१३०॥
मत्स्यामोघपरीवेषपरिधीन्द्रायुधादिभिः ।
स्निग्धै रविकरैर्वृष्टिरवृष्टी रूक्षवैकृतैः ॥ १३१ ॥
सायं सन्ध्या सहामोघा प्रातः सन्ध्या समत्स्यका ।
मेघयोगोऽयमव्यर्थो वृष्टिस्तत्र भविष्यति ॥ १३२ ॥
दुष्टाकृतिघनैर्धूमैर्नीहारैः पांसुभिः पुरैः ।
सन्ध्या करोत्यनावृष्टिमकाले शस्त्रकोपनम् ॥ १३३ ॥
शोणा पीता सिता चित्रा पद्माभा शोणितप्रभा ।
शिशिरादिषु सन्ध्येयं स्वर्तुप्रकृतितः शुभा ॥१३४॥

पूर्वेण यदि सन्ध्यायां मेघैराच्छाद्यते नभः ।
महिषोष्ट्रवराहाभैर्वृषकुञ्जरपर्वतैः ॥ १३५ ॥
पंचरात्रे तदा सप्तरात्रे वा तत्र वर्षति ।
ऐशान्यामीदृशैर्मेघैरर्धरात्रेण वर्षति ॥ १३६ ॥
उत्तरे यदि सन्ध्यायां दृश्यते गिरिमालिका ।
तृतीये दिवसे तर्हि तत्र वृष्टिर्भविष्यति ॥ १३७ ॥
वायव्ये तादृशैर्मेघैर्वातवृष्टिरहर्निशम् ।
सप्ताहं वा त्र्यहं वृष्टिः पश्चिमे गिरिमालया ॥ १३८॥
दक्षिणे तादृशैर्मेघैः कोटिनारसमप्रभैः ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रं प्रवर्षति ॥ १३९ ॥
आग्नेय्यामीदृशैर्मेघैः सन्ध्याकाले समुत्थितैः ।
तस्यामेव ध्रुवं रात्रौ तत्र वर्षा भविष्यति ॥ १४० ॥
सायं बहुपुटास्तुल्याः केकिचाषजपाशुकैः ।
जलन्तूर्मिगिरिभिर्वर्षंति न चिराद् घनाः ॥ १४१ ॥
वृष्ट्यै वीरणगुल्माभैर्मेघैः शान्तदिगुद्भवैः ।
सितैः सितान्तैः सव्येन भवेदावरणं रवेः ॥ १४२ ॥
गजाश्वपर्वतच्छत्रध्वजरूपा घनाः शुभाः ।
पलालधूमभाः स्निग्धा बलवृद्ध्यै तु सन्ध्ययोः ॥१४३॥
पुराकरा द्रुमाकाराः खरारुणविकाशिनः ।
भवंति शुभदा मेघाः सन्ध्ययोः सुविलम्बिनः ॥१४४॥

## कुण्डलम् ।

परिधिः परिवेषश्च कुण्डलं द्विविधं मतम् ।
प्रत्यर्कः प्रतिचन्द्रश्च द्विविधः परिधिर्भवेत् ॥ १४५ ॥

## प्रत्यर्कपरिधिः।

प्रतिसूर्यः समः स्निग्धः स्वर्तुवर्णः प्रशस्यते।
वैदूर्याभः सितः स्वच्छः सुभिक्षं क्षेममावहेत् ॥१४६॥
रवेरुत्तरगो वृष्टिं वायुं दक्षिणगस्तथा।
उभयस्थो जलत्रासं करोति प्रतिसूर्यकः ॥ १४७ ॥
विम्बान्वितौ तु परिधी रवेरुभयपार्श्वगौ।
बहुतोयौ निर्जलस्तु सर्वदिक्पर्यवस्थितः ॥ १४८ ॥

## परिवेषः।

रवेरिन्दोः करा व्योम्नि वायुना प्रतिमूर्च्छिताः।
सूक्ष्मेऽभ्रे मण्डलीभूताः परिवेषाख्यया मताः ॥१४६॥
ताराग्रहाणां ताराणां परिवेषाश्च तत्समाः।
चातुर्मास्ये तु वर्षर्तौ परिवेषा जलप्रदाः ॥ १५० ॥
ते च रक्ताः सिता नीलाः कापोताः पाण्डवोऽभ्रवत्।
मेचका शवलाः क्लृप्ता दिगिशैः संकरा अपि ॥१५१॥
रक्ताः नीलाः पांडुराश्च कपोताश्चापि कापिलाः।
पीताः शुक्लाभा वर्षाय प्रागादिष्विति नारदः ॥१५२॥
चाषैर्मयूरै रजतैस्तैलैः क्षीरैर्जलैः समाः।
शिशिरादिस्वकालोत्था वृत्ताः स्निग्धाः शुभायते ॥१५३॥
एकेनैव सवर्णेन युक्तः स्निग्धः सुविस्तृतः।
क्षुराभ्रकयुतः स्वर्तौ सद्यो वर्षं करोति सः ॥ १५४ ॥
सर्वाकाशपरिव्यापी नैकाभः शोणितप्रभः।
रूक्षः पापाय संभग्नधनुः शकटवत् स्थितः ॥ १५५ ॥

परिवेषो मन्दफलो यो विलीनो मुहुर्मुहुः ।
मयूरगलतुल्याभो बहु वर्षं करोति सः ॥ १५६ ॥
शुभास्तु कपिलाः स्निग्धः चीरतैलांबुसंनिभाः ।
चापशृंगाटकरथचतजाभारुणाः शुभाः ॥ १५७ ॥
( नारदः )

ग्रहर्क्षे मण्डलान्तःस्थे त्र्यहेण स्यात् प्रवर्षणम् ।
चुद्रधान्यचयो वातवृष्टिर्मण्डलगे शनौ ॥ १५८ ।
दुर्भिक्षं मण्डले शुक्राद् वृष्टिः सस्यचतिर्बुधात्
ग्रहयुद्धादनावृष्टिर्ग्रहयोगादपि चतिः ॥ १५९ ॥
वर्षं स्यात् पञ्चभिर्यामैः कुंडले सूर्यचन्द्रयोः ।
नितान्तं निकटे रक्ते सद्यो गर्जति मेघराट् ॥ १६० ॥
द्वे द्वे चुद्रविशाले चेत् कुण्डले सूर्यचन्द्रयोः ।
बहुवृष्टिरनेकाहं तदा तत्र भविष्यति ॥ १६१ ॥
द्वे द्वे सूर्यस्य चन्द्रस्य कुण्डले पञ्चवर्णके ।
त्र्यहं यावत्तदा तत्र बहुवृष्टिर्भविष्यति ॥ १६२ ॥
कुण्डलानि यदि त्रीणि त्रीणि स्युः सूर्यचन्द्रयोः ।
मासि भाद्रपदे तर्हि यावन्मासं सुवृष्टयः ॥ १६३ ॥
नित्यं नवनवं यत्र कुण्डलं सूर्यचन्द्रयोः ।
विघ्नति कर्तरीकीटाः शलभा वा भृशं कृषिम् ॥१६४॥
एकं तु कुण्डलं चंद्रे सूर्ये चेत् कुण्डलद्वयम् ।
तृतीये दिवसे तत्र भूरि वर्षं भविष्यति ॥ १६५ ॥
शशिनः कुंडलं श्वेतं रक्तं सूर्यस्य वर्षति ।
वैपरीत्ये घटाटोपो जायते स न वर्षति ॥ १६६ ॥

सूर्यस्य कुण्डलं श्वेतमेकं वा कुण्डलद्वयम् ।
तदा पादपविध्वंसी प्रचण्डः पवनो वहेत् ॥ १६७ ॥
सूर्यस्य कुण्डलं पञ्चवर्णं चेद् बहुविस्तृतम् ।
तदा घनघटाटोपो बहुवृष्टिश्च जायते ॥ १६८ ॥
सद्यो वर्षं भवेत् पीते दीप्तार्के रविमण्डले ।
स्निग्धे क्षुराभ्रकाकीर्णे सुविस्तीर्णे सुवर्तुले ॥१६९॥
कुंडलं निशि चन्द्रस्य प्रातर्वातं प्रचारयेत् ।
अपि प्रवर्तयेद्वर्षां परिधिः सहकुंडलः ॥ १७० ॥
इन्दोः क्षुद्रविशाले द्वे भवेतां धूम्रकुण्डले ।
अनावृष्टिस्तदा तत्र जायते वायुसंचरः ॥ १७१ ॥
कुण्डले तु सुविस्तीर्णे यदि तारान्तराश्रिता ।
वायुर्वहत्यवृष्टिर्वा वृष्टिर्वा बहुवासरा ॥ १७२ ॥
उदितं तु निशानाथं परिवेषो रुणद्धि चेत् ।
जीमूतवर्णः स्निग्धश्च महामेघस्तदा भवेत् ॥१७३॥

## इन्द्रायुधम् ।

इन्द्रायुधं तु द्विविधं धनुरैरावतं तथा ।
इन्द्रः सूर्यकरस्थानः प्राणो योऽयं प्रकाशते ॥ १७४ ॥
नीरांतराः करा भानोः पवनेन विघट्टिताः ।
सप्तवर्णा धनुःसंस्था दृष्टा इन्द्रधनुर्मतम् ॥ १७५ ॥
अच्छिन्नं द्युतिमत् स्निग्धं भूगाढं द्विःकृतं धनुः ।
अनुलोमं प्रशस्तं स्याज्जलं तद्धि प्रयच्छति ॥ १७६ ॥
अवनिगाढमच्छिन्नं प्रतिकूलं धनुर्द्वयम् ।
कदाचिदपि दृश्येत न प्रशस्तं तदिष्यते ॥ १७७ ॥

अवृष्टिकृज्जलोद्भूतं भूमिजं सस्यनाशकृत् ।
वल्मीकजं संगरकृद् वृत्तजं व्याधिकृद्धनुः ॥ १७८ ॥
अवृष्ट्यां कारयेद् वृष्टिं वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयेत् ।
पूर्वस्यां पश्चिमायां तु दृष्टं वृष्ट्यै सदा भवेत् ॥१७९॥
सूर्यास्तसमये प्राच्यां भवेदिन्द्रधनुर्यदि ।
द्वादशे प्रहरे तत्र पूर्णं वर्षा भविष्यति ॥ १८० ॥
प्रभाते पश्चिमं यत्र दृश्यते वासवं धनुः ।
वारुणे सति नक्षत्रे शीघ्रं वर्षति वासवः ॥ १८१ ॥
यद्युत्तरादिन्द्रधनुस्तदाऽकस्मात् प्रवर्षति ।
दक्षिणाऽवग्रहं कुर्य्याद् वर्षं वा बहुवासरम् ॥ १८ ॥
अर्द्धविम्बं यदाकाशे धनुरैन्द्रं प्रदृश्यते ।
तदाऽत्यन्तं सुवृष्टिः स्यादत्यन्तं च समर्घता ॥१८३॥
बुधसूर्यातिरिक्तेषु वारेष्विन्द्रधनुर्यदि ।
तदा वर्षति पर्जन्यश्चतुर्थे पञ्चमेऽहनि ॥ १८४ ॥
एतदिन्द्रधनुर्वक्रं तदेव ऋजुरोहितम् ।
ऐरावतं च तत् प्रोक्तं फलमस्य धनुःसमम् ॥१८५॥

दण्डः, त्रिशूलं, मत्स्यः, अमोघाः—

सूर्यात् समुत्थिता रेखाऽमोघ इत्यभिधीयते ।
साऽग्रेण खण्डिता दण्डस्तिस्रो रेखास्त्रिशूलकम् ॥१८६॥
द्वाभ्याममोघरेखाभ्यां भिन्नदिग्भ्यां तु मत्स्यकः ।
सत्स्वप्येवं विशेषेषु सांकर्य्येणोच्यते फलम् ॥१८७॥
रवेः कराः सिताः स्निग्धा आदिमध्यांतगामिनः ।
अव्युच्छिन्ना अमोघाख्या ऋजवो वृष्टिहेतवः ॥ १८८ ॥

अमोघा दक्षिणावर्ता दीर्घा उद्द्योतिनोऽमलाः ।
सरला विरले व्योम्नि दृष्टाः श्रेयस्करा मताः ॥१८६॥
अमोघाः कलुषा ह्रस्वाः कुटिला विकृता अपि ।
विच्छिन्ना विषमा ध्वस्ना वामावर्ता अवृष्टिदाः ॥१६०॥
बभ्रुकल्माषकपिलाः शवला हरितोऽरुणाः ।
विचित्रा अपि सप्ताहादमोघा वृष्टिकारिणः ॥१६१॥
अमोघकिरणा भानोः सन्ध्यायां घननिःसृताः ।
भूसमे रसितं मेघे बहुवर्षणलक्षणम् ॥ १६२ ॥
वर्षन्त्यमोघकिरणा उदितस्यास्तमेष्यतः ।
तत्रैवाहन्येकरेखास्त्रिरेखास्तु त्र्यहांतरे ॥ ६३ ॥
अमोघरेखा सन्ध्यायामुत्तरां बहु लम्बते ।
तदा तृतीयदिवसे वृष्टिस्तत्र भविष्यति ॥ १६४ ॥
अमोघरेखा सन्ध्यायामुत्तरां यदि लम्बते ।
शीतकालेऽतिशीतं स्याद्वर्षाकाले तु वर्षति ॥१६५॥
पश्चिमादुत्थिता सायं रेखा खे खण्डिता यदि ।
तदातिवर्षा जायेत निशांते वा परेऽहनि ॥ १६६ ॥
प्रातः पूर्वोत्थिता रेखा पश्चिमामुत्तरामपि ।
यदि याति तदा वर्षा दशाहं वायवोऽथवा ॥ १६७ ॥
द्वौ चत्वारोऽपि वा षड् वा मत्स्या यदि भवन्ति चेत् ।
एवमिन्द्रधनुस्तर्हि वायुरत्युग्रमुद्वहेत् ॥ १६८ ॥
सूर्यांशुमरुदभ्राणां संघातो दण्डवत्स्थितः ।
स दण्डः कोणगो राज्ञां द्विजानां दिक्षु दुःखदः ।
प्राङ्मध्यसन्धिदृष्टोऽयं युद्धसम्भावनाकरः ।
श्वेतादिवर्णा विप्रादीन् हन्ति स्वाभिमुखां दिशम् ॥२००॥

१२६-सन्ध्या, कुण्डल, इन्द्रधनुष, दण्ड, त्रिशूल, मत्स्य और अमोघ ये सात विकार सूर्य की किरणों से पैदा होते हैं।

## सन्ध्या ।

१२७-दिन और रात्रि की सन्धि में दो या तीन नाड़ीमात्र के समय को सन्ध्या कहते हैं अथवा जब तक ताराओं का दर्शन हो उस काल को सन्ध्या कहते हैं ।

१२८-सन्ध्या के समय में यदि शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चले, आकाश निर्मल हो और दिशाएँ लालकमल की तरह प्रभा वाली हों तो शुभ समझना चाहिये ।

१२९-सब दिशाओं में चमकती हुई यदि सन्ध्या दिखाई देती हो तो महामेघ का उदय समझना चाहिये और वृष्टि होगी।

१३०-यदि सन्ध्या वैडूर्यकमल और किञ्जल्क ( कमल केसर ) की प्रभा के सदृश तथा कुवलय ( कमल ) की सी प्रभा वाली हो और वायु रहित तथा सूर्य प्रकाशित हो तो शीघ्र ही वर्षा करती है ।

१३१-मत्स्य, अमोघ, परीवेष, परिधि और इन्द्रधनुष आदि स्निग्ध सूर्य की किरणों में वृष्टि होती है, रूक्ष और वैकृत से वृष्टि नहीं होती है ।

१३२-प्रातःकाल की सन्ध्या मत्स्य वाली और सायंकाल की सन्ध्या अमोघ वाली हो तो यह मेघ का अव्यर्थ योग है, अवश्य ही वृष्टि होगी ।

१३३-सन्ध्या के समय दुष्ट आकृति वाले बादलों से, धूम से, बर्फ से और गन्धर्वपुर के दिखाई देने से अनावृष्टि होती है, असमय में शस्त्र-कोप होता है ।

१३४-शिशिर आदि छः ऋतुओं में अपनी प्रकृति के अनुसार सन्ध्या यदि शोण ( कुछ लाल ), पीत, श्वेत, चित्रविचित्र कमल की आभावाली और खून की सी रंगवाली हो तो शुभ समझना चाहिए।

१३५-सन्ध्या के समय यदि पूर्व का आकाशमण्डल भैंसे, ऊँट, सूअर, बैल, हाथी तथा पर्वताकार वाले मेघों से आच्छादित हों तो पाँच या सात रात्रि में वहाँ वर्षा समझनी चाहिये । ईशानकोण में ऊपर लिखे आकार वाले यदि मेघ हों तो अर्धरात्रि में वर्षा आवेगी । अर्थात् शीघ्र ही वर्षा समझनी चाहिये ।

१३७-सन्ध्या के समय उत्तर दिशा में पर्वतपंक्ति दिखाई देने से वहाँ तीसरे दिन वृष्टि होती है।

१३८-सन्ध्या के समय वायव्यकोण में उपर्युक्त वैसे ही मेघ दिखाई देने से रातदिन वात-वर्षा होती है और पश्चिम में पर्वतमाला दिखाई देने से सात या तीन दिन वर्षा होती है।

१३९-दक्षिण में सन्ध्याकाल के समय यदि कोटीनार ( काँगरेदार दिवाले ) के समान वैसे ही उपर्युक्त मेघ दृष्टिगत हों तो तीन, पाँच या सात रात वर्षा होती है।

१४०-सन्ध्याकाल में आग्नेयकोण के अन्दर उपर्युक्त मेघ दिखाई देवें तो उसी रात में निश्चय से वर्षा समझनी चाहिये।

१४१-सन्ध्या के समय बहुपुट ( अधिकतह ) वाले मेघ हों तथा वे मोर, चातक, जपा ( लाल पुष्प ), तोता, जलजन्तु, लहरें और पहाड़ों के समान हों तो उन मेघों से शीघ्र ही वर्षा होजाती है।

१४२-शान्त ( सूर्य से अप्रकाशित ) दिशा से उठेहुए वीरण गुल्म की आभा वाले सफ़ेद अथवा सफ़ेद किनारों वाले मेघों के द्वारा दाहिनी ओर से यदि सूर्य का आच्छादन हो तो वृष्टि समझनी चाहिये।

१४३-दोनों सन्ध्या के समय हाथी, घोड़े पर्वत, छत्र और ध्वजा के समान बादलों का होना शुभ है। पलाल, धूम वाले स्निग्ध बादल बल वृद्धि करते हैं।

१४४-दोनों सन्ध्या के समय पुर के आकार, वृक्ष के आकार वाले और गहरे लालवर्ण वाले झुके हुए मेघ शुभ समझे जाते हैं।

## कुण्डल।

१४५-कुण्डल दो तरह का होता है परिधि और परिवेष। परिधि भी दो तरह की होती है प्रत्यर्क ( सूर्य को लक्ष्य कर ) और प्रतिचन्द्र।

## प्रत्यर्क परिधि।

१४६-सम, स्निग्ध और ऋतु के अनुकूल वर्ण वाली प्रत्यर्क परिधि शुभ होती है वैदूर्य के सदृश आभावाली स्वच्छ और श्वेत परिधि सुभिक्ष और क्षेम करती है।

१२६-सन्ध्या, कुण्डल, इन्द्रधनुष, दण्ड, त्रिशूल, मत्स्य और अमोघ ये सात विकार सूर्य की किरणों से पैदा होते हैं।

## सन्ध्या ।

१२७-दिन और रात्रि की सन्धि में दो या तीन नाड़ीमात्र के समय को सन्ध्या कहते हैं अथवा जब तक ताराओं का दर्शन हो उस काल को सन्ध्या कहते हैं।

१२८-सन्ध्या के समय में यदि शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चले, आकाश निर्मल हो और दिशाएँ लालकमल की तरह प्रभा वाली हों तो शुभ समझना चाहिये।

१२९-सब दिशाओं में चमकती हुई यदि सन्ध्या दिखाई देती हो तो महामेघ का उदय समझना चाहिये और वृष्टि होगी।

१३०-यदि सन्ध्या वैडूर्यकमल और किञ्जल्क ( कमल केसर ) की प्रभा के सदृश तथा कुवलय ( कमल ) की सी प्रभा वाली हो और वायु रहित तथा सूर्य प्रकाशित हो तो शीघ्र ही वर्षा करती है।

१३१-मत्स्य, अमोघ, परीवेष, परिधि और इन्द्रधनुष आदि स्निग्ध सूर्य की किरणों में वृष्टि होती है, रूक्ष और वैकृत से वृष्टि नहीं होती है।

१३२-प्रातःकाल की सन्ध्या मत्स्य वाली और सायंकाल की सन्ध्या अमोघ वाली हो तो यह मेघ का अव्यर्थ योग है, अवश्य ही वृष्टि होगी।

१३३-सन्ध्या के समय दुष्ट आकृति वाले बादलों से, धूम से, बर्फ से और गन्धर्वपुर के दिखाई देने से अनावृष्टि होती है, असमय में शस्त्र-कोप होता है।

१३४-शिशिर आदि छः ऋतुओं में अपनी प्रकृति के अनुसार सन्ध्या यदि शोण ( कुछ लाल ), पीत, श्वेत, चित्रविचित्र कमल की आभावाली और खून की सी रंगवाली हो तो शुभ समझना चाहिए।

१३५-सन्ध्या के समय यदि पूर्व का आकाशमण्डल भैंसे, ऊँट, सूअर, बैल, हाथी तथा पर्वताकार वाले मेघों से आच्छादित हों तो पाँच या सात रात्रि में वहाँ वर्षा समझनी चाहिये। ईशानकोण में ऊपर लिखे आकार वाले यदि मेघ हों तो अर्धरात्रि में वर्षा आवेगी। अर्थात् शीघ्र ही वर्षा समझनी चाहिये।

१३७-सन्ध्या के समय उत्तर दिशा में पर्वतपंक्ति दिखाई देने से वहाँ तीसरे दिन वृष्टि होती है।

१३८-सन्ध्या के समय वायव्यकोण में उपर्युक्त वैसे ही मेघ दिखाई देने से रातदिन वात-वर्षा होती है और पश्चिम में पर्वतमाला दिखाई देने से सात या तीन दिन वर्षा होती है।

१३९-दक्षिण में सन्ध्याकाल के समय यदि कोटीनार ( काँगरेदार दिवाले ) के समान वैसे ही उपर्युक्त मेघ दृष्टिगत हों तो तीन, पाँच या सात रात वर्षा होती है।

१४०-सन्ध्याकाल में आग्नेयकोण के अन्दर उपर्युक्त मेघ दिखाई देवें तो उसी रात में निश्चय से वर्षा समझनी चाहिये।

१४१-सन्ध्या के समय बहुपुट ( अधिकतह ) वाले मेघ हों तथा वे मोर, चातक, जपा ( लाल पुष्प ), तोता, जलजन्तु, लहरें और पहाड़ों के समान हों तो उन मेघों से शीघ्र ही वर्षा होजाती है।

१४२-शान्त ( सूर्य से अप्रकाशित ) दिशा से उठेहुए वीरण गुल्म की आभा वाले सफेद अथवा सफेद किनारों वाले मेघों के द्वारा दाहिनी ओर से यदि सूर्य का आच्छादन हो तो वृष्टि समझनी चाहिये।

१४३-दोनों सन्ध्या के समय हाथी, घोड़े पर्वत, छत्र और ध्वजा के समान बादलों का होना शुभ है। पलाल, धूम वाले स्निग्ध बादल बल वृद्धि करते हैं।

१४४-दोनों सन्ध्या के समय पुर के आकार, वृक्ष के आकार वाले और गहरे लालवर्ण वाले झुके हुए मेघ शुभ समझे जाते हैं।

## कुण्डल।

१४५-कुण्डल दो तरह का होता है परिधि और परिवेष। परिधि भी दो तरह की होती है प्रत्यर्क ( सूर्य को लक्ष्य कर ) और प्रतिचन्द्र।

### प्रत्यर्क परिधि।

१४६-सम, स्निग्ध और ऋतु के अनुकूल वर्ण वाली प्रत्यर्क परिधि शुभ होती है वैदूर्य के सदृश आभावाली स्वच्छ और श्वेत परिधि सुभिक्ष और क्षेम करती है।

१४७-प्रत्यंक परिधि यदि सूर्य के उत्तर में हो तो वृष्टि, दक्षिण में हो तो वायु और दोनों तरफ स्थित हो तो जल का भय करती है।

१४८-परिधियाँ यदि सूर्य के दोनों तरफ विम्ब से भिड़ी हुई हो तो अधिक वर्षा होती है, चारों ओर स्थित हो तो वर्षा नहीं होती।

## परिवेष ।

१४९-आकाश के अन्दर सूर्य और चन्द्रमा की जो किरणें वायु से प्रतिमूर्छित ( दबाई ) हुई सूक्ष्म अभ्र के अन्दर गोलाकार होती है उन्हें परिवेष नाम से कहते हैं।

१५०-ग्रह और तारों के परिवेषों के फल उन्हीं तारों और ग्रहों के फल के समान समझना चाहिये। किन्तु चातुर्मास्य में परिवेष जल बरसाने वाली ही होती हैं।

१५१-दिक्पतियों के कारण बादलों की तरह लाल, श्वेत, कबूतरों के रंग के पाण्डु, मेचक ( काले ), शबल ( चित्रविचित्र ) तथा संकर ( सब मिले हुए ) रंग के परिवेष हुआ करते हैं।

१५२-लाल, नीले, सुफेद, कबूतरी, कपिल रग वाले पीले और हरे रंग परिवेष पूर्वादि दिशाओं में वर्षा करते हैं। यह नारद ऋषि का मत है।

१५३-शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत् और हेमन्त इन छः ऋतुओं में यदि क्रमशः चाष, मयूर, रजत ( चाँदी ) तैल, दूध और जल के रंग के समान स्निग्ध परिवेष प्रकट हों वें तो शुभ होते हैं।

१५४-अपने एक ही वर्ण से युक्त, स्निग्ध, अच्छा फैला हुआ और सुराकार अभ्र से युक्त परिवेष अपनी ऋतु में शीघ्र ही वर्षा करता है।

१५५-संपूर्ण आकाश में व्याप्त अनेक रंग वाला, लाल प्रभावाला, रूखा, टूटे धनुष वाला और शकट ( गाड़े ) के समान स्थित हुआ परिवेष पाप का कारण होता है।

१५६-जो परिवेष बारंबार दिखाई देकर विलीन होजाता है, वह मन्द फल होता है। मयूर के गले की सी आभावाला परिवेष अधिक वर्षा करता है।

१५७-कपिल, स्निग्ध, दूध, तैल, जल, धनुष, शृङ्गारक और रक्त की सी आभा वाले परिवेष शुभ होते हैं। इस तरह परिवेषों के विषय में नारद का मत है।

१५८-परिवेष यदि ग्रहनक्षत्र-मण्डल के अन्तर्गत हो तो तीन दिन में वर्षा हो जाती है । शनि के मण्डल में होने पर छोटे धान्यों का क्षय और वात वृष्टि होती है ।

१५९-मण्डल में शुक्र के होने से दुर्भिक्ष और बुध के होने से धान्य नाश होता है । यदि मण्डल में ग्रहों का युद्ध होतो अनावृष्टि होती है । और ग्रहयोग से भी हानि होती है ।

१६०-सूर्य चन्द्रमा के कुण्डल होने से पाँच प्रहर में वृष्टि होती है । यदि कुण्डल लाल अत्यन्त पास ही हो तो शीघ्र ही मेघगर्जना होती है ।

१६१-सूर्य चन्द्रमा के यदि दो दो छोटे-बड़े कुण्डल हों तो वहाँ उस देश में अनेक दिन तक बहुवृष्टि होती है ।

१६२-सूय चन्द्रमा के दो दो कुण्डल यदि पाँच रंग के हों तो तीन दिन तक वहाँ बहुवृष्टि होगी ।

१६३-सूर्य चन्द्रमा के यदि तीन-तीन कुण्डल हों तो भाद्रपद में पूरे महीने तक अच्छी वर्षा होती है ।

१६४-सूर्य चन्द्रमा के यदि नित्य नये-नये कुण्डल होते हों तो खेती को कर्त्तरीकीट, ( काट देने वाले कीड़े ) अथवा टिड्डियाँ अवश्य नष्ट कर देंगी ।

१६५-चन्द्र के एक कुण्डल और सूर्य के यदि दो ़ण्डल होवें तो तीसरे दिन वहाँ अधिक वर्षा होगी ।

१६६-चन्द्रमा के श्वेतकुण्डल और सूर्य के लालकुण्डल हो तो वर्षा होती है । इससे यदि विपरीत कुण्डल होवे तो केवल घटाटोप ही हो जाता है, वर्षा नहीं होती ।

१६७-सूर्य के एक वा दो सफ़ेद कुण्डल होवें तो उससे पेडों को उखाड़ने वाली प्रचण्ड हवा चलेगी ।

१६८-सूर्य के पाँच वर्ण वाला विस्तृत कुण्डल होने से खूब बादल छा जाते हैं और खूब वर्षा होती है ।

१६९-देदीप्यमान सूर्य के यदि पीला, विस्तीर्ण, क्षुराभ्रक से व्याप्त और गोलाकार कुण्डल होतो तत्काल वर्षा समझनी चाहिये ।

१७०-रात्रि में चन्द्रमा के कुण्डल होने से प्रातःकाल हवा चलती है । कुण्डल के साथ परिधि होतो वर्षा भी आती है ।

१७१-चन्द्रमा के यदि छोटे बड़े दो कुण्डल धूम वर्ण के हों तो अनावृष्टि होगी, केवल वायु-मात्र चलेगी।

१७२-कुण्डल विस्तीर्ण हो और उसके अन्दर तारे मकते हों तो वायु चलती है, वर्षा नहीं होती है अथवा वर्षा होती है तो कई दिन तक होती रहती है।

१७३-ऊगते हुए चन्द्रमा को मेघ के रंग वाला, स्निग्ध परिवेष घेर लेवे तो महावृष्टि होती है।

## इन्द्रायुध।

१७४-इन्द्रायुध दो प्रकार का होता है- धनुष और ऐरावत-सूर्य की किरणों नें स्थित प्राण, जो प्रकाश करता है, वही इन्द्र कहलाता है।

१७५-पवन से टकराई हुई सूर्य की किरणें जो जल के अन्दर प्रविष्ट होजातो हैं उससे सात वर्ण वाले धनुष की स्थिति होती है। यही इन्द्रधनुष कहलाता है।

१७६-कुछ कटाहुआ, प्रकाशवाला, स्निग्ध, भूमि पर गाढा ( कुछ जोशदार ) दूसरी जिसकी परछाई भी हो और जो अनुलोम भी हो वह धनुष अच्छा होता है। इससे जल आता है।

१७७-पृथ्वी पर गाढ़े रंग के, न टूटे हुये प्रतिकूल दो धनुष यदि कभी भी हों तो वे शुभ नहीं हैं।

१७८-किसी जल के साथ उठाहुआ धनुष अवृष्टि करता है, भूमि से उठा हुआ धान्य-नाश करता है, साँप की बम्बी से उठा हुआ युद्ध करने वाला और किसी वृक्ष से उठा हुआ धनुष व्याधि पैदा करता है।

१७९-वर्षा न होते हुए पूर्व में धनुष दीखे तो वृष्टि होती है और यदि वर्षा होते हुए धनुष दीखे तो वृष्टि का नाश होता है। पश्चिम में धनुष होने से सदा वृष्टि होती है।

१८०-सूर्य के अस्त समय में पश्चिम दिशा के अन्दर इन्द्रधनुष के होने से बारहवें प्रहर में वहाँ पूर्ण वृष्टि होती है।

१८१-जहाँ प्रातःकाल पश्चिम दिशा के अन्दर इन्द्रधनुष हो और वारुण ( जल बरसाने वाले ) नक्षत्र हों तो वहाँ शीघ्र ही वर्षा होती है।

१८२-उत्तर में इन्द्रधनुष के होने से अचानक वर्षा होती है । और दक्षिण में इन्द्रधनुष के होने से वर्षा की रुकावट होती है अथवा कई दिन तक वर्षा होती रहती है ।

१८३-आकाश में आधे इन्द्रधनुष के होने से अत्यन्त शुभ वर्षा और समर्घता होती है ।

१८४-बुध और सूर्य को छोड़कर अन्यवारों में इन्द्रधनुष के होने से चौथे, पाँचवे दिन वर्षा होती है ।

१८५-ऊपर कहा हुआ इन्द्रधनुष टेढ़ा होता है, यही यदि सीधा और लाल हो तो ऐरावत कहलाता है । इसका भी फल इन्द्रधनुष के समान ही समझना चाहिये ।

## दण्ड, त्रिशूल, मत्स्य, अमोघ ।

१८६-सूर्य से उठी हुई रेखा अमोघ कहलाती है, वह अग्र भाग से खण्डित हो तो उसी का नाम दण्ड होजाता है और यदि ऐसी तीन रेखायें हों तो उसका नाम त्रिशूल है ।

१८७-भिन्न दिशाओं से उठी हुई दो अमोघ रेखा से मत्स्य होता है । इस प्रकार की विशेषता होने पर भी संकरता से फल कहा जाता है ।

१८८-अमोघ नाम की सूर्य की किरणें यदि श्वेत, स्निग्ध, पूर्ण और आकाश में आदि-मध्य-अन्त तक जाने वाली हों तो वृष्टि होती है ।

१८९-साफ़ आकाश में अमोघ यदि दक्षिण की ओर घूमे हुए लंबे, चमकीले, साफ़ और सरल दिखाई देते हों तो वे श्रेष्ठ होते हैं ।

१९०-जो अमोघ मैले, छोटे, टेढ़े, विकृत, कटे हुऐ, विषम, नष्ट से हुए और बाँई ओर घूमे हुए होते हैं वे वृष्टि बरसाने वाले नहीं होते ।

१९१-अमोघ यदि भूरे, नाना वर्ण, कपिल, हरित-रक्त, अथवा विचित्र रंग के हों तो उन्हें वृष्टि करने वाले समझने चाहिये ।

१९२-सन्ध्या के समय बादलों से निकली हुई सूर्य की अमोघ किरणें दृष्टिगत होने से पृथ्वी पर झुके बादलों से बहु वृष्टि का लक्षण समझना चाहिये ।

१९३-उदय और अस्त होते हुए सूर्य की अमोघ रेखा यदि एक हो तो उसी दिन वर्षा आती है, यदि वे तीन हों तो तीन दिन के पश्चात् वृष्टि होती है ।

१६४—यदि अमोघ रेखा सन्ध्याकाल में उत्तर दिशा के अन्दर अधिक लटकी ( निकली ) हुई हों तो तीसरे दिन वहाँ वृष्टि होगी ।

१६५—यदि उत्तर दिशा में सन्ध्या के समय अमोघ रेखा अधिक लम्बी ( निकली हुई ) हो तो शीतकाल में अधिक शीत पड़ेगा और वर्षाकाल में अच्छी वर्षा होगी ।

१६६—पश्चिम से उठी हुई अमोघ रेखा सायंकाल यदि आकाश में खण्डित दिखाई दे तो उस रात्रि के अन्त में अथवा दूसरे दिन अधिक वर्षा होगी ।

१६७—प्रातःकाल पूर्व से उठी हुई रेखा यदि पश्चिम में और उत्तर में भी जावे तो दस दिन तक वर्षा होगी अथवा वायु चलेगी ।

१६८—दो, चार अथवा छः यदि मत्स्य हो जावें और इसी प्रकार इतने ही इन्द्रधनुष होजावें तो प्रचण्ड वायु चलेगी ।

१६९—सूर्य किरण, मरुत् और अभ्रों का संघात यदि दण्ड की तरह ( एक सीध में ) स्थित हो और वह दण्ड दिशाओं में किसी कोण की तरफ हो तो वह दण्ड राजा और ब्राह्मणों को दुःखप्रद होता है ।

२००—यदि यह दण्ड पूर्व और मध्य की सन्धि में हुआ होतो युद्ध की सम्भावना करता है । वह दण्ड यदि श्वेत आदि रंग का होतो अपनी सामने की दिशा में ( स्थित ) ब्राह्मणादि को मारता है ।

इति सन्ध्यादि रविकराधिकार ( ३ )

## ४—उल्काधिकारः।

वज्रं विद्युन्महोल्का च धिष्ण्या तारेति पञ्चधा।
उल्केति संज्ञया ख्याता अन्तरिक्षोद्भवाग्नयः ॥२०१॥

विद्युत्तारादिनैः षड्भिरुल्का पक्षेण वीक्षिता।
वज्रं धिष्ण्या त्रिभिः पक्षैः फलपाकाय कल्पते ॥२०२॥

अशनिर्विद्युदुल्का वा धत्ते यावत् फले बलम्।
धिष्ण्या तदर्द्धं तारा तु धिष्ण्यार्द्धं कुरुते फलम् ॥२०३॥

नादेन महता वज्रं विदारयदिलातलम्।
अश्मवेश्मतरुप्राणितनूपरि पतत्यलम् ॥ २०४ ॥

ह्रादिनी वज्रमापोत्रं भिदिरं भिदुरं भिदुः।
जम्भारिर्जाम्बविर्दम्भो दम्भोलिरशनिः पविः ॥२०५॥

शतधारं शतारंगौ मेघभूतिर्गिरिज्वरः।
शतकोटिः स्वरुः शम्बः कुलिशं गिरिकण्टकः ॥२०६॥

विद्युत्तटतटारावा सहसा त्रासकारिणी।
ज्वलिता निपतत्याशु जन्तुष्विन्धनराशिषु ॥ २०७॥

धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा च धनूंषि दश दृश्यते।
ज्वलितांगारसंकाशा द्विहस्ता चान्तराधिका ॥२०८॥

तारा शुक्ला हस्तदीर्घा ताम्रा वाम्बुजतन्तुवत्।
याति तिर्यगधश्चोर्ध्वं बहुधाक्षिप्तबाणवत् ॥ २०९ ॥

अशनिश्चक्रसंस्थाना विशालकुटिला तडित्।
रेखेव लिखिता व्योम्नि ताराधिष्ण्यापि तादृशी ॥२१०॥

बृहच्छिखा च सूक्ष्माग्रा रक्तनीलशिखोज्ज्वला ।
पौरुषप्रमिता नानाविधोल्केत्याह काश्यपः ॥ २११ ॥
पतन्ती वर्द्धते तूल्का दीर्घा पुरुषसंमिता ।
शिरःस्थूला दीर्घतनुपुच्छा बहुविधाकृतिः ॥ २१२ ॥
हलाखकपिनक्रोष्ट्रदंष्ट्रिप्रेतखराकृतिः ।
गोधा हि धूमरूपा च पापा या च द्विमस्तका ॥२१३॥
गजाश्वगिरिचन्द्राब्जहंसमीनध्वजाकृतिः ।
श्रीवत्सस्वस्तिकाकारा सुभिक्षादिशुभावहा ॥ २१४ ॥
चन्द्रार्कस्पर्शिनी योल्का या च चन्द्रार्कनिःसृता ।
सभूकम्पा च दुर्भिक्षानावृष्ट्याद्यशुभावहा ॥ २१५ ॥

२०१—अन्तरिक्ष में पैदा हुई अग्नियां, वज्र, विद्युत्, महोल्का, धिष्ण्या और तार इन पांच नामों से कही जाती हैं।

वज्र १२ अगुल का तिरछा दण्डाकार होता है। इसी का दूसरा भेद 'महावज्र' है। यह त्रिकोण होता है। इसकी प्रत्येक भुजा हल के फाल के समान होती है और प्रत्येक भुजा के बीच में एक लम्बी कील निकली रहती है। यह ( -V̇- ) महावज्र होता है। विद्युत् प्रसिद्ध है। उल्का और धिष्ण्या दोनों में प्रकाश होता है किन्तु उल्का का प्रकाश धीरे २ बढ़ता है और धिष्ण्या में एक दम प्रकाश होकर शनैः शनैः क्षीण होजाता है। तारा टूट ने में प्रकाश नहीं होता, एक सीधी पतली सी रेखा होकर नष्ट हो जाती है।

२०२—बिजली और तारा छः दिन, उल्का पक्ष मात्र और वज्र तथा धिष्ण्या तीन पक्ष ( ४५ दिन ) से दिखते हों तो ये फलपाक अच्छा करते हैं, सुभिक्ष होगा।

२०३—वज्र, बिजली और उल्का इनके फल में जितना बल है उससे आधा धिष्ण्या के फल में और धिष्ण्या से आधा तारा के फल में बल समझना चाहिये।

२०४—वज्र जब गिरता है, तब बड़ी भारी आवाज से भूमि को विदार देता है। यह मकान, वृक्ष और प्राणियों के शरीर पर अधिक गिरता है।

२०५—२०६—ह्लादिनी, वज्र, आपोत्र, भिदिर, भिदुर, भिदु, जम्भारी, जाम्बवि, दंभ, दंभोलि, अशनि, पवि, शतधार, शतार, गौ, मेघभूति, गिरिज्वर, शतकोटि, स्वरु, शंब, कुलिश और गिरिकण्टक ये वज्र के नाम हैं।

२०७—ईंधन के समूह पर और जीवों पर तटतट शब्द करती हुई, सभी को त्रास देने वाली, जलती हुई बिजली सहसा गिरजाती है।

२०८—धिष्ण्या, पतली और छोटी पूंछवाली जलते हुए अंगारे के समान तथा दो हाथ एवं इससे कुछ अधिक भी होती है। यह दश धनुष* तक दिखाई देती है।

२०९–तारा एक हाथ लंबी, सफ़ेद वा ताम्र, कमल तंतु की तरह होती है। वह चलाये हुए बाण की तरह ऊपर नीचे वा तिरछो जाती है।

२१०–वज्र चक्र की तरह होता है, बिजली टेढ़ी और बड़ी होती है। आकाश में खैंची हुई रेखा के समान तारा और धिष्ण्या भी वैसी ही होती है।

२११–काश्यप ऋषि कहते हैं कि—उल्का लंबी शिखावाली, आगे का सूक्ष्म भागवाली, लाल नीली शिखा से उज्वल और पुरुष के प्रमाण की इत्यादि नाना प्रकार की होती है।

२१२–उल्का गिरती हुई बढ़ती है, इसका शिर स्थूल होता है, पूँछ पतली और लंबी होती है और पुरुष के प्रमाण की होती है। इस तरह अनेक आकृति की उल्का होती है।

२१३–जो उल्का हल, अश्व, वानर, मगरमच्छ, ऊँट, दाढ़वाले सूअर आदि प्रेत, गर्दभ, गोधा, सर्प और धूमरूप की होती है तथा जो दो मस्तक की होती है वह खराब होती है।

२१४–जो उल्का हाथी, घोड़ा, पर्वत, चन्द्रमा, कमल, हंस, मछली, ध्वजा, श्रीवत्स और स्वस्तिक आकृति की होती है वह सुभिक्ष आदि शुभ फल देती है।

२१५–जो उल्का चाँद और सूरज को छूने वाली और जो चाँद और सूरज से निकली हुई होती है वह भूकंप के सहित दुर्भिक्ष, अनावृष्टि आदि अशुभ फल देती है।

इति वज्राद्युल्काधिकार (४)

* एक धनुष ८ हाथ लंबा होता है।

## ५–प्रकीर्णकाधिकारः ।

राहवः केतवस्तारा दिग्दाहः पांसुवर्षणम् ।
भूकम्पश्चेति षड् भावा उक्ता वैकारिकाह्वयाः ॥२१६॥

### राहवः ।

राहवः स्वपरज्योतीराहित्यादप्रकाशिनः ।
अपि सन्तोऽपि गच्छन्तो द्युमार्गेषु न भान्तिये ॥२१७॥
ग्रहवत् गतिमन्तस्ते तस्मादुक्तादुपग्रहाः ।
कीलाः स्वर्भानवो नागाः पाता इति चतुर्विधाः ॥२१८॥
ते कीलका अप्रकाशाः पिण्डा व्योम्नि भ्रमंति ये ।
स्वर्भानवः परद्योत्यपिण्डच्छायामयार्द्धकाः ॥ २१६ ॥
ग्रहाणां गतिमार्गा ये कक्षावृत्तेति विश्रुताः ।
बहुधाऽवर्तिता भोगास्ते नागा नागविग्रहाः ॥२२०॥
एतेषामेव नागानां ये सपाताः परस्परम् ।
त एव पातास्ते सर्वे राहवो निष्प्रभा यतः ॥ २२१ ॥

### कीलकराहवः ।

निष्प्रभाः सतमस्कत्वाददृश्याः संति भूरिशः ।
चन्द्रशुक्रादिवत् पिण्डाश्चन्द्रार्काद्यनुगामिनः ॥२२२॥
तत्रेन्दुवन्महाविम्बस्त्वष्टा नाम महाग्रहः ।
बिना पर्वं नयत्यर्कमण्डलं सतमस्कताम् ॥ २२३ ॥
ततोऽल्पविम्बाः सन्त्यन्ये ग्रहास्तामसकीलकाः ।
त्रयस्त्रिंशन्मिता राहुपुत्राख्या राहवश्च ते ॥ २२४ ॥

ध्वाङ्क्षः कबन्धी दण्डश्च ध्वजच्छत्रं च चामरम् ।
एते छिद्रकराः सूर्ये भूयोदृष्टास्तमोग्रहाः ॥ २२५ ॥
रूपाणि तेषामुदये चंडो वायुः सशर्करः ।
रजोवृतं ख, कालुष्यं जले, भूकम्पनं भवेत् ॥२२६॥
निर्घातश्च दिशां दाहो द्रुमस्वर्तुविपर्ययः ।
मृगपक्षिगणा दीप्ताः कीलकानां प्रभावतः ॥ २२७ ॥
केतूनामपि राहूणां कीलकानां च दर्शने ।
पृथक्फला न चोत्पातास्ते हि तत्प्रभवा मताः ॥२२८॥
कीलका येषु देशेषु दृश्यन्ते सूर्यविम्बगाः ।
अवृष्टया चातिवृष्टया च प्रजा तेषु प्रणश्यति ॥२२९॥
धूमस्फुलिंगज्वालादियुक्तास्ते प्रभवंति चेत् ।
तदाऽत्यन्तं प्रजापीडा दुर्भिक्षमरकादिभिः ॥ २३० ॥
एको द्वौ वहवो वा ते सदा पापफला रवौ ।
दंडध्वाङ्क्षकबन्धान्ये चन्द्रे दृष्टाः शुभावहाः ॥२३१॥

## स्वर्भानु-राहवः ।

ये परज्योतिषः पिंडाः पृथ्वीचन्द्रबुधादयः ।
तेषां प्रकाशितादर्द्धादर्द्धमन्यत् तमोमयम् ॥ २३२ ॥
तज्जाश्छायामयास्त्र्यस्त्र्याः उक्ताः स्वर्भानुराहवः ।
स्वर्भागे भानुरस्त्येषा तस्मात् स्वर्भानवः स्मृताः ॥२३३॥
मूर्तिच्छायामयी ज्योतिराहित्याद्राहुरुच्यते ।
अर्द्धं तमोमयं सिंही तज्जोऽसौ सैंहिकेयकः ॥ २३४ ॥
अहर्मित्रं ततो देवा वारुणी रात्रिरासुरी ।
रात्रौ सुदर्शनच्छिन्नमूर्द्धा राहुस्ततोऽसुरः ॥ २३५ ॥

छाया हि सा तमस्तस्मात् द्युचारी स ततो ग्रहः ।
भूच्छायया गृहीतेन्दुरुपरक्तो न दृश्यते ॥ २३६ ॥
न दृश्यते दृशा सूर्यश्चन्द्रच्छाया गृहीतया ।
तदित्थं ग्रहणं राहुग्रस्तयोः सूर्यचंद्रयोः ॥ २३७ ॥
स्वर्भानुर्ह वा आसुरिः सूर्यं तमसा विव्याध
अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ २३८ ॥
दूर्वाश्यामश्च हारिद्रो मरकाय तमोग्रहः ।
शुकाभः सस्यनाशाय वज्रपाताय पाटलः ॥ २३९ ॥
सुभिक्षाय सितो धूम्रः पीतो विमलकप्रभः ।
दुर्भिक्षायारुणश्यामकापोतकपिलप्रभः ॥ २४० ॥
अर्चिष्मानग्निभश्चाग्निभिये युद्धाय गैरिकः ।
बालार्केन्द्रधनुः पद्मरूपः शस्त्रप्रकोपकृत् ॥ २४१ ॥
अरुणांशुः पांसुधूमलोहितो वृष्टिनाशकृत् ।
आधूम्रोऽत्यल्पकं कृष्णः कापोतश्चातिवर्षति ॥ २४२ ॥
ग्रस्तं दृष्ट्वा शनिर्वृष्टिं शुक्रः सस्यं विघातयेत् ।
दृष्ट्वा ग्रस्तं गुरुर्दुष्ट दृष्टिदोषं निवारयेत् ॥ २४३ ॥
कार्तिके ग्रहणं हन्यात् मगधान् काशिकोशलान् ।
शूरसेनान् कलिंगोश्चान्यत्र क्षेमसुभिक्षकृत् ॥ २४४ ॥
मार्गे तु ग्रहणं हन्यात् पुण्ड्रकाश्मीरकौशलान् ।
तथाऽपरान्तकान् शेषे वृष्टिक्षेमसुभिक्षकृत् ॥ २४५ ॥
पौषे दृष्टं हंति सिंधून् विदेहान् कुकुरांस्तमः ।
देशान्तरे तु कुरुते दुर्भिक्षं स्वल्पवर्षणम् ॥ २४६ ॥
माघे तु ग्रहणे राहुर्हन्ति काश्यङ्गवङ्गजान् ।
देशान्तरे तु कुरुते वृष्टिं कर्षकसंमताम् ॥ २४७ ॥

फाल्गुने हन्त्यगुर्वंगावन्तिकाश्मकमेकलान् ।
चैत्रे कैकयपोण्ड्रौड्राश्मकान् वर्षति चित्रितम् ॥२४८॥
राधे कलिंगान् यौधेयान् हन्ति चेक्ष्वाकुजान् शकान् ।
ज्यैष्ठे साल्वान्निषादांश्च सस्यं वृष्टिं च नाशयेत् ॥२४९॥
आषाढ़े चीनकश्मीरगान्धारकपुलिन्दकान् ।
हंति माण्डलिकीं वृष्टिं कुरुते राहुरीक्षितः ॥ २५० ॥
श्रावणे चीनकाश्मीरगान्धारकपुलिन्दकान् ।
मध्यदेशकुरुक्षेत्रकाम्बोजयवनानपि ॥ २५१ ॥
हंति शारदधान्यं च शेषे क्षेमसुवृष्टिकृत् ।
भाद्रे सुराष्ट्रमगधसौवीरदरदाश्मकान् ॥ २५२ ॥
म्लेच्छान् कलिंगान् बङ्गाश्च हन्त्यन्यत्र सुभिक्षकृत् ।
आश्विने हंति वाल्हीकचीनकाम्बोजयावनान् ॥२५३ ॥
किरातानर्तपौण्ड्रांश्च शेषे भूरिसुभिक्षकृत् ।
राहुः सुभिक्षकृद्राधे श्रावणादिषु पञ्चसु ॥ २५४ ॥
प्रचण्डः पवनो विद्युद् गर्जितं परिवेषकः ।
भूकम्पश्चेति सप्ताहे जाता ग्रहणतोऽशुभा ॥ २५५ ॥
ग्रहणाद् यदि सप्ताहे सुवृष्टिर्जायते तदा ।
सर्वान् ग्रहणजान् दोषान्निपात्य कुरुते शिवम् ॥२५६॥

## नागराह्वः ।

येन येन यथा खेटा गच्छन्तः प्रतिभांति ते ।
स पन्था नाग इत्युक्तो यत्र खेटस्तदाननम् ॥२५७॥
खेचरा दिवि यावन्तो नागास्तावन्त एव खे ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च नागानन्त्येपि तेऽष्टधा ॥२५८॥

ग्रहस्वकक्षावृत्तानां ये संयोगाः परस्परम् ।
त एकविंशतिः पाता याम्यसौम्यास्ततो ग्रहाः ॥२५९॥
दक्षिणो राहुरित्युक्तः पातः केतुस्तथोत्तरः ।
राहोरुत्तरतो यांति केतोर्दक्षिणतो ग्रहाः ॥ २६० ॥
पातः सर्वो राहुसंज्ञस्तस्य संज्ञाद्वयी पुनः ।
राहुः केतुरिति क्लृप्ते दक्षिणोत्तरभेदतः ॥ २६१ ॥
पातस्थानस्थयोरत्यासन्नयोर्ग्रहयोः सतोः ।
ग्रहणं वा युतिर्वेति द्विविधो योग इष्यते ॥ २६२ ॥
तत्र सूर्यग्रहे चन्द्रग्रहे चोक्तं शुभाशुभम् ।
ताराग्रहाणां ग्रहणे सांप्रतं फलमुच्यते ॥ २६३ ॥
पातास्थानादविक्षिप्तश्चन्द्रेणार्केण वैकभः ।
ताराग्रहो ग्रस्तबिम्बो जायते ग्रहणं हि तत् ॥ २६४ ॥
आवन्तिकाश्च कावेर्या नर्मदायाश्च कूलगाः ।
सर्वे प्रदेशाः पीडयन्ते मंगलग्रहणे सति ॥ २६५ ॥
गंगायमुनयोर्मध्ये सरयूशोणयोस्तटम् ।
पूर्वोदधिश्च नेपालः पीडयन्ते छादिते बुधे ॥ २६६ ॥
उत्तरस्यां तु ये देशा ये च सिंधुतटाश्रयाः ।
ते सर्वे परिपीडयन्ते राहुग्रस्ते बृहस्पतौ ॥ २६७ ॥
दासेरकाश्च कैकेया यौधेयाः शिवयोजनाः ।
आर्यावर्ताश्च पीडयन्ते शुक्रे राहुमुपागते ॥ २६८ ॥
अर्बुदं पारियात्रं च संश्रिताः पुष्करांतिकाः ।
सौराष्ट्रिका मरुप्रान्ताः पीडयन्ते छादिते शनौ ॥ २६९ ॥
गतिमन्त इमे पाता य उक्ता एकविंशतिः ।
अयत्वे यत्र ये पातास्ते दर्श्यन्ते पृथग्विधाः ॥ २७० ॥

सूर्यपाताः ।

आदित्यार्द्धे च पूषान्ते संपातः शनिसूर्ययोः ।
राशेरष्टादशे त्वंशे तुर्य्यस्य दशमस्य च ॥ २७१ ॥
आर्द्रातृतीये पूषाद्ये संपातो गुरुसूर्ययोः ।
अंशे तु दशमे राशेस्तुर्य्यस्य दशमस्य च ॥ २७२ ॥
भरण्यते विशाखार्द्धे संपातो भौमसूर्ययोः ।
राशेरष्टादशे त्वंशे द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥ २७३ ॥
रोहिण्यंते च ज्येष्ठार्द्धे संपातः शुक्रसूर्ययोः ।
अंशे सप्तदशे राशेस्तृतीयस्य नवमात्मनः ॥ २७४ ॥
भरण्यंते विशाखार्द्धे संपातो बुधसूर्ययोः ।
अंशे सप्तदशे राशेर्द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥ २७५ ॥
सूर्ये पातः क्रांतिपातादष्टोत्तरशते शनेः
शते गुरोरष्टचत्वारिंशेंऽशे, मंगलस्य तु ॥ २७६ ॥
क्रांतिपाताच्च शुक्रस्य पातोंऽशे सप्तसप्ततेः ।
सप्तचत्वारिंशके तु बुधपातो बुधेरितः ॥ २७७ ॥

चन्द्रपातः ।

सूर्यमार्गे चन्द्रमार्गसंपातः पात उच्यते ।
स द्वेधा दक्षिणो राहुरुत्तरः केतुरुच्यते ॥ २७८ ॥
रविमार्गेऽन्वहं राहुः पश्चिमामनुगच्छति ।
तिस्रः कलाः सार्द्धदश विकला गतिराह्निकी ॥ २७९ ॥
प्राचां मते कलास्तिस्रो विकला दश तद्गतिः ।
अष्टचत्वारिंशदनुविकला विंशतिः परा ॥ २८० ॥

अंशानां च कलानां च राहोरेकोनविंशतिः ।
विकलानां चतुश्चत्वारिंशदब्दगतिर्मता ॥ २८१ ॥
वर्षैरष्टादशैरष्टविंशद्विशतवासरैः ।
घटीभिः पञ्चदशभीराहुश्चक्रं भुनक्ति सः ॥ २८२ ॥
अंशैस्तु सप्तदशभिरेकविंशकलोत्तरैः ।
पातसंनिहिते चन्द्रेऽमांतेऽर्क उपरज्यते ॥ २८३ ॥
एकादशभिरंशैस्तु चतुस्त्रिंशत्कलोत्तरैः ।
पातसंनिहितश्चन्द्रः पूर्णिमासूपरज्यते ॥ २८४ ॥

## ताराग्रहपाताः ।

श्रवणाप्रथमे पुष्यतृतीये शनिजीवयोः ।
षष्ठेंऽशे पञ्चमस्यैकादशस्य क्रांतिराशितः ॥ २८५ ॥
पूफातुरीयके पूभाद्वितीये शनिभौमयोः ।
राशेरष्टादशे त्वंशे षष्ठस्य द्वादशस्य च ॥ २८६ ॥
पौष्णद्वितीयके हस्तात्तुरीये शनिशुक्रयोः ।
अंशे पञ्चदशे राशेराद्यस्य सप्तमस्य च । २८७ ॥
अश्विन्यर्द्धे च विक्रांते संपातः शनिसौम्ययोः ।
राशेरंशे सप्तविंशे त्वादद्यस्य सप्तमस्य च ॥ २८८ ॥
इति शनेः ।

रेवत्यंते च चित्रार्द्धे संपातो गुरुभौमयोः ।
राशेरंशे चतुर्विंशे त्वादद्यस्य सप्तमस्य च ॥ २८९ ॥
भरण्यन्ते विशाखार्द्धे संपातो गुरुशुक्रयोः ।
राशेरष्टादशे त्वंशे द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥ २९० ॥

अश्विन्यन्ते स्वातिकार्द्धे संपातो गुरुसौम्ययोः ।
अंशे तु सप्तमे राशेर्द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥ २६१ ॥

इति गुरोः ।

पुष्यातृतीये श्रवणाप्रथमे भौमशुक्रयोः ।
अंशे तु पञ्चमस्यैकादशस्यापि च सप्तमे ॥ २६२ ॥
याम्या तृतीये राधाद्ये संपातो भौमसौम्ययोः ।
अंशे तु षोडशे राशेर्द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥ २६३ ॥

इति भौमस्य ।

पातोऽश्विन्यास्तृतीये तु स्वत्याद्ये शुक्रसौमयोः ।
राशेरंशे तृतीये तु द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥ २६४ ॥

इति शुक्रस्य ।

## ताराग्रहेन्दुपातः ।

उच्चावचश्चन्द्रमार्गो नित्यमेति विशेषताम् ।
तस्मात् तत्र गताः पाताः पञ्चलक्ष्याः स्वयं बुधैः ॥२६५॥

इति प्रकीर्णके चतुर्विधा राहवः ।

## केतवः ।

विकीर्णतेजसः केचित् स्वप्रकाशमया दिवि ।
दृश्यन्ते जातुचित् पिण्डापिण्डास्ते केतवो मताः ॥२६६॥
इन्द्रगोपकृमिं यक्षस्थानं रत्नं मणिं भुवि ।
दिव्युल्काग्रहभं त्यक्त्वाऽनग्नौ ज्योतींषि केतवः ॥२६७॥
गर्गादयस्तु केतूनां सहस्र परिचक्षते ।
पराशरादयस्त्वेकशतमेक तु नारदः ॥ २६८ ॥
कियन्त्यहानि दृश्यास्ते किं किमृक्षोदयास्तकाः ।
एतत्पुराविदैर्दृष्टमपि हन्त न दर्शितम् ॥ २६९ ॥

नैषां यथावद्विज्ञानं न च निर्द्धारिता गतिः ।
संख्यानं च फलं चैषां प्रतीतं तदिहोच्यते ॥ ३०० ॥
सहस्रं केतवस्तेषां किरणाग्नेयमृत्युदा ।
पार्थिवाः सोमजा ब्रह्मदण्डोऽप्यथ विसर्पका ॥ ३०१ ॥
तस्कराः कौङ्कुमाः कीलाः कनका विकचा अपि ।
अरुणा विश्वरूपाश्च गणका ब्रह्मजास्तथा ॥ ३०२ ॥
कंकाः कबन्धा विपुला ऊनविंशतिजातयः ।
वक्ष्यन्ते लक्षणान्यासां संख्याश्चाथ विशेषकाः ॥ ३०३ ॥
मुक्ताहारसुवर्णाभा मृणालरजतप्रभाः ।
स्फटिकाभाश्च सशिखाः किरणाः पंचविंशतिः ॥ ३०४ ॥
बन्धुजीवाग्निलाक्षाभाः शोणा दीप्ता विचूलिनः ।
उद्गिरन्त इवाग्निं खादाग्नेयाः पञ्चविंशतिः ॥ ३०५ ॥
रूक्षा वक्रशिखाः कृष्णा मृत्युदाः पञ्चविंशतिः ।
भौमा द्वाविंशतिर्वृत्ता विचूलास्तैलतोयभाः ॥ ३०६ ॥
हिमेन्दुकुन्दरौप्याभास्त्रयः सौम्याः शुभावहाः ।
क्रूरस्त्वेको ब्रह्मदंडस्त्रिवर्णत्रिशिखो मतः ॥ ३०७ ॥
सौम्या उदीच्यामैशान्यां भौमा याम्ये तु मृत्युदाः ।
आग्नेया अग्निगाः प्राचीप्रतीच्योः किरणोदयः ॥ ३०८ ॥
विसर्पकास्तु चतुराशीतिः स्थूलैकतारकाः ।
अर्चिष्मन्तः सिताः स्निग्धाः प्रसन्नास्तीव्रविग्रहाः ॥ ३०९ ॥
कनकाः षष्टिराख्याता द्विशिखाः सप्ततारकाः ।
रश्मिमंतश्च सुस्निग्धा घोरा कष्टफला हि ते ॥ ३१० ॥
विकचाः पञ्चषष्टिस्तु विशिखा रश्मिभिर्वृताः ।
वपुष्मन्तः सिताः स्निग्धाः प्रसन्ना एकतारकाः ॥ ३११ ॥

तस्करा एकपंचाशद् दीर्घा रूक्षाश्च पांडवः ।
अरुन्धतिवदव्यक्ततारकाः रश्मिभिर्वृताः ॥ ३१२ ॥
कुंकुमाः केतवः षष्टिस्त्रितारास्त्रिशिखा अपि ।
अग्निप्रभा शोणिताभाः पापा लोहितरश्मयः ॥३१३॥
कीलकास्तु त्रयस्त्रिंशत् कृष्णान्ताः कृष्णरश्मयः ।
दारुणा मंडले भानोर्दृश्यन्ते शशिनोऽपि च ॥३१४॥
पराशरमते सन्ति त्रयस्तामसकीलकाः ।
अंगिराः कीलकः काकस्त्रयोऽप्यसितकेतवः ॥ ३१५ ॥
सूर्यविम्बे त्रयोऽप्येते चन्द्रं द्वौ कालकीलकौ ।
अंगिराः सरथो धन्वी दृश्यते पुरुषाकृतिः ॥ ३१६ ॥
काकः कालाकृतिर्घोरस्त्रिकोणो वापि लक्ष्यते ।
मण्डलं कीलकं मध्ये मण्डलस्यासितो ग्रहः ॥३१७॥
विश्वरूपाः शतं विंशं शोणा दीप्ता विचूलिनः ।
उद्गिरन्त इवाग्निं खादग्निभा ज्वालमालिनः ॥३१८॥
अताराश्चामराकारा रूक्षा व्याक्षिप्तरश्मयः ।
श्यामारुणा वातरूपा अरुणाः सप्तसप्ततिः ॥ ३१९ ॥
अष्टौ तु गणकास्तारापुञ्जवन्मंडलस्थिताः ।
चतुरस्राःश्वेतशिखा ब्रह्मजा द्वे चतुःशते ॥ ३२० ॥
मयूखोत्सर्गिणः स्निग्धाः कंकाद्वात्रिंशदिन्दुभाः ।
काकतुण्डनिभैर्वंशगुल्मभैः रश्मिभिर्वृताः ॥ ३२१ ॥
कबन्धाः नवतिः षट् च भस्मकर्पूररश्मयः ।
विरूपतारकापुंजाः पीतारुणकबन्धवत् ॥ ३२२ ॥
शुक्लैकतारा विपुला विपुला नव केतवः ।
इत्थं सहस्रं केतूनां जातयस्तूनविंशतिः ॥ ३२३ ॥

पराशरादिभिर्दृष्टाः पुरा ये केतवो यथा ।
ते तथा परिसंख्याता रूपकालफलादिभिः ॥ ३२४ ॥
चलो जलोऽष्ट चोर्म्याद्या भट औद्दालकस्ततः ।
पद्मः काश्यप आवर्तो रश्मिरेते क्रमोदयाः ॥ ३२५ ॥
वसाकेतुश्च कुमुदः कपालश्च मणिः कलिः ।
क्रमोदयाः परेषां तु क्रमचारो न दृश्यते ॥ ३२६ ॥

## चलकेतुः ।

चलकेतुर्दक्षिणाग्रांगुलोच्छ्रितशिखोदितः ।
उत्तरेण व्रजन् दीर्घी भवच्छूलाग्रवच्छिखः ॥ ३२७ ॥
प्रतीच्यामुदितो गत्वोदीच्यां सप्तर्षिमंडलम् ।
ध्रुवं चाभिजितं ब्रह्मराशिं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ३२८ ॥
व्योम्नोर्ध्वमात्रमागत्य याम्येनास्तंप्रयाति सः ।
प्रोष्य पञ्चदशं वर्षशतमायाति दर्शनम् ॥ ३२९ ॥
याम्ये यावदवन्तीं च देविकां यावदुत्तरे ।
आपुष्करादाप्रयागाद्दश मासान् स पीडयेत् ॥३३०॥

## जलकेतुः ।

जलकेतुः पश्चिमाग्रशिखः स्निग्धस्य पश्चिमे ।
चलकेतोरुदयते नवमासावशेषके ॥ ३३१ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं नवमासान् करोति सः ।
ग्रहान्तरकृतान् दोषानपि सर्वान्निवर्तयेत् ॥ ३३२ ॥

### ऊर्मि–शीत–केतवः–

जलकेतोस्तु कर्मान्ते क्रमादुद्यन्ति केतवः ।
आष्टावूर्म्यादिशीतांता धृतिमन्वब्दसांतराः ॥ ३३३ ॥
ऊर्मिः शंखो हिमो रक्तः कुक्षिः कामो विसर्पणः ।
शीतश्चेत्यष्ट सहजाः केतवोऽमृतजा मताः ॥३३४॥
क्षुद्रजंतुहरा रूक्षा दुर्भिक्षाद्यशुभावहाः ।
स्निग्धाः सुभिक्षक्षेमाय तेऽष्टावूर्म्यादिकेतवः ॥३३५॥

### भटकेतुः, भवकेतुः ।

गते तूर्म्यादिशीतान्तकेतूनां चारकर्मणि ।
भटकेतुर्निशामेकां दृश्यते सूक्ष्मतारकः ॥ ३३६ ॥
पूर्वस्यां दक्षिणावर्तहरिलांगूलवच्छिखः ।
स्निग्धः स कृत्तिकागुच्छमुख्यताराप्रमाणकः ॥३३७॥
यावन्मुहूर्तान् दृश्योऽसौ तावन्मासान् सुभिक्षकृत् ।
स्निग्धो रूक्षस्तु कुरुते रोगान् प्राणांतिकान् भटः ॥३३८॥

### औद्दालकः, श्वेतकेतुः, ककेतुश्च ।

औद्दालकः श्वेतकेतुर्याम्याग्रोऽर्द्धनिशोदयः ।
प्राच्यां प्रतीच्यां युगपत् कसंज्ञोऽन्यो युगाकृतिः ॥३३९॥
स्निग्धावुभौ सप्तरात्रं दृश्येते काऽधिकं क्वचित् ।
शुभदौ दशवर्षाणि रूक्षौ शस्त्रदिनार्तिदौ ॥ ३४० ॥
केतुरौद्दालको वर्षशतं प्रोष्य दशोत्तरम् ।
भटकेतोः स चारांते पूर्वस्यां दिशि दृश्यते ॥ ३४१ ॥

### पद्मकेतुः ।

श्वेतकेतुफलान्ते तु पद्मकेतुः सितो भवेत् ।
एकारात्रं पश्चिमायां सप्तवर्षाणि हर्षदः ॥ ३४२ ।

### काश्यपः श्वेतकेतुः ।

काश्यपः श्वेतकेतुस्तु रूक्षः श्यावो जटाकृतिः ।
नभसस्त्र्यंशमाक्रम्य सोऽपसव्यं निवर्तते ॥ ३४३ ॥
प्रोष्य पञ्चदशं वर्षशतमिन्द्रांशकः शिखी ।
पद्मकेतोः स चारान्ते सहजस्योपदृश्यते ॥ ३४४ ॥
दृश्यते यावतो मासांस्तावद्वर्षं सुभिक्षकृत् ।
मध्यदेशगतार्य्याणामौदीच्यानां च नाशकृत् ॥३४५॥

### आवर्तकेतुः ।

श्वेतकेतोस्तु कर्मांते पश्चिमायां निशीथके ।
आवर्तकेतुः शंखाभो दक्षिणारुणचूडकः ॥ ३४६ ॥
यावन्मुहूर्तान् दृश्येत तावन्मासान् सुभिक्षकृत् ।
आवर्तकेतुः कुरुते नित्ययज्ञोत्सव जगत् ॥ ३४७ ॥

### रश्मिकेतुः ।

रश्मिकेतुः फलं दत्ते काश्यपश्वेतकेतुवत् ।
आधूम्रया तु शिखया दृश्यते कृत्तिकानुगः ॥३४८॥
स विभावसुजो रश्मिकेतुः प्रोष्य समाशतम् ।
आवर्तकेतोश्चारांते कृत्तिकासूपदृश्यते । ३४९ ॥

### वासाकेतुः ।

वासाकेतुर्महान् स्निग्धसुभिक्षमरकप्रदः ।
त्रिंशद्वर्षशतं प्रोष्या परोदप्युदगा यतः ॥ ३५० ॥

वासाकेतुसमो रूक्षोऽस्थिकेतुः क्षुद्भयावहः ।
प्राच्यां वसासमो दृष्टः शस्त्रकेतुर्मरप्रदः ॥ ३५१ ॥

## कुमुदकेतुः ।

कुमुदः कुमुदाभासः प्राक्शिखः स्निग्धदुग्धभः ।
एकरात्रं वसाकेतोश्चारांते पश्चिमे चरेत् ॥ ३५२ ॥
एकामेव निशां दृष्टः सुभिक्षं जनयत्ययम् ।
दशवर्षाणि सौहार्द्यं पाश्चात्येषु रुजोऽल्पिकाः ॥ ३५३॥

## कपालकिरणः ।

कपालकेतुरुदितोऽसाया प्राच्यां नभोऽर्द्धगः ।
धूम्ररश्मिशिखो रोगावृष्टिक्षुन्मरकप्रदः ॥ ३५४ ॥
पञ्चविंशाब्दकशतं प्रोष्य पक्षत्रयाधिकम् ।
चारान्ते कुमुदाख्यस्यामृतजस्यैति चोदयम् ॥ ३५५ ॥
यावन्त्यहानि दृश्यंते तावन्मासं फलोदयः ।
यावन्मासं च वर्षाणि त्रिपक्षात् परतः फलम् ॥ ३५६ ॥

## मणिकेतुः ।

मणिकेतुस्तन्यधारासमस्निग्धशिखः सितः ।
त्रियामायामेकयामं दृश्यते सूक्ष्मतारकः ॥ ३५७ ॥
कपालकेतोश्चारान्ते प्रतीच्यामुदयन्नयम् ।
तद्दिनादेव चतुरो मासान् सार्द्धान् सुभिक्षकृत् ॥३५८॥

## कलिकिरणः रौद्रकेतुः ( किरणः )

रौद्रकेतुः कलिर्वैश्वानरवीथ्यां तु पूर्वतः ।
उद्यन् खत्र्यंशमागत्य ततो गच्छत्यदर्शनम् ॥ ३५९ ॥

त्रीणि वर्षशतान्येष प्रोष्य मासान्नवाधिकान्।
चारान्ते मणिकेतोश्चामृतजस्यैति चोदयम् ॥ ३६० ॥
तीक्ष्णा रूक्षा श्यावताम्रारुणा शूलाकृतिः शिखा।
दक्षिणाभिनता यस्य फलं मासे त्रयोदशे ॥ ३६१ ॥
यावतो दृश्यते मासांस्तावद्वर्षाणि तद्भयम्।
क्षुदनावृष्टिमरकै रोगैः संपीड्यते प्रजा ॥ ३६२ ॥

संवर्तकेतुः।

संवर्तः प्रोष्य वर्षाणामष्टोत्तरसहस्रकम्।
पश्चिमे दृश्यते सायमाक्रम्य त्र्यंशकं दिवः ॥३६३॥
धूम्रताम्रारुणशूलाभरूक्षचूडः स यावतः।
मुहूर्तान्निशि दृश्येत तावद्वर्षाण्यनिष्टकृत् ॥ ३६४ ॥
अवर्षणं च दुर्भिक्षं रोगं शस्त्रप्रकोपनम्।
कुरुते पीडनं राज्ञां स्वचक्रपरचक्रतः ॥ ३६५ ॥
यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे प्रवासं यत्र गच्छति।
यद्धूपयेत् स्पृशेद्वा भं देशान् हन्यात् तदाश्रितान् ॥३६६॥

ध्रुवकेतुः।

ध्रुवकेतुस्त्वनियतप्रमाणगतिवर्णकः।
नानाकृतिः सर्वदिक्षु यत्र तत्र प्रदृश्यते ॥ ३६७ ॥
दिव्यन्तरिक्षे भूमौ वा स्निग्धो दृष्टः शुभावहः।
गृहांगे गृहिणां राज्ञां सेनांगेऽपि विनाशकृत् ॥३६८॥

अमृतजाः।

जलो भटश्च पद्मश्चावर्तश्च कुमुदो मणिः।
संवर्त इत्यमृतजाः केतवः सहजा मताः ॥ ३६९ ॥

## दुष्टकेतुफलम् ।

[1]अश्मकेशं [2]किरातेशं [3]कालिंगं [4]शौरसेनिकम् ।
[5]औशीनरं च [6]जलजाजीव[7]माश्मक[8]मागधौ ॥ ३७० ॥
तथा [9]सि[10]कांग[11]पाण्ड्येशाना[12]वन्त्यं [13]दण्डकेश्वरम् ।
[14]कौरुक्षेत्रं च [15]काम्बोजकाश्मीर[16]मवधेश्वरम् ॥ ३७१ ॥
[17]पुण्ड्रेशं [18]कान्यकुब्जेशं [19]मद्रकान्ध्रेश[20]काशिपौ ।
अर्जुनायन[21]यौधेयशिवि चैद्येश्व[22]कैकयौ ॥ ३७२ ॥
घ्नंति [23]पाञ्चनदं [24]सिंहलेशं [25]वाङ्गं च [26]नैमिषम् ।
[27]किरातं केतवो दुष्टा अश्विन्यादिगताः क्रमात् ॥ ३७३ ॥
यावन्त्यहानि दृश्यन्ते तावन्मासं फलोदयः ।
यावन्मासं च वर्षाणि त्रिपक्षात् परतः फलम् ॥३७४॥
हूणावंगाणचीनेभ्यश्चोलाश्चान्यत्र देशके ।
उल्काताडितचूडस्तु केतुः श्रेयस्करो मतः ॥ ३७५ ॥
शुक्लः स्निग्धतनुर्ह्रस्वः प्रसन्नोऽचिरसंस्थितः ।
ऋजुर्यस्योदयाद् वृष्टिः स च केतुः शुभावहः ॥ ३७६॥

इति केतवः ॥

## ताराः ।

विमलस्फटिकाभासा रोचते तारकावली ।
तत्र मासे सुभिक्षाय मेघो नूनं प्रवर्षति ॥ ३७७ ॥
सप्तरात्रं जलाभासा भासते तारकावली ।
तदावश्यं सुभिक्षाय मेघस्तत्र प्रवर्षति ॥ ३७८ ॥

प्रति क्षणं प्रस्फुरन्ती चञ्चच्चारुरुचा यदि ।
तारावली चमत्कारं कुरुते सातिवर्षति ॥ ३७६ ॥

## दिग्दाहः ।

सूर्यात्तु मंगलं षष्ठे चन्द्रः पञ्चमसप्तमे ।
दिग्दाहोत्पादको योगो दिग्दर्शनमिदं मतम् ॥ ३८० ॥
सायं प्रातर्दिशां दाहोऽपसव्यपवनोऽरुणः ।
सस्यनाशं प्रकुरुते सोऽन्यवर्णोऽपि नो शुभः ॥३८१॥
वातः प्रदक्षिणं वाति प्रसन्नं भं नभोऽमलम् ।
दिग्दाहः कनकाभासः सर्वलोकहितावहः ॥ ३८२ ॥
धूमः सस्यविनाशायारुणवर्णोऽनिलप्रदः ।
दिग्दाहः स्वर्णवर्णाभः शुभ इत्याह नारदः ॥ ३८३ ॥

## पांसवः ।

रजः समुत्थितं भूमेश्छादयत्यखिलां दिशम् ।
तिमिरेण विभाव्यंते न गिरिर्न तरुः पुरः ॥ ३८४ ॥
वायुना तु विनाध्वान्तमुत्थितं कुरुते रजः ।
तदा तु सप्तभिः पक्षैस्तत्र वर्षा भवेद् ध्रुवम् ॥३८५॥
धूमिका वा तुषारो वा यत्र प्रकुरुते तमः ।
तत्र चैकादशे पक्षे ध्रुवं वर्षति वासवः ॥ ३८६ ॥
रजोऽभ्येति रविं सान्ध्यं वन्धूकाञ्जनचूर्णभम् ।
रोगैर्निपीडयते लोकः शुक्लेन रजसा सुखी ॥३८७॥
शिशिरे तु रजो नास्ति दोषकृत् स्वर्तुजं हि तत् ।
ऋतावन्यत्र रोगादिदोषावहमिदं रजः ॥ ३८८ ॥

भूकम्पः ।

तमसः सप्तमे भौमे भौमात् पञ्चमगे बुधे ।
बुधाच्चतुष्टये चन्द्रे भूकम्प इति दिग्विधिः ॥ ३८९ ॥
भागस्तुर्य्यस्तृतीयोऽह्नो द्वितीयः प्रथमः क्रमात् ।
वरुणेन्द्राग्निवायूनां मण्डलानि प्रचक्षते ॥ ३९० ॥
स्वातीचित्रे उफाहस्तौ मृगाश्विन्यौ पुनर्वसू ।
वायव्यं मण्डलं तस्य सप्ताहाद् रूपदर्शनम् ॥ ३९१ ॥
धूमाकुलाशे नभसि वायुर्भौमं रजः क्षिपन् ।
द्रुमांश्च विरुजन् याति रविर्मन्दप्रभो भवेत् ॥ ३९२ ॥
पुष्याग्नेयविशाखाजभरणीभाग्यपित्र्यभम् ।
आग्नेयं मण्डलं तस्य सप्ताहाद्रूपदर्शनम् ॥ ३९३ ॥
अत्युष्णवायुसंचारस्तारोल्कापतनं दिवः ।
दिग्दाहः सन्ध्ययोर्नित्यमादीप्तमिव खं भवेत् ॥ ३९४ ॥
रौहिण्यैन्द्रे वैश्वमैत्रे धनिष्ठा श्रवणाभिजित् ।
ऐन्द्रं तु मण्डलं तस्य सप्ताहाद् रूपदर्शनम् ॥ ३९५ ॥
प्रचलन्तस्तडित्वन्तः सर्वतः पर्वता इव ।
गभीरनादा वर्षन्ति गवलालिकुलच्छिभाः ॥ ३९६ ॥
श्लेषार्द्रे आप्यरेवत्यौ मूलाहिर्बुध्न्यवारुणम् ।
वारुणं मण्डलं तस्य सप्ताहाद् रूपदर्शनम् ॥ ३९७ ॥
बहुला मधुरारावा नीला भिन्नाञ्जनत्विषः ।
विद्युदुद्भासिता मेघा वर्षन्त्यासारवर्षिणः ॥ ३९८ ॥
वायव्ये भूमिकम्पे तु जलसस्यौषधिक्षयः ।
पीडा मत्स्ये दशार्णे च सौराष्ट्रे मगधे कुरौ ॥ ३९९ ॥

आग्नेये भूमिकम्पे तु मेघतोयाशयक्षयः।
पीडा कलिंगवंगांगबाह्लीकद्रविडाश्मके ॥ ४०० ॥
यथेष्टे जायते वृष्टिर्भूकम्पे त्वैन्द्रमण्डले।
पीडा काश्यां सुराष्ट्रौ च मालवार्बुदपौरवे ॥ ४०१ ॥
वारुणे भूमिकम्पे तु महावृष्टिं प्रचक्षते।
चैदि–गोनर्द–वैदेह–किरात–कुकुरक्षितम् ॥ ४०२ ॥
हन्यते फलमन्योयं भिन्ने वेलाभमण्डले।
ऐन्द्रवारुणयोर्वेगे सुभिक्षं वृष्टिरुत्तमा ॥ ४०३ ॥

२१६–राहु, केतु, तारा, दिग्दाह, पांसु ( धूल ) वर्षा और भूकंप ये छः वैकारिक भाव प्रकीर्णकाधिकार में हैं।

## राहु।

*

२१७–अपनी और दूसरे की ज्योति से रहित होने के कारण ये राहु प्रकाश नहीं करते हैं। तथा आकाश में चलते हुए और ठहरे हुए भी नहीं जान पड़ते हैं।

---

* संसार भर में चार प्रकार के पदार्थ होते हैं-स्वज्योति, परज्योति, रूपज्योति और अज्योति। जो ज्योति स्वतः अपने आप प्रकाशित होती है जिसे दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती वह स्वज्योति है। दूसरे की ज्योति से ज्योतिष्मयी बनकर अन्यों को प्रकाशित करने वाली परज्योति होती है। अपने रूपमात्र से प्रकाशित होने वाली रूपज्योति कहलाती है। जो सर्वथा ज्योति रहित है, वह अज्योति होती है। इनमें स्वज्योति को सूर्य कहते हैं, यह सूर्य स्वज्योति होने से ही चारों ओर से सर्वदा प्रकाशित रहता है, अतः इसमें अंधकार का कुछ भी प्रवेश नहीं होसकता है। इन्द्र का रूप प्रकाशही कहा गया है, अतः सूर्य को इन्द्र भी कहा जाता है तथा 'देवानामनीकं' ( देवताओं का स्थान ) भी इसी कारण कहते हैं।

परज्योति को चन्द्रमा कहते हैं, यह सूर्यज्योति से ज्योतिष्मान् बनकर प्रकाश करता है, स्वयं प्रकाश रहित है, इसी से 'कृष्णचन्द्र' भी कहते हैं। ऋग्वेद में लिखा है–"अत्राह गोरमन्वत नामत्वष्टुरपीच्यम्। अथा चन्द्रमसो दिवि" इत्यादि इन्ही वैदिक मन्त्रों के आधार पर ज्योतिष-शास्त्र में भी यह लिखा गया है—

यह राहु भिन्न भिन्न रूप का दृष्टिगत होता है। वृष्टि के विकार में जो ये फल दिखाता है उसी का आगे निरूपण किया जाता है।

२१८-ग्रहों की तरह गतिवाले होने के कारण इन राहुओं को उपग्रह कहते हैं। ये राहु चार प्रकार के होते हैं कील, स्वर्भानु, नाग और पात।

२१९-आकाश में जो पिण्ड अज्योति होकर घूम रहे हैं वे कीलक कहलाते हैं और परज्योति प्रकाशित पिण्ड का छायामय आधा भाग स्वर्भानु कहलाता है।

२२०-कक्षावृत्त के नाम से ग्रहों के जो गति हैं, वे सर्प की आकृति से बहुधा घूमे हुए नाग कहलाते हैं।

२२१-इन्हीं नागों का जो परस्पर संघात है वही पात कहलाता है, ये सब चारों प्रभाहीन (अज्योति) होने से राहु कहलाते हैं।

---

"तरणि-किरण-सङ्गादेष पानीय पिण्डो,
दिनकर दिशि चञ्चच्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।
तदितर दिशि नैवातारतं शीतभानु,
र्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः॥"

चन्द्रमा स्वयं ज्योति रहित है अतः इसमें आसुर प्राण का होना स्वाभाविक होजाता है। जो स्वज्योति न हो अथवा दूसरी ज्योति से भी ज्योतिष्मान् न हो वह रूपज्योति पदार्थ कहलाता है। जैसे पृथ्वी आदि। इसका हमें केवल रूपमात्र ही दृष्टिगत होजाता है। सूर्य की किरणें जो पृथ्वी की प्रत्येक विन्दु से प्रतिफलित होकर हमारी दृष्टि पर पहुँचती हैं वेही तदाकाराकारित होकर पृथ्वी के प्रत्यक्ष का कारण बनती हैं। चन्द्रमा की तरह ज्योतिरूप न बनने से यह परज्योति नहीं कहला सकती।

जिस तरह चन्द्रमा का एक भाग सूर्य से प्रकाशित और दूसरा अप्रकाशित रहकर वह 'तम' (राहु) कहलाता है, इसी प्रकार इस पृथ्वी का जो भाग सूर्य से प्रकाशित रहता है, वह तो रूपज्योति कहलाता है, किन्तु जो भाग अप्रकाशित रहता है वह भाग अन्धकार से आच्छादित होने के कारण अज्योति कहलाता है। इससे इस भाग को 'तम' भी कहते हैं पृथ्वी की जो तमोमयी छाया है वही राहु है। तमः स्वरूप होने से राहु के लिये "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः" कहा गया है।

## कीलकराहवः ।

२२२-अन्धकार युक्त होने के कारण प्रकाशित रहित और अदृश्य अनेक पिण्ड शुक्रादि ग्रहों की तरह ये कीलक, राहु, सूर्य, चन्द्रादि के ( चारों ओर ) अनुगमन करते हैं ।

२२३-चन्द्रमा के समान बड़े विम्ब वाला त्वष्टा नाम का महाग्रह पर्व विना ही सूर्य मण्डल को अन्धकार युक्त कर देता है ।

२२४-उस त्वष्टा से छोटे बिम्ब वाले तामस कीलक अन्य और भी अनेक ग्रह हैं जो तेंतीस हैं और राहु पुत्र तथा राहु के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

२२५-ध्वाङ्क्ष, कबन्ध, दण्ड, ध्वज, छत्र और चामर ये तमोग्रह सूर्य में छेद करने वाले कई बार देखे गये हैं ।

२२६-इनके उदय होने पर धूल उड़ाती हुई प्रचण्ड वायु चलती है, आकाश में रज छाजाती है, जल में कलुषता आजाती है और भूकंप होने लगते हैं ।

२२७-कीलकों के प्रभाव से निर्घात ( जोर का शब्द ) होने लगता है, दिशाओं में दाह होता है, पेड़ो में ऋतु का परिवर्तन होजाता है और पशु पक्षियों में दीप्ति होजाती है ।

२२८-केतु, राहु और कीलकों के दर्शन होने में उनके अलग अलग फल नहीं समझने चाहिये और इनके उत्पात भी भिन्न भिन्न नहीं होते हैं क्योंकि ये उन्हीं से उत्पन्न हैं ।

२२९-जिन जिन देशों में सूर्य विम्बगामी कीलक दिखाई दें उन देशों की प्रजा का अवृष्टि वा अतिवृष्टि से नाश होगा ।

२३०-यदि वे कीलक धूम, स्फुलिङ्ग ( अग्निकण आग की चिनगारियाँ ) और ज्वाला आदि से युक्त हों तो दुर्भिक्ष, महामारी आदि से प्रजा को अत्यन्त पीड़ा होती है ।

२३१-सूर्य में ये कीलक एक, दो या बहुत दिखाई दें वे सब पाप फल देने वाले होते हैं । दण्ड, ध्वाङ्क्ष, कबन्ध आदि जो तमोग्रह वे यदि चन्द्रमा में दिखाई दें तो शुभ फल होते हैं ।

## स्वर्भानुराहवः ।

२३२-पृथ्वी, चन्द्र, बुध आदि परज्योति पिण्डों के प्रकाश रहित तमोमय आधे भाग को स्वर्भानु कहते हैं ।

२३३-इस तमोमय भाग से उत्पन्न तीन कोण वाली छाया को स्वर्भानु नाम के राहु कहते हैं इनके स्वर्भाग में भानु रहता है, इससे इनको स्वर्भानु कहते हैं ।

२३४-वह छायामयी मूर्ति ज्योतिराहित्य ( प्रकाश रहित ) होने से राहु कहलाती है और उस छाया वाले तमोमय आधे भाग को सिंह कहते हैं, इस सिंही से उत्पन्न होने के कारण यह राहु सैंहिकेय भी कहलाता है ।

२३५-अहः ( दिन ) को मित्र ( सूर्य ) कहते हैं, इसीसे इसमें देवता रहते हैं । रात्रि वारुणी होती है, इसीसे वह आसुरी कहलाती है । रात्रि में सुदर्शन छिन्न मस्तक वाला राहु असुर जाति का है ।

२३६-वह भू छाया ही तम है, यह तम आकाश में सूर्य के चारों ओर घूमने से ग्रह कहलाता है । भूछाया से निगृहीत चन्द्रमा उपरक्त होजाता है इसी से वह दिखाई नहीं देता ।

२३७-चन्द्रमा की छाया से गृहीत सूर्यग्रहण के समय दिखाई नहीं देता है । इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का राहु ( तम = छाया ) से ग्रस्त होने को ग्रहण कहते हैं ।

२३८-स्वर्भानु के द्वारा तम से सूर्य के उपरक्त होने में श्रुति का प्रमाण निम्ननिर्दिष्ट है—

भगवती श्रुति कहती है कि जिस सूर्य को स्वर्भानु नामक आसुर ने तम के द्वारा विद्ध किया है उस सूर्य को अत्रि महर्षि ही पहिचान सके हैं और कोई इस सूर्य के पहिचान ने में समर्थ नहीं हो सके ।

२३९-यह तमोग्रह दूर्वा की तरह श्याम रंग का और हरिद्रा के रंग का होतो महामारी होती है, तोते की आभा वाली होतो सस्य ( धान्य ) नाश होता है और पाटल रंग के होने से वज्र-पात होता है ।

२४०-यह ग्रह श्वेत, धूम्र. पीत वा स्वच्छ प्रभावाला होतो सुभिक्ष होता है लाल, काला, कबूतरी रंग अथवा कपिल रंग का होतो दुर्भिक्ष का सूचक है ।

२४१-अर्चि ( ज्योति ) वाला और अग्नि की सी आभा वाला होतो अग्नि का भय होता है । गैरिक रंग का होतो युद्ध और बालसूर्य, इन्द्रधनुष के तथा कमल के से रूप वाला होतो वह शस्त्र का कोप करता है ।

२४२-लाल किरणों वाला, रज, धूम अथवा लाल वर्ण का वृष्टि नाश करने वाला होता है । कुछ धूम्र तथा कृष्ण और कबूतरी रंग का अतिवृष्टि करता है ।

२४३-ग्रस्त को देखकर शनि तो वृष्टि का और शुक्र सस्य का नाश करता है वृहस्पति ग्रस्त को देखकर दुष्ट दृष्टि के दोष को दूर करता है ।

२४४-कार्त्तिक मास में सूर्य चन्द्र का ग्रहण होने से मगध, काशी, कोशल, शूरसेन और कलिङ्ग देश की हानि होती है, अन्य देशों में क्षेम और सुभिक्ष होता है ।

२४५-मार्गशीर्ष में ग्रहण होने से पुण्ड्रक, काश्मीर, कौशल तथा अपरान्तक अर्थात् पश्चिमी देशों की हानि होती है, अवशिष्ट प्रदेशों में वृष्टि, क्षेम और सुभिक्ष होता है ।

२४६-पौष में ग्रहण होने से सिन्धुदेश, विदेह, कुकुरदेशों की हानि होती है, अन्य जगह अल्पवृष्टि और दुर्भिक्ष होता है ।

२४७-माघ में ग्रहण होने से राहु काशी, अंग और बंग देशों की हानि करता है और देशान्तरों में कर्षक परिमाण की वर्षा होती है ।

२४८-फाल्गुन में ग्रहण होने से अगुरु, अंग, अवन्तिका, अश्म और मैकल देशों की हानि होती है । चैत्र में ग्रहण होने से कैकय, पौण्ड्र, औड्र, अश्मक देशों में विचित्र वर्षा होती है ।

२४९-वैशाख मास में ग्रहण होने से कलिङ्ग, यौधेय, इक्ष्वाकुज और शकों की हानि होती है । जेष्ठ में ग्रहण होने से साल्व और निषाद देश का नाश होता है, तथा धान्य और वृष्टि का भी नाश होता है ।

२५०-आषाढ़ में ग्रहण के दिखाई देने से चीन, कश्मीर, गान्धार और पुलिन्द देशों का नुकसान होता है और इससे माण्डलिक वर्षा होती है ।

२५१से२५४-श्रावण का ग्रहण चीन, कश्मीर, गान्धार, पुलिन्द, मध्यदेश, कुरुक्षेत्र, कम्बोज और यवनों का नाश करता है, तथा शरत्काल के धान्य का भी नाश करता है, अन्यत्र क्षेमकारी होता है । भाद्रपद में ग्रहण होतो वह सौराष्ट्र, मगध, सौवीर, दरद, अश्मक, कलिङ्ग, बंग और म्लेच्छ देशों का नाश करता है, अन्यत्र सुभिक्षकारी होती है । आश्विन मास का ग्रहण बाह्लीक, चीन, काम्बोज, यवनदेश, किरात, आनर्त्त और पौण्ड्र देश का नुकसान करता है, अन्यत्र अत्यन्त सुभिक्षकारी होती है । किसी का मत है कि वैशाख में ग्रहण होतो वह श्रावण से पाँच महीने तक सुभिक्षकारी होता है ।

२५५-ग्रहण के दिन से एक सप्ताह के अन्दर ही यदि, प्रचण्ड पवन, बिजली, गर्जना, सूर्य चन्द्र के परिवेष और भूकंप होवे तो अशुभ समझना चाहिये ।

२५६-ग्रहण के दिन से एक सप्ताह के अन्दर यदि सुवृष्टि होजावे तो ग्रहण के जितने अशुभ दोष हैं उनका नाश होजाता है और कल्याण होता है ।

## नागराहव ।

२५७-आकाश में ग्रहगण जिस रास्ते से जाते हुए दिखाई देते हैं, वह रास्ता नाग नाम से कहा जाता है । उस रास्ते में जहाँ ग्रह हो वह उस नाग का मुख कहलाता है ।

२५८-आकाश में जितने ग्रह हैं उतने हीं नाग भी हैं । द्यौ पृथ्वी और अन्तरिक्ष में अनन्त नाग हैं, किन्तु उनमें आठ ही प्रधान हैं ।

## पातराहव ।

२५६-ग्रहों की अपनी कक्षाओं के वृत्तों के जितने संयोग हैं, वे २१ पात कहे जाते हैं । इन्ही पातों से ग्रह दक्षिण या उत्तर होते हैं ।

२६०-दक्षिण पात को राहु और उत्तर पात को केतु कहा गया है । ग्रह राहु के उत्तर से और केतु के दक्षिण से जाते हैं ।

२६१-पात सभी राहु कहलाते हैं, किन्तु इसी की फिर दो संज्ञा होजाती है । दक्षिण पात को राहु और उत्तर पात को केतु कहने लगते हैं ।

२६२-पात (ग्रह कक्षावृत्त के संयोग) के स्थान स्थित अत्यन्त नजदीक जब दो ग्रह होजाते हैं तब ग्रहण या ग्रहयुति होती है । इस लिये योग दो प्रकार का माना गया है- ग्रहण और युति ।

२६३-सूर्य और चन्द्र के ग्रहण के विषय में शुभाशुभ फल कहा जा चुका है । अब तारा ग्रहों के ग्रहण का फल कहा जाता है ।

२६४-पात के अस्थिर होने से अविक्षिप्त एक नक्षत्र वाले ताराग्रह का बिम्ब जब सूर्य वा चन्द्रमा के द्वारा ग्रस्त होजाता है तब उसे ग्रहण* कहते हैं ।

---

* बहिर्ग्रहों का पृथ्वी के द्वारा स्वच्छाया से खुद का ही ग्रहण होता है किन्तु अन्तर्ग्रहों का ग्रहण चिन्ह सूर्य पर दिखाई देता है ।

२६५-मंगल के ग्रहण होने पर अवन्तिका ( उज्जैन ), कावेरी और नर्मदा के किनारे के सब देशों को पीड़ा होती है।

२६६-बुध के ग्रहण होने पर गंगा-यमुना के मध्यदेश, सरयू और शोण नदी के तटवर्ती पूर्व समुद्र के देश और नैपाल ये पीड़ित होते हैं।

२६७-बृहस्पति में राहु के ग्रस्त होने पर उत्तर दिशा के देश और सिन्धु-तट के आश्रित देश परिपीड़ित होते हैं।

२६८-शुक्र के ग्रस्त होने पर दासेरक, कैकेय, यौधेय, शिवयोजन और आर्यावर्त्त देश पीड़ित होते हैं।

२६९-शनि के ग्रस्त होने पर अर्बुद ( आबू ) और परियात्र के ( अरावली ) प्रदेश, तथा पुष्कर के पास वाले सौराष्ट्र ( काठियावाड़ ) और मरुप्रान्त ( मारवाड़ ) के देश पीड़ित होते हैं।

२७०-जो २१ पात कहे गये हैं, वे गतिमान् हैं अर्थात् स्थिर नहीं हैं। इस समय जहाँ जो पात हैं वे पृथक् २ बताये जाते हैं।

## सूर्यपात।

२७१-शनि और सूर्य का संपात हस्त के आधे व्यतीत होने पर और पूषा ( रेवती ) के अन्त होने पर चौथी और दशवीं राशि के अठारहवें अंश में होता है।

२७२-बृहस्पति और सूर्य का संपात आर्द्रा नक्षत्र के तृतीय भाग और रेवती के आदि भाग में चौथी और दशवीं राशि के दशम भाग में दिखाई देता है।

२७३-मंगल और सूर्य का संपात भरणी के अन्त में और विशाखा के अर्ध में दूसरी और आठवीं राशि के अठारहवें अंश में दिखाई पड़ता है।

२७४-शुक्र और सूर्य का संपात रोहिणी के अन्त में और ज्येष्ठा के मध्य में तीसरी और नवीं राशि के सत्रहवें अंश में होता है।

२७५-बुध और सूर्य का संपात भरणी के अन्त में, विशाखा के आधे भाग में दूसरी और आठवीं राशि के सत्रहवें अंश में होता है।

२७६-२७७-क्रान्तिपात से १०८ अंश पर सूर्य के रहने पर ( सूर्य में ) शनि का पात होता

है, १०० अंश पर सूर्य के रहने पर गुरु का पात, ४८ अंश पर सूर्य के रहने से मंगल का पात ७७ वें अंश पर सूर्य के रहने पर शुक्र का पात और ४७ वें अंश पर बुध का पात होना पंडितों के द्वारा देखा गया है ।

## चन्द्रपात ।

२७८-सूर्य के मार्ग में चन्द्रमार्ग का संपात ( संयोग ) होना चन्द्रपात कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है । इनमें दक्षिण वाला राहु और उत्तर वाला केतु कहा जाता है।

२७९-सूर्य मार्ग में राहु प्रतिदिन पश्चिम दिशा की तरफ जाता रहता है । इसकी नित्य की गति ३ कला और १०॥ विकला की होती है ।

२८०-प्राचीन ऋषियों का मत है कि इस राहु की दैनिक गति ३ कला, १० विकल और ६८ अनु विकला की होती है ।

२८१-इस राहु की वार्षिक गति १९ अंश, १६ कला और ४४ विकला की होती है ।

२८२-यह राहु अपने एक चक्र को १८ वर्ष, २२८ दिन और १५ घडियों में भोग लेता है ।

२८३-सत्रह अंश और २१ कला के पश्चात् पात के समीप चन्द्रमा के आने पर अमावास्या के अन्त में सूर्य का ग्रहण होता है ।

२८४-ग्यारह अंश और ३४ कला के पश्चात् पात के संनिहित यदि चन्द्रमा होता है तो पूर्णिमा में उस चन्द्र का ग्रहण होजाता है ।

## ताराग्रहपात ।

### (शनि-संपात)

२८५-२८६-क्रान्ति राशि से पाँचवीं और ग्यारहवीं के छठे अंश में श्रवण के प्रथम चरण और पुष्य के तृतीय चरण में शनि और वृहस्पति का संपात होता है और छठी तथा बारहवीं राशि के अठारहवें अंश में, पूर्व फाल्गुनी के चौथे और पूर्व भाद्रपद के द्वितीय अंश में शनि और मंगल का संपात होता है ।

२८७-शनि और बुध का संपात पहिली और सातवीं राशि के पन्द्रहवें अंश में, पूषा (रेवती) के दूसरे और हस्त के चौथे भाग में होता है ।

२८८-शनि और बुध का संपात पहिली और सातवीं राशि के सत्ताईसवें अंश में, अश्विनी के आधे और चित्रा के अन्त भाग में होता है ।

## ( गुरु–संपात )

२८६-गुरु और भौम का संपात संक्रान्ति की राशि से प्रथम और सातवीं राशि के चौबीस-वें अंश में, रेवती के अन्त और चित्रा के आधे भाग में होता है ।

२६०-गुरु और शुक्र का संपात द्वितीय और आठवीं राशि के अठारहवें अंश में, भरणी के अन्त और विशाखा के आधे में होता है ।

२६१-गुरु और बुध का संपात आठवीं और दूसरी राशि के सातवें अंश में अश्विनी के अन्त और स्वाति के अर्ध भाग में होता है ।

## ( भौम–संपात )

२६२-मंगल और शुक्र का संपात पांचवीं और सातवीं राशि के सातवें अंश, में पुष्य के तृतीय और श्रवण के प्रथम चरण में होता है ।

२६३-मंगल और बुध का संपात दूसरी और आठवीं राशि के सोलहवें अंश में, भरणी के तीसरे और विशाखा के प्रारंभ में होता है ।

## ( शुक्र–संपात )

२६४-शुक्र और बुध का संपात दूसरी और आठवीं राशि के तृतीय अंश में, अश्विनी के तीसरे और स्वाति के प्रथम चरण में होता है ।

## ( तारा–चन्द्र–संपात )

२९५-चन्द्रमा का मार्ग ऊँचा नीचा है, यह नित्य ही विशेषता को अर्थात भिन्न-भिन्न प्रकार को प्राप्त होता रहता है । अतः बुद्धिमान् लोग चन्द्र के साथ पाँच पात स्वयं ही जानलें ।

इति प्रकीर्ण के चतुर्विधराहवः ।

# केतवः ।

२६६-कभी–कभी आकाश में विकीर्ण (बिखरे हुए) तेज वाले स्वप्रकाशमय पिण्ड दिखाई दिया करते हैं, ये ही पिण्ड केतु कहलाते हैं ।

२९७-भूमि पर इन्द्रगोपकृमि*, जिन्द वगैरह का स्थान, रत्न और मणि को छोड़कर, तथा आकाश में उल्काग्रह नक्षत्र को छोड़कर अग्नि रहित स्थान में जो ज्योति दिखाई पड़ती हैं वे केतु हैं।

२९८-इन केतु पिण्डों की संख्या को गग आदि ऋषि एक हजार बताते हैं, पराशर आदि ऋषि एक सौ और नारद ऋषि एक ही संख्या मानते हैं।

२९९-ये केतु कितने दिनों तक दिखाई देते हैं, नक्षत्रों का उदयास्त का स्वरूप क्या है, यह सब पुराविदों ने यद्यपि देखा है तथापि दुःख का विषय है कि उनने इसको स्पष्ट करके नहीं दिखाया है।

३००-अतः इनका न तो ठीक ठीक विज्ञान है, न इनकी गति ही निश्चित की गई है, किन्तु इनकी संख्या और फल जो मालूम है वह कहा जाता है।

३०१से३०३-ये केतु हजार माने गये हैं। इनकी निम्निलिखित १९ जातियाँ है। किरण, आग्नेय, मृत्युद, पार्थिव, सोमज, ब्रह्मदण्ड, विसर्पक, तस्कर, कोङ्कुम, कील, कनक, विकच, अरुण, विश्वरूप, गणक, ब्रह्मज, कंक, कबन्ध और विपुल। इनके लक्षण और विशेष संख्या क्रम आगे लिखते हैं—

३०४-मोती की माला, सोना, कमल की जड़, चाँदी और स्फटिकमणि की प्रभावाले तथा शिखावाले २५ तरह के किरण-केतु होते हैं।

३०५-बन्धु जीव ( गुलहल ) अग्नि और लाख की कान्तिवाले, लाल, चमकदार, विचूली ( बिना चोटी के ) आकाश से अग्नि उगलते हुए आग्नेय (अग्नि-जाति के) केतु भी २५ प्रकार के होते हैं।

३०६-रूखे, बाँकी शिखा वाले, काले रंग के, मृत्युद केतु २५ प्रकार के होते हैं। पार्थिव केतु गोल, विचूली और तैल-जल के समान कान्तिवाले २२ प्रकार के होते हैं।

३०७-बरफ, चन्द्रमा, कुन्द, ( सफेद पुष्प ) और चाँदी की सी आभावाले ३ केतु सौम्य होते हैं और शुभ हैं। क्रूर तो केवल एक ब्रह्मदण्ड केतु है जो तीन शिखा वाला एवं तीन वर्ण का होता है।

३०८-उत्तर में सौम्य केतु, ईशान-कोण में भौम, दक्षिण में मृत्युद और अग्नि-कोण में आग्नेय केतु होते हैं। पूर्व और पश्चिम में किरण-केतु का उदय होता है।

---

* एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः बरसात में पैदा होता है और वह चमकीला होता है।

३०९-विसर्पक ८४ मोटे तारों का झुण्ड होता है। ये ज्योति वाले, श्वेत, स्निग्ध, प्रसन्न और तीव्र आकार वाले होते हैं।

३१०-कनक जाति के ६० होते हैं, इनके दो चोटी वाले सात तारे होते हैं। ये किरण वाले, स्निग्ध और घोर तथा कष्ट देने वाले होते हैं।

३११-विकच जाति के ६५ होते हैं। ये शिखा रहित, किरणों से आवृत, शरीरवान्, श्वेत, स्निग्ध, प्रसन्न और तारों के एक ही झुण्ड में होते हैं।

३१२-तस्कर ५१ होते हैं। ये दीर्घ, रूखे, श्वेत होते हैं और अरुन्धती की तरह अस्पष्ट होते हैं तथा किरणों से घिरे रहते हैं।

३१३-कौङ्कुम केतु ६० हैं। इनमें तीन तारे होते हैं और ये त्रिशिख तथा अग्नि-प्रभावाले खराब, लाल और लाल ही किरण वाले होते हैं।

३१४-कीलक ३३ होते हैं। इनका आखिरी हिस्सा काला होता है तथा ये दारुण और काली किरण के होते हैं। सूर्य और चन्द्र के मण्डल में ये दिखाई देते हैं।

३१५-पाराशर ऋषि के मत में तामस कीलक ३ होते हैं। अंगिरा, कीलक और काक ये तीनों काले केतु होते हैं।

३१६-सूर्य विम्ब में ये तीनों दिखाई देते हैं। चन्द्र विम्ब में काक और कीलक दो ही दिखाई देते हैं अंगिरा धनुष धारण किये हुए रथ सहित पुरुष के आकार में दिखाई देता है।

३१७-काक काली आकृति वाला भयंकर और त्रिकोण होता है। मण्डल के बीच में काला ग्रह कीलकमण्डल कहलाता है।

३१८-विश्वरूप केतु १२० होते है। ये लाल, दीप्त, विचूली, ज्वालावाले तथा आकाश से अग्नि को उगलते हुए और अग्नि की आभावाले दिखाई देते हैं।

३१९-विनातारा के चामर की सी आकृति वाले रुखे, इधर, उधर फैंकी हुई किरणों वाले, वातरूप, काले और लालसे रंगवाले ७७ संख्या के अरुण-केतु होते हैं।

३२०-गण केतु आठ होते हैं। ये तारा-समूह की तरह एक मण्डल में स्थित रहते हैं। ब्रह्मज केतु २०४ होते हैं। ये चार कोण के और श्वेत शिखा के होते हैं।

३२१-कंक नामक-केतु ३२ होते हैं। ये किरणों को फैंकने वाले, स्निग्ध और चन्द्रमा की सी आभावाले होते हैं। तथा काक की चोंच के समान, बांसों की गुल्मों की आभावाली किरणों से घिरे हुए होते हैं।

३२२-कबन्ध-केतु ६६ होते हैं। इन की किरणें भस्म और कपूर की तरह (श्वेत) होती है। ये केतु भिन्न-भिन्न रूप वाले तारों के पुंज में होते हैं, तथा पीले और लाल कबन्ध (शिर रहित देह) की तरह दिखाई देते हैं।

३२३-विपुल नाम केतु ९ होते हैं। इनका श्वेत तारों का एक ही बड़ा पुँज होता है। इस प्रकार हजार केतुओं की १९ प्रकार की जातियाँ कही गई हैं।

**१९ जाति के केतुओं की एक हजार संख्या का क्रम—**

| नं० | नाम | संख्या | नं० | नाम | संख्या | नं० | नाम | संख्या | नं० | नाम | संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | किरण केतु | २५ | ६ | ब्रह्मदंड | १ | ११ | कनक | ६० | १६ | ब्रह्मज | २०४ |
| २ | आग्नेय | २५ | ७ | विसर्पक | ८४ | १२ | विकच | ६५ | १७ | कंक | ३२ |
| ३ | मृत्युद | २५ | ८ | तस्कर | ५१ | १३ | अरुण | ७७ | १८ | कबन्ध | ६६ |
| ४ | पार्थिव | २२ | ९ | कौंकुम | ६० | १४ | विश्वरूप | १२० | १९ | विपुल | ९ |
| ५ | सौम्य | ३ | १० | कीलक | ३३ | १५ | गणक | ८ | | | १००० |

३२४-पराशर आदि ऋषियों से जो केतु देखे गये हैं, वे रूप, काल, फल आदि से गिना दिये गये हैं।

उपरिलिखित केतुओं के अतिरिक्त जो अन्य केतु विशेष हैं उनका दिग्-दर्शन आगे किया जाता है।

३२५-चल, जल, ऊर्मि आदि आठ, भट, औद्दालक, पद्म, काश्यप, आवर्त्त और रश्मिकेतु-इनका उदय क्रम से होता है।

३२६-वसाकेतु, कुमुदकेतु, कपालकेतु, मणिकेतु और कलिकेतु ये भी क्रमसे उदय होते हैं, किन्तु कई ऋषियों का मत है कि इनके उदय में क्रम नहीं होता।

३२७-दाहिने हाथ के अंगुल के सदृश उन्नत शिखा वाला, उत्तर की तरफ जाता हुआ, लम्बा होता हुआ और शूलाग्र की तरह शिखा वाला चलकेतु होता है।

३२८-यह चलकेतु पश्चिम में उदय हुआ उत्तर दिशा के अन्दर सप्तर्षि मण्डल की ओर जाकर ध्रुव, अभिजित् और ब्रह्मराशि को देखकर लौट जाता है।

३२६-आकाश में ऊँचा जाकर यह दक्षिण में अस्त होजाता है। ११५ वर्ष तक प्रवासित रहकर यह पुनः दिखाई देता है।

३३०-यह दक्षिण में अवन्ती ( उज्जैन ) तक, उत्तर में देविका तक और पुष्कर से प्रयाग तक सब को दश महीने तक पीड़ित करता है।

## जलकेतुः।

३३१-जलकेतु पश्चिमाग्र शिखा वाला होता है। स्निग्धचलकेतु के अस्त होने में जब नव मास शेष रहजाते हैं तब यह पश्चिम में उदय होता है।

३३२-यह नौ महीने तक सुभिक्ष, क्षेम और आरोग्य करता है और अन्यग्रहों के सब दोषों को भी नष्ट करता है।

## ऊर्मि-शीत-केतवः।

३३३-जलकेतु के कर्मान्त गति में आगे लिखे ऊर्मिकेतु से शीत पर्यन्त के आठ केतु क्रमशः १८ वर्ष और १४ वर्ष के अन्तर पर उदय होते रहते हैं।

३३४-ऊर्मि, शंख, हिम, रक्त, कुक्षि, काम, विसर्पण और शीत ये आठ अमृत से पैदा हुए सहज केतु हैं।

३३५-ये आठ ऊर्मि आदि केतु यदि रूक्ष होंतो क्षुद्र जन्तुओं के नाश करने वाले और दुर्भिक्ष आदि अशुभ फल देने वाले होते हैं। ये ही यदि स्निग्ध होंतो सुभिक्ष और क्षेम करते हैं

## भटकेतु, भवकेतु।

३३६-ऊर्मि आदि शीत पर्यन्त के आठकेतुओं के चार के समाप्त हो जानेपर तारा के रूप एक रात में भटकेतु दिखाई देता है।

३३७-यह भटकेतु पूर्व दिशा में दाहिनी ओर घूमी हुई बन्दर की पूँछ की तरह शिखा वाला, स्निग्ध और कृत्तिका के गुच्छे की तरह मुख्य तारा के प्रमाण का होता है।

३३८-यह जितने मुहूर्त्त स्निग्ध दिखता रहता है उतने महीनों तक सुभिक्ष करता है । रूक्ष होगा तो प्राणों का अन्त करने वाला और रोग पैदा करने वाला होगा ।

## औद्दालककेतु, श्वेतकेतु, ककेतु ।

३३९-औद्दालक और श्वेतकेतु इन दोनों का अग्रभाग दक्षिण की ओर होता है और अर्ध-रात्रि में इनका उदय होता है । ककेतु प्राची-प्रतीची दिशा में एक साथ युगाकार से उदय होता है ।

३४०-औद्दालक और श्वेतकेतु सात रात तक स्निग्ध दिखाई देते हैं । ककेतु कभी अधिक भी दिखता रहता है । वे दोनों स्निग्ध होने पर दश वर्ष तक शुभ फल देते हैं और रूक्ष होने पर शस्त्र आदि से दुःख देते हैं ।

३४१-उद्दालककेतु एकसौ दस वर्ष तक प्रवास में रहकर भटकेतु की गति के अन्त में पूर्व दिशा में दिखाई देता है ।

## पद्मकेतु ।

३४२-श्वेतकेतु के फल के अन्त में श्वेत पद्मकेतु का उदय होता है पश्चिम में एक रात दिखाई देने पर यह सात वर्ष तक आनन्द देता रहता है

## काश्यप श्वेतकेतु ।

३४३-काश्यप श्वेतकेतु तो रूखा श्याव और जटा की सी आकृति का होता है । यह आकाश के तीन भाग को आक्रमण करके बाँई ओर लौट जाता है ।

३४४-यह इन्द्रांश शिखी ११५ वर्ष तक प्रवासित रहकर सहज पद्मकेतु की गति के अन्त में दिखाई देता है ।

३४५-यह जितने महीने दिखाई दे उतने हीं वर्ष सुभिक्ष करता है । किन्तु मध्य देश के आर्यों का और औदीच्यों का नाश करता है ।

## आवर्त्तकेतुः ।

३४६-श्वेतकेतु के समाप्त होने पर पश्चिम में अर्ध रात्रि के समय शंख की आभावाला आवर्त्तकेतु उदय होता है ।

३४७-यह केतु जितने मुहूर्त्त दिखाई दे उतने हीं महीनों सुभिक्ष करता है। यह सदा संसार में यज्ञोत्सव करता है ।

## रश्मिकेतुः।

३४८-काश्यप श्वेतकेतु के समान यह रश्मिकेतु फल देता है। यह कुछ धूम्रवर्ण की शिखा के साथ कृत्तिका के पीछे दिखाई देता है।

३४९-विभावसु से पैदा हुआ यह रश्मिकेतु एकसौ वर्ष प्रोषित रहकर आवर्त्तकेतु की गति के अन्त में कृत्तिका नक्षत्रों के समीप दिखाई देता है।

## वसाकेतु, अस्थिकेतु, शस्त्रकेतु।

३५०-वसाकेतु अत्यन्त स्निग्ध सुभिक्ष और महामारी प्रद होता है। यह १३० वर्ष प्रवासित रहकर उत्तर की ओर लम्बा होता हुआ उदय होता है।

३५१-वसाकेतु के समान अस्थिकेतु रूक्ष हो तो क्षुद् भयावह होता है (भुखमरा पड़ता है) पश्चिम में वसाकेतु की समानता का दीखा हुआ शस्त्रकेतु महामारी करता है।

## कुमुदकेतु।

३५२-कुमुद की आभावाला, पूर्व की तरफ शिखावाला, स्निग्ध और दुग्ध की तरह स्वच्छ कुमुदकेतु पश्चिम में वसाकेतु की गति के अन्त में दिखाई देता है।

३५३-एक ही रात में दिखाई दिया हुआ यह सुभिक्ष और दशवर्ष तक सुहृद्भाव पैदा करता है, किन्तु पाश्च्यात्त्य देशों में कुछ रोग उत्पन्न करता है।

## कपालकिरणः।

३५४-कपालकेतु प्राची दिशा में अमावास्या के दिन उदय हुआ आकाश के मध्य में धूम्र-किरणों की शिखावाला होकर रोग, वृष्टि, भूख और मृत्यु को देता है।

३५५-यह १२५ वर्ष प्रवास में रहकर अमृतोत्पन्न कुमुदकेतु के अन्त में तीन पक्ष से अधिक उदय रहता है।

३५६-जितने दिन तक यह दिखता रहता है, उतने हीं महीनों तक इसका फल मिलता है। जितने मास और वर्ष तक दीखता है, उससे तीन पक्ष अधिक फल रहता है।

## मणिकेतुः।

३५७-यह मणिकेतु दूध की धारा के समान स्निग्ध शिखावाला श्वेत रंग का होता है। यह रात्रिभर एक प्रहर तक सूक्ष्म तारा के रूप में दिखाई देता है।

३५८-कपालकेतु की गति के अन्त में यह मणिकेतु पश्चिम दिशा में उदय होता है और उस दिन से साढ़े चार महीनें तक सुभिक्ष करता है।

## कलिकिरण रौद्रकेतु ( किरण )

३५६-कलिकिरण रौद्रकेतु वैश्वानर बीथी में पूर्व की ओर उदय होकर ३० अंश ऊपर चढ़कर फिर अस्त होजाता है।

३६०-यह ३०० वर्ष और ६ महीने तक प्रवास में रहकर अमृतोत्पन्न मणिकेतु की गति के अन्त में उदय होता है।

३६१-इसकी शिखा तीक्ष्ण, रूखी, धूमिल, ताँबें की तरह लाल, शूल की आकृति वाली और दक्षिण की ओर झुकी हुई होती है जिसका फल तेरहवें महींने होता है।

३६२-जितने महींने यह दिखाई देता है उतने हीं बर्षं तक इसका भय समझना चाहिये। उतने वर्षों तक भूख, अनावृष्टि, महामारी आदि रोगों से प्रजा को दुःख होता है।

## संवर्त्तकेतुः ।

३६३-यह संवर्त्तकेतु १००८ वर्ष तक प्रवास में रहकर पश्चिम में सायंकाल के समय आकाश के तीन अंशों को आक्रमण करके दिखाई देता है।

३६४-धूम्र, ताम्रवर्ण के शूल की सी कान्ति वाला, रूखी शिखावाला यह भी रात्रि में जितने मुहूर्त तक दिखाई दें उतने हीं वर्ष तक अनिष्ट करता है।

३६५-इसके उदय होने से अवृष्टि, दुर्भिक्ष, रोग, शस्त्रों का कोप होता है और राजा लोग स्वचक्र और परचक्र से दुःखी होते हैं।

३६६-यह संवर्तकेतु जिस नक्षत्र में उदय होता है और जिस नक्षत्र में अस्त होता है, तथा जिसको छोड़ता है वा जिस नक्षत्र को स्पर्श करता है, उनके आश्रित देशों का नाश होजाता है।

## ध्रुवकेतु ।

३६७-यह ध्रुवकेतु अनियत गति और वर्ण का होता है। सभी दिशाओं में जहाँ तहाँ नाना आकृति का दीख पड़ता है।

३६८-द्यु, अन्तरिक्ष वा भूमि पर स्निग्ध दिखाई दे तो शुभ है और गृहस्थियों के गृहाङ्गण में तथा राजाओं के सेना के किसी भाग में दिखाई देने से विनाशकारी होता है।

## अमृतकेतु।

३६९-जल, भट, पद्म, आवर्त, कुमुद, मणि और संवर्त ये सात केतु प्रकृतिसेही अमृतोत्पन्न माने जाते हैं।

## दुष्टकेतुफलम्।

३७०से३७३-जो दुष्टकेतु हैं वे क्रमसे अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में गये हुए निम्नलिखित देशों के नरेशों का नाश करते हैं।

| नक्षत्र | देश | नक्षत्र | देश |
|---|---|---|---|
| १ अश्विनी- | अश्मक। | १५ स्वाति- | कम्बोज ( कश्मीर ) |
| २ भरणी- | किरात- (भीलों का देश) | १६ विशाखा- | अवध। |
| ३ कृत्तिका- | कलिङ्ग- ( उड़ीसा प्रान्त ) | १७ अनुराधा- | पुण्ड्- (मिथिला के समीप का प्रान्त ) |
| ४ रोहिणी- | शूरसेन- ( मथुरा प्रान्त ) | १८ ज्येष्ठा- | कान्यकुब्ज (कन्नौज) |
| ५ मृगशिर- | उशीनर- (गन्धार) | १९ मूल- | मद्रक तथा आन्ध्र। |
| ६ आर्द्रा- | जलजाजीव-(तिरहुत प्रान्त) | २० पुर्वाषाढ- | काशी। |
| ७ पुनर्वसु- | अश्मक। | २१ उतराषाढ़- | अर्जुनायन, यौधेय, शिवि एवं चेदि। |
| ८ पुष्य- | मगध। | २२ श्रवण- | कैकेय-(सतलज के पीछे और व्यास के आगेकाप्रान्त) |
| ९ अश्लेषा- | असिक। | २३ धनिष्ठा- | पञ्चनद- (पंजाब) |
| १० मघा- | अङ्ग-( वैद्यनाथ से भुवनेश्वर तक ) | २४ शतभिषा- | सिंहल- (सीलोन) |
| ११ पूर्वाफाल्गुनी- | पाण्ड्य- (देहली प्रान्त) | २५ पूर्वाभाद्रपद- | बङ्ग- (बंगाल प्रान्त) |
| १२ उत्तराफाल्गुनी- | अवन्ति- ( उज्जैन प्रान्त ) | २६ उतराभाद्रपद- | नैमिष। |
| १३ हस्त- | दण्डक- (नासिक पंचवटी प्रदेश) | २७ रेवती- | किरात- (भूटान और आसाम के पूर्व के प्रान्त) |
| १४ चित्रा- | कुरुक्षेत्र। | | |

३७४-जितने दिनों तक ये दीखते हैं, उतने हीं महीनों तक और जितने महीनों तक दीखें उतने वर्षों तक इनका फल मिलता है। जब वे दीखें उसके तीन पक्ष आगे फल देते हैं।

३७५-जिन केतुओं की शिखा उल्का से ताड़ित होरही हो वे केतु हूण, अफगान, चीन, और चोल से अन्यत्र देशों में श्रेयस्कर होते हैं।

३७६-जो केतु शुक्ल, स्निग्धतनु, ह्रस्व, प्रसन्न, थोड़े समय ही दिखने वाला सीधा हो और जिसके उदय होने से वृष्टि हुई हो वह शुभ फलदायी होता है।

इति केतवः

## ३-तारा।

३७७-जिस महीने में स्वच्छ स्फटिक ( बिल्लोर ) मणि की सी आभावाली तारों की पंक्ति चमकती हो उस मास में सुभिक्ष करने के लिये मेघ अवश्य ही आता है।

३७८-सात रात तक जल की आभावाली तारों की पंक्ति जब दिखाई देती हो तब सुभिक्ष के लिये अवश्यही वृष्टि होगी, यह समझना चाहिये।

३७९-जो तारों की पंक्ति प्रतिक्षण चंचल सुन्दर कान्ति से स्फुरण करती हुई दिखाई देती हो तो वह अत्यन्त वर्षा करके तत्काल चमत्कार सा बता देती है।

## ४-दिग्दाहः।

३८०-सूर्य से छठी राशि पर मंगल हो और पाँचवें वा सातवें स्थान पर चन्द्रमा हो तो यह योग दिग्दाह पैदा करने वाला समझना चाहिये। यह दिग्दर्शन के नाम से माना गया है।

३८१-सांयकाल और प्रातः काल लाल रंग वाला दिग्दाह होता हो और उलटी हवा चलती हो तो इससे धान्य का नाश होता है। अन्य वर्ण का भी दिग्दाह होता हो तो वह अशुभ ही है।

३८२-जो दिग्दाह सुनहरी वर्ण का हो, दाहिनी हवा चलती हो और आकाश प्रसन्न तथा निर्मल हो तो वह सब लोगों का हितकर होता है।

३८३-नारद ऋषि का मत है कि- धूम्रवर्ण का दिग्दाह धान्यनाश करता है, अरुण (लाल) रंग का, वायु चलाता है और सुनहरी रंग का शुभकर होता है।

## ५-पांसवः।

३८४-भूमि से उठी हुई पांसु ( रज ) तमाम दिशाओं को ढक लेतीहै इसके छाये हुए अन्धकार से सामने भी वृक्ष पर्वत आदि दिखाई नहीं देते हैं।

३८५-वायु के बिना उठा हुआ रज यदि अन्धकार करदे तो वह सात पक्षों से अर्थात साढ़े तीन महीनों में वहाँ निश्चय वर्षा करेगा।

३८६-धूमि का ( धुन्ध ) वा तुषार ( बर्फ ) जहाँ अन्धकार करता है, वहाँ ग्यारहवें पक्ष में अवश्य वर्षा होती है।

३८७-यदि गुडहल के फूल अथवा अञ्जन के चूर्ण की आभावाली रज सायंकाल के सूर्य के सामने जाती हो तो संसार रोगों से पीड़ित होता है। यदि वह रज श्वेत हो तो आनन्द प्राप्त होता है।

३८८-यदि यह रज शिशिरऋतु में दिखाई दे तो उसे दोषकारक नहीं समझना चाहिये, क्योंकि वह उस ऋतु में प्रकृति से अवश्य उत्पन्न होती ही है। यही रज अन्य ऋतुओं में होने से रोगादि दोषों को पैदा करती है।

## ६-भूकम्प।

३८९-भूकम्प ऐन्द्र, वारुण, वायव्य और आग्नेय होते हैं। जिनमें से केवल ऐन्द्र भूकम्प होने का यह साधारण कारण है कि- राहु से सातवें मंगल होने पर, मंगल से पाँचवें बुध होने पर और बुध से चौथे चन्द्रमा के होने पर भूकम्प होता है।

३९०-दिन के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग क्रम से वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण के मण्डल कहे जाते हैं।

३९१-स्वाति, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, मृगशिर, अश्विनी, पुनर्वसु ये वायव्य मण्डल के हैं, सात दिन के बाद इनके रूप का दर्शन होता है।

३९२-धूम्र से आकुलित दिशावाले आकाश में वायु भूमि की रज को फैलाता हुआ और पेड़ों को उखाड़ता हुआ चलता है और सूर्य मन्दकान्ति होजाता है।

३९३-पुष्य, कृत्तिका, विशाखा, पूर्वभाद्रपद, भरणी, पूर्वफाल्गुनी और मघा यह नक्षत्र मण्डल आग्नेय मण्डल कहलाता है। एक सप्ताह पर इसका रूप दर्शन होता है।

३९४-इसका यह फल होता है कि अत्युष्ण वायु चले, आकाश से तारा उल्का गिरें, सन्ध्या के समय नित्य दिशायें जलती हुई दिखाई दें और आकाश भी आदीप्त-सा दिखाई देवे।

३९५-रोहिणी, ज्येष्ठा, वैश्व (उत्तराषाढ़) अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण, अभिजित् यह ऐन्द्र मण्डल कहलाता है, सप्ताह के बाद इसका रूप दर्शन होता है।

३९६-इससे चारों ओर पर्वतों के से आकार वाले, बिजली वाले, जोर की आवाज वाले गवल ( भैंसे का सींग ) भौंरों के कुल और साँपों की सी आभावाले मेघ बरसते हैं।

३६७-अश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़, रेवती, मूल, उ० भाद्र और वारुण नक्षत्र यह वारुण मण्डल कहलाता है । इसका एक सप्ताह के बाद रूप दर्शन होता है ।

३६८-इससे-ज्यादातर-मधुर आवाज वाले, नीले, काले अञ्जन की कान्तिवाले, बिजली से चमकते हुए और अत्यन्त जल देने वाले मेघ वर्षा करते हैं ।

३६९-वायव्य मण्डल संबन्धी भूमिकंप होतो जल धान्य और औषधियों का नाश होता है, तथा मत्स्यदेश ( जयपुर प्रान्त ), दशार्ण ( धारानगर ) देश, सौराष्ट्र, मगध और कुरु देशों में पीड़ा होती है ।

४००-अग्नि मण्डल संबन्धी भूमि कंप होने पर मेघ और जलाशयों का नाश होता है तथा अंग, बंग, कलिङ्ग, बाह्लीक, द्रविड़ और अश्मक देशों में पीड़ा होती है ।

४०१-ऐन्द्रमंण्डल संबन्धी भूकंप होने से यथेष्ट वर्षा होती है। किन्तु काशी, सुवासु, मालवा, आबू और पौरव ( हस्तिनापुर ) देशों में पीड़ा होती है ।

४०२-वारुण मण्डल में भूकंप होने से महावृष्टि होती है । तथा चेदि, गोनद, वैदेह, किरात, और कुकुर देशों की क्षति होती है ।

४०३-समय और नक्षत्र मण्डल के भिन्न होने पर अर्थात् यदि नक्षत्र किसी दूसरे मण्डल का हो और समय दूसरे मण्डल का हो तो एक दूसरे का फल नष्ट होजाता है । किन्तु ऐन्द्र और वारुण मण्डल के योग में भूकंप होने से सुभिक्ष होता है और अच्छी वर्षा होती है ।

इति प्रकीर्णकाधिकारः ।

## सर्वशेषः।

उल्कानिर्घातभूकम्पा दिग्दाहः खपुरं रजः।
उपरागो महावातः फलदा मण्डलाश्रयात् ।४०४॥
चतुर्भिरनिलः पक्षैः पाकमेति त्रिभिः शिखी।
सप्ताहाद्वासवः सद्यो वरुणोऽनुक्तकालके॥ ४०५॥
प्रत्यर्कः परिवेषोऽभ्र चापोऽमोघास्तडिद्रजः।
सद्यस्त्र्यहे वा सप्ताहे फलदाः परिघादयः॥ ४०६॥
वायुः कम्पयति क्षोणीं योजनानां शतद्वयम्।
अशीति-षष्ठि दश-युक्च्छतं पाशीन्द्रवन्हयः॥ ४०७॥
सन्ध्यैकं योजनं भाति त्रीण्युपार्कौ धनुर्दश।
निर्घोषपरिघौ पंच परिवेषस्तडिच्च षट्॥ ४०८॥
उल्कानिपतने संख्या योजनानां न विद्यते।
एतानि यत्र दृश्यंते फलं तत्रैव कुर्वते॥ ४०९॥

## सर्वशेष।

४०४-उल्का, निर्घात, भूकंप, दिग्दाह, आकाशनगर, रज, ग्रहण और महावात ये सब (जिनका वर्णन पहिले होचुका है) मण्डल के आश्रय से फल दिया करते हैं।

४०५-चार पक्षों (२ मास) से वायु का, तीन पक्षों से अग्नि का, एक सप्ताह से इन्द्र का, और वरुण का तत्काल ही पाक हो जाता है। इसका काल नहीं कहा गया है।

४०६-प्रत्यर्क (सूर्य का) परिवेष, अभ्र, इन्द्र धनुष, अमोघ, तड़ित्, रज और परिघादि ये एक दिन में, तीन दिन में अथवा सात दिन में फल देते हैं।

४०७-वायु के द्वारा कंप होने से २०० योजन तक भूमि हिलती है, वरुण के द्वारा होने से ८०, इन्द्र के द्वारा ६० और अग्नि के द्वारा होने से ११० योजन तक भूमि हिलती है।

४०८–सन्ध्या १ योजन तक, उपार्क ( प्रत्यर्क–परिधि ) ३ योजन तक, धनुष १० योजन तक, निर्घोष तथा परिघ ५ योजन तक और परिवेष तथा बिजली ६ योजन तक दिखाई देती हैं।

४०९–उल्का पतन में योजनों की कोई संख्या नियत नहीं है, ये जहाँ गिरें वहीं इनका फल समझना चाहिए। इति सर्वशेषः।

॥ इति दिव्यलक्षणाध्यायस्तृतीयः ॥

॥ ३ ॥

# अथ शकुनाध्यायः, तत्कालाध्यायः ।

## अथ सद्योलक्षणाध्यायः ।

हस्ती समुद्रादादाय जलमभ्राय यच्छति ।
वातप्रेरितमभ्रं तु काले स्थानेऽभिवर्षति ॥ १ ॥
तज्ज्ञानाय निमित्तं स्याद्बहुभेदं चतुर्विधम् ।
पार्थिवं चान्तरिक्षं च दिव्यं मिश्रमिति क्रमात् ॥ २ ॥

१-हस्ती ( सूर्य ) अपनी किरणों के द्वारा समुद्र से जल लेकर बादलों को देता है और वायु के द्वारा प्रेरित हुए बादल यथा समय, यथा स्थान में वर्षा करते हैं।

२-इस वर्षा के जानने के लिए अनेक भेद वाले निमित्त (शाकुनादिक) पार्थिव, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र इस प्रकार से चार तरह के कहे गये हैं। अब आगे के अधिकरणों में इन्हीं चारों का विवरण लिखा जाता है।

### मिश्रनिमित्ताधिकारः ।

वृष्टिः प्रश्नार्थशकुने श्यामगोघटदर्शनम् ।
स्त्रियां वा श्यामवस्त्रायां दृष्टायां वृष्टिमादिशेत् ॥ ३ ॥
जलासन्नो जलं वार्द्रं स्पृशन् यच्छति तत्क्षणे ।
श्रूयते जलशब्दो वा नचिराद् वर्षणं वदेत् ॥ ४ ॥
वृष्टिं ब्रूयात् प्रश्नकाले वामतः स्वरसञ्चरे ।
अनावृष्टिं वदेत्तत्र दक्षिणस्वरसञ्चरे ॥ ५ ॥
पञ्चांगुलिस्पर्शनेऽपि यद्यंगुष्ठं जनः स्पृशेत् ।
तदा वृष्टिस्तु महती सावित्रीस्पर्शनेऽल्पिका ॥ ६ ॥
तत्कालघटिकद्विघ्ना त्रिहृतैकेन सत्वरम् ।
द्वाभ्यां किञ्चिद्विलम्बेन शून्यशेषे त्ववर्षणम् ॥ ७ ॥

३-यदि कोई वर्षा के विषय में प्रश्न करे और उस वृष्टि प्रश्न के शकुन में काली गाय, घट अथवा काले वस्त्र पहिने हुये स्त्री के दर्शन हो तो वर्षा होगी ऐसा कहना चाहिये।

४-वर्षा का प्रश्न करने वाला जल के समीप हो, वा जल या किसी आर्द्र वस्तु को स्पर्श कर रहा हो, अथवा उस समय जल का शब्द सुनाई देता हो तो शीघ्रही वर्षा का आगमन कहना चाहिये।

५-वर्षा का प्रश्न करने के समय बाँई तरफ से स्वर चलता हो तो वर्षा कहनी चाहिये। दक्षिण की ओर से यदि स्वर चलता हो तो अनावृष्टि कहनी चाहिये।

६-वर्षा संबन्धी प्रश्न करने वाले से दाहने हाथ के उंगलियों को स्पर्श कराने पर यदि वह अंगुष्ठ का स्पर्श करे तो अधिक वर्षा हो, तथा सावित्री ( कनिष्ठिका ) के स्पर्श करने पर अल्प-वर्षा होती है। शेष उंगलियों के स्पर्श से सामान्य वर्षा समझनी चाहिये।

७-सूर्योदय से प्रश्न करने के समय तक की घटिकाओं को दो से गुणा करे और फिर तीन से भाग देवे; यदि एक शेष रहै तो शीघ्र वर्षा होती है, दो शेष रहै तो कुछ देरी से और शून्य शेष रहै तो अवृष्टि कहनी चाहिये।

इति प्रश्नशकुनं नाम मिश्रनिमित्ताधिकारः।

## दिव्यनिमित्ताधिकारः।

वर्षतौं वर्षणप्रश्ने तोयलग्नेऽथ तोयभे।
केन्द्रे शुभेक्षिते चन्द्रः शुक्रो वा वर्षति द्रुतम् ॥ ८ ॥

लग्ने वा जलराशिस्थे चन्द्रे वा स्याद्बहूदकम्।
प्रश्नलग्ने शिलावृष्टिः शनिज्ञशशिभिः स्थितैः ॥ ९ ॥

प्रश्नलग्नगते भौमे विद्युल्लपति चञ्चला।
घनगर्जनसंयुक्ता वृष्टिर्भवति भूयसी ॥ १० ॥

लग्ने चन्द्रः कुजः शुक्रः शनिश्च सहिता यदि।
सवाता करकावृष्टिर्विद्युच्चलति सर्वतः ॥ ११ ॥

पूर्णेन्दुबुधशुक्रेज्यैर्बलिभिः क्रूरवर्जितैः ।
केन्द्रस्थकर्कमकरमीनगैर्वृष्टिमादिशेत् ॥ १२ ॥
त्रिभागवृष्टिर्लग्नस्थजलराशिगतैर्ग्रहैः ।
अनावृष्टिस्तु केन्द्रस्थसजलाजलराशिगैः ॥ १३ ॥
पादेन वृष्टिरक्रूरैः शुभैर्लग्ने च कण्टके ।
शुष्कलग्नगतैः क्रूरैर्वृष्टिरोधं विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥
सर्वे ग्रहाश्चरे राशौ द्वादशैः प्रहरैर्जलम् ।
जलराशौ लग्नगते सद्यो वृष्टिः शुभैर्युते ॥ १५ ॥
घने सौम्ये चरे लग्ने मासाद् वृष्टिः स्थिरोदये ।
द्विर्द्वादशदिनैर्द्विश्च भावे षट् त्रिंशता दिनैः ॥ १६ ॥
लग्नाद् द्विके त्रिके वापि जलराशिर्भवेद्यदि ।
जलखेटोऽपि तत्रैव जलपातस्तदा ध्रुवम् ॥ १७ ॥
द्वितीये वा तृतीये वा लग्ननाथः शुभान्वितः ।
सप्तविंशदिने लग्नान्नदीपूरप्रवर्षणम् ॥ १८ ॥
सुधांशुबुधशुक्रेज्यैर्लग्नात्तुर्यगृहस्थितैः ।
शुभः कालो महावृष्टया तत्र देशे भविष्यति ॥ १९ ॥
प्रश्नलग्नाच्चतुर्थस्थौ शनिराहुयुतौ यदि ।
भयंकरं तु दुर्भिक्षं तत्र वर्षे भवेत्तदा ॥ २० ॥
सुखेऽष्टमे सप्तमे वा चन्द्रार्काभ्यां सितार्कजैः ।
वर्षासु वृष्टयै दुश्चिक्यद्वितीयस्थौ च लग्नतः ॥ २१ ॥
चतुर्णामपि केन्द्राणां मध्ये यत्र शुभा ग्रहाः ।
तस्यां दिशि सुनिष्पत्तिः सुभिक्षं च प्रजायते ॥ २२ ॥
यस्यां दिशि शनिर्दृष्टः क्रूरश्चात्र गृहे स्थितः ।
दिशि तस्यां तु दुर्भिक्षं भविष्यति न संशयः ॥ २३ ॥

अस्मदीये पुनः क्षेत्रे वृष्टिर्भव्या भविष्यति ।
एष प्रश्नो बुधैश्चिन्त्यो लग्ने व्योम्नि चतुर्थके ॥ २४ ॥

मूषका शलभा वृष्टौ तुलसिंहवृषोदये ।
मृगमेषालिकुम्भेषु वायुवह्नीलिकादयः ॥ २५ ॥

युग्ममीनधनुः स्त्रीषु शलभाः कृमिकर्तराः ।
कर्कटे जलशीतार्तिरल्पा तु स्वामिदर्शनात् ॥ २६ ॥

सस्याधिक्यं लग्नबलात् क्षेत्रसम्पच्चातुर्थतः ।
खबलात् कर्मसाफल्यं शुभग्रहबलं बलम् ॥ २७ ॥

चतुर्थे चन्द्रशुक्राद्यैर्महावृष्टिः प्रतीयते ।
तत्र क्रूरैरनावृष्टिर्भवतीति वदन्ति हि ॥ २८ ॥

खमध्ये शुभखेटाभ्यां विवाहादौ तु वर्षणम् ।
लग्ने त्रिभिः शुभैर्वृष्टिर्महतीति विनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥

इति प्रश्नज्यौतिषम् ॥

दक्षिणायनवेलायां कन्यामिथुनमीनगैः ।
वृष्टिः सितज्ञचन्द्रेज्यैः स्वल्पा शनिकुजागुभिः ॥ ३० ॥

कर्के वृषे वा शुक्रे ज्ञे जीवेन्दोर्मीनकन्ययोः ।
शुक्र ज्ञे मिथुनेऽजे वा चापे चन्द्रेज्ययोः सतोः ॥ ३१ ॥

पापैस्तुलालिसिंहस्थैः वृष्टिर्याम्यायनादिगैः ।
कर्के वृषे शनौ भौमे द्वन्द्वेऽगौ चाल्पवर्षणम् ॥ ३२ ॥

शुभाशुभग्रहैर्मिश्रैः फलं मिश्रं प्रजायते ।
सूर्ये क्रूरान् गुरुः पश्येत्तदा वृष्टिः सुमध्यमा ॥ ३३ ॥

इत्ययनज्यौतिषम् ॥

यद्यग्रतः पृष्ठतो वा ग्रहाः सूर्यसमीपगाः ।
तदा वृष्टिं प्रकुर्वन्ति न ते चेत् प्रतिलोमगाः ॥ ३४ ॥
ज्ञशुक्रयोस्तु संयोगे ज्ञगुर्वोर्गुरुशुक्रयोः ।
जलं पतति वायुर्वा वह्निर्वा यमभौमयोः ॥ ३५ ॥
शुक्राद् सप्तमगश्चन्द्रस्त्रिकोणे सप्तमे शनेः ।
जलराशिस्थितः शुक्रदृष्टो वा वर्षति द्रुतम् ॥ ३६ ॥
गुरोः सप्तमराशिस्थः प्रत्यग्रो भृगुजो यदि ।
तदातिवर्षणं भूरि प्रावृट्काले बलोज्झिते ॥ ३७ ॥

( नारदः )

सुखेऽष्टमे सप्तमे वा चन्द्रार्काभ्यां सितार्कजौ ।
वर्षासु वृष्ट्यै दुश्चिक्यद्वितीयस्थौ न लग्नतः ॥ ३८ ॥

इति ऋतुज्यौतिषम् ।

८-वर्षाऋतु में वृष्टि के विषय में प्रश्न करने के समय यदि तोयलग्न हो अर्थात लग्न-स्थान में जलराशि हो और जल सम्बन्धी वारुणनक्षत्र हो तथा शुभग्रहों के द्वारा देखे जाने वाले केन्द्र स्थान में चन्द्रमा या शुक्र हो तो शीघ्र ही वर्षा कहनी चाहिये।

९-प्रश्नकाल के लग्नस्थान में वा जलराशि के स्थान में चन्द्रमा हो तो बहुत जल गिरता है। यदि प्रश्नलग्न में शनि, बुध और चन्द्रमा हों तो ओले गिरते हैं।

( जल नक्षत्र ये हैं- हस्त, चित्रा, स्वाति, मूल, पू. षा, श्रवण, पूर्वभाद्र, रेवती, भरणी, तीनों उत्तरा, रोहिणी। १३ )।

१०-प्रश्नलग्न के स्थान में मंगल के होने से खूब बिजलियाँ चमकती हैं और घनघोर गर्जना के साथ खूब वृष्टि होती है।

११-प्रश्नलग्न में यदि चन्द्रमा, मंगल, शुक्र और शनि ये सब एक साथ हों तो वायु के साथ ओलों की वर्षा होती है और चारों ओर बिजली चमकती है।

१२–प्रश्नकाल के केन्द्र-स्थान में कर्क, मकर या मीनराशि के होने पर तथा क्रूरग्रह ( राहु, केतु, शनि ) से वर्जित पूर्ण चन्द्रमा, बुध, शुक्र और वृहस्पति इनके बलवान् होने पर वृष्टि कहनी चाहिये।

१३–प्रश्नकाल के लग्नस्थान में जलराशिगत ग्रहों के होने से तीसरे हिस्से की वर्षा कहनी चाहिए तथा केन्द्रस्थ ग्रह सजल तथा जलराशिगत हो तो अनावृष्टि समझनी चाहिए।

१४–लग्न या केन्द्रस्थान में अक्रूर ( शुभ ) ग्रहों के होने से एक पाद कम अर्थात् पौनवृष्टि होती है तथा शुष्कलग्न हो अर्थात् लग्न में जलराशि न हो और क्रूर ग्रह हों तो वृष्टि का अवरोध ( रुकावट ) समझना चाहिये।

१५–प्रश्नलग्न की कुण्डली में यदि सब ग्रह चर राशि में हों तो बारह प्रहर के अन्दर-अन्दर वृष्टि होती है, यदि लग्नस्थान में जलराशि हो और शुभ ग्रहों से युक्त हों तो तत्काल वर्षा आती है।

१६–प्रश्नलग्न के धनस्थान ( दूसरे स्थान ) में शुभ ग्रह हो, तथा लग्नराशि चर अर्थात् मेष, कर्क, तुला वा मकर हो तो १ मास में वर्षा होती है। स्थिर राशि–वृष, सिंह, वृश्चिक वा कुभ होतो २४ दिन में और द्विस्वभावराशि मिथुन, कन्या, धन वा मीन- होतो ३६ दिन में वर्षा समझनी चाहिये।

१७–लग्न से दूसरे वा तीसरे स्थान में भी यदि जलराशि हो और जल-नक्षत्र भी वहाँ हो तौभी निश्चय से वृष्टि होती है।

१८–लग्नस्थान से दूसरे वा तीसरे स्थान में लग्न का स्वामी हो और वह शुभ ग्रहों से युक्त हो तो २७ दिन में नदी के भरने लायक वर्षा आती है।

१९–लग्न में चतुर्थस्थान में चन्द्रमा, बुध, शुक्र और वृहस्पति यदि स्थित हों तो महावृष्टि के द्वारा वहाँ सुभिक्ष होता है।

२०–प्रश्नलग्न से चतुर्थस्थान में शनि और राहु हों तो वहाँ उस वर्ष में भयंकर दुर्भिक्ष समझना चाहिये।

२१–प्रश्नलग्न की कुंडली में चन्द्रमा और सूर्य से चौथे, आठवें या सातवें स्थान में शुक्र और शनि के होने से वर्षा काल में वृष्टि होती है। इसी तरह लग्न से सातवें और दूसरे स्थान पर भी इन्हीं दोनों शुक्र और शनि के होने से वर्षा होती है।

२२-चारों केन्द्रों के अर्थात् कुण्डली के प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानों के बीच में जिस दिशा की तरफ के केन्द्र में शुभग्रह हों उसी दिशा में अच्छी धान्योत्पत्ति और अच्छा सुभिक्ष होता है।

२३-जिस दिशा में शनि देखा गया हो अर्थात् जिस दिशा में शनिस्थित हो और क्रूरग्रह ( राहु, केतु ) भी वहाँ स्थित हों तो उस दिशा में निस्सन्देह दुर्भिक्ष समझना चाहिये ।

२४-यदि कोई प्रश्न करे कि इस मेरे क्षेत्र ( खेत ) में अच्छी वर्षा होगी या नहीं तो इसका उत्तर पण्डितों को लग्न, चौथे और दशवें घर की श्रेष्ठता देखकर कहना चाहिये ।

२५-वृष्टि संबन्धी प्रश्नलग्न में तुला, सिंह या वृष शनि के होने पर मूषक और शलभ ( टिड्डी ) पैदा होते हैं। मकर, मेष, वृश्चिक और कुँभ के होने पर वायु, वन्हि और ईली आदि का भय रहता है ।

२६-इसी तरह वृष्टि संबन्धी प्रश्नलग्न में मिथुन, मीन, धनु, और कन्या राशि के होने से जल और शीत से कष्ट होता है। किन्तु स्वामी के दृष्टि होने से अल्प कष्ट होता है। अर्थात् उस राशि का स्वामी उसे देखता हो तो अधिक हानि नहीं होती है ।

२७-लग्न बल से धान्य की अधिकता होती है, चतुर्थ स्थान के बल से क्षेत्र-सम्पत् होती है, और खबल ( दशम स्थान के बल ) से कर्म की सफलता होती है। तथा अच्छे ग्रहों का बल होना बल कारक होता है ।

२८-लग्नस्थान से चौथे स्थान में चन्द्र, शुक्र आदि के होने से महावृष्टि समझी जाती है। इसी चौथे स्थान में शनि-राहु आदि क्रूर ग्रहों के होने से अनावृष्टि होती है- इस तरह विद्वान् लोग कहते हैं।

२९-ख मध्य ( दशम स्थान ) में दो शुभग्रहों के होने से विवाह आदि के समय में वर्षा होती है। लग्नस्थान में यदि तीन शुभग्रह हों तो महावृष्टि समझनी चाहिये ।

इति प्रश्न ज्यौतिषम् ।

३०-सूर्य के दक्षिणायन के समय के लग्न में कन्या, मिथुन और मीन राशियों में यदि शुक्र, बुध, चन्द्रमा और वृहस्पति हों तो अच्छी वृष्टि समझनी चाहिये तथा शनि, मंगल और राहु के होने से अल्प वृष्टि होती है ।

३१-३२-दक्षिणायन के आरंभ में कर्क या वृषराशि में शुक्र और बुध के होने से, मीन और कन्या में वृहस्पति और चन्द्रमा के होने से, मिथुन वा मेष में शुक्र बुध के होने से अथवा धनु राशि में चन्द्र और बृहस्पति के होने से तथा तुला, वृश्चिक और सिंह राशि में पाप ग्रहों के होने से वृष्टि होती है। कर्क और वृषराशि में शनि और मंगल ग्रह हों और मिथुन में राहु हो तो अल्प वृष्टि होती है।

३३-एक स्थान में शुभ और अशुभ अर्थात् अधिक तथा कम वर्षा करने वाले ग्रहों के मेल से फल भी मिश्रित ही अर्थात् साधारण ही होता है। सूर्य में ( अर्थात् सूर्य जहाँ स्थित हो उस स्थान में ) यदि क्रूरग्रह स्थित हों तथा उन्हें वृहस्पति देखता हो तो वर्षा मध्यम होती है।

इत्ययनज्यौतिषम्।

३४-ग्रह यदि आगे की तरफ से अथवा पीछे की ओर से सूर्य के समीप जा रहे हों तो वे वृष्टि करते हैं, किन्तु वे ग्रहवक्री ( उलटे चलने वाले ) न हों।

३५-बुध-शुक्र के संयोग में, बुध और वृहस्पति के संयोग में और वृहस्पति-शुक्र के संयोग में जल गिरता है वा वायु चलती है। शनि और मंगल के संयोग में वन्हि (आग) बरसती है।

३६-चन्द्रमा यदि शुक्र से सातवें स्थान में, शनि से सप्तम स्थान में त्रिकोण का होता हो तथा जल राशि में शुक्र बैठा हो तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

३७-नारद ऋषि कहते हैं- वृहस्पति से सातवीं राशि में यदि शुक्र स्थित हो तो वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर भी खूब वर्षा होती है।

३८-वर्षाऋतु में प्रश्नकाल के लग्नचक्र में चन्द्रमा और सूर्य से चौथे, आठवें या सातवें स्थान में अथवा लग्न से सातवें और दूसरे स्थान में शुक्र और शनि के होने से वृष्टि होती है।

इति ऋतुज्यौतिषम्।

इति दैवनिमित्तकसद्योवर्षाधिकारः।

दिविष्ठनिमित्ताधिकारः ।

"प्रावृट्काले यदा सूर्यः प्रखरो दुःसहो भवेत् ।
तद्दिने वृष्टिदः प्रोक्तौ घृतवर्णसमप्रभः ॥ ३९ ॥"

( मयूरचित्रे )

अतिदीप्त्या दुर्निरीक्ष्यो भास्वानुदयकालिकः ।
द्रुतस्वर्णनिभः स्निग्धवैदूर्य्यमणिसप्रभः ॥ ४० ॥

प्रतपत्यतितीक्ष्णस्तु खमुच्चैरपि वा गतः ।
तदहन्येव कुरुते वर्षाकाले सुवर्षणम् ॥ ४१ ॥

उदयेऽस्तमये वापि विवर्णोऽर्कोऽथवा शशी ।
मधुवर्णोऽतिवायुश्चेदतिवृष्टिर्भवेत्तदा ॥ ४२ ॥

अमोघकिरणा भानोः सन्ध्यायामुच्छ्रुता यदि ।
भूसमं रसते मेघस्तन्महावृष्टिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

कपोतशुकदृक्तुल्यः शशी मधुनिभोऽपि वा ।
प्रतिचन्द्रो यदिव्योम्नि न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ४४ ॥

वृष्टयै चन्द्रपरीवेषाः कृकवाकुदृशा समाः ।
वियत्तितिरपक्षाभमेघाच्छन्नं च वृष्टये ॥ ४५ ॥

परिवेषो भवेच्चन्द्रे तारा स्युस्तीव्रतेजसः ।
मेघास्तितिरपक्षाभा ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ४६ ॥

दिशस्तु विमला वृष्टयै काकाण्डाभं नभो यदि ।
वातावरोधागमनं गोनेत्राभं च वृष्टये ॥ ४७ ॥

उदेति प्रखरः सूर्यो गौराभासं तथाम्बरम् ।
प्रफुल्लिता च सन्ध्या स्यादतिवृष्टिर्भविष्यति ॥४८॥

रात्रौ तारा झलत्कारः प्रातश्चात्यरुणो रविः ।
अवृष्टौ शक्रचापश्च सद्यो वृष्टिस्तदा भवेत् ॥ ४९ ॥

प्रभाते पश्चिमायां चेदिन्द्रचापः प्रदृश्यते ।
वारुणैश्चैव नक्षत्रैः शीघ्रं वर्षति वासवः ॥ ५० ॥
नीलच्छायाऽभ्रके वृष्टयै रवेः परिधिकुण्डले ।
यदि विद्युद्दिवैशान्यां तदा बहुजलं पतेत् ॥ ५१ ॥
रोहितं कुण्डलं विद्युत् प्रत्यर्कः परिघो धनुः ।
उदयेऽस्तमये दृष्टा वर्षन्ति न चिराद्ध्रुवम् ॥ ५२ ॥
श्रावणे गर्जिते प्रातर्नीरोपरि भ्रषभ्रमः ।
तदाष्टादशयामात् प्राग्जलैः पूर्णा मही भवेत् ॥५३॥
दक्षिणः प्रबलो वातः सकृदेव प्रजायते ।
वारुणे तत्र नक्षत्रे शीघ्रं वर्षति वासवः ॥ ५४ ॥
धूम्रिताः स्युर्दिशः सर्वाः पूर्ववाते भवत्यपि ।
चतुर्यामान्तरे मेघः सरांसि परिपूरयेत् ॥ ५५ ॥
स्तनितं निशिशोणाभा दिवा विद्युच्च दण्डवत् ।
शीतलः पवनः प्राच्यां न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ५६ ॥
सन्ध्याकाले च ये मेघाः पर्वताकारसंनिभाः ।
आदित्यास्तंगमे तर्हि यामानष्टौ प्रवर्षणम् ॥ ५७ ॥
पूर्वस्यां वार्दलं धूम्रं सूर्यास्ते याति कृष्णताम् ।
उत्तरस्यां मेघमाला शीघ्रं वर्षा प्रवर्तयेत् ॥ ५८ ॥
प्रभाते निर्मला आशा मध्याह्ने ताप आतपः ।
अर्द्धरात्रे तदा वृष्टिः प्रजातोषाय जायते ॥ ५९ ॥
अतिवातं च निर्वातमत्युष्णमतिशीतलम् ।
अत्यभ्रं च निरभ्रं च षड्विधं मेघलक्षणम् ॥ ६० ॥
निर्वातमतिवातं वा सर्ववातं सहोष्मणा ।
जनयन् परितो जातो ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ६१ ॥

वर्षाकालसमारम्भे दक्षिणस्यां प्रजायते ।
वायुर्वा वार्दलं विद्युद् ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ६२ ॥
तिष्ठन्ति शनिवारान्तं शुक्रवारोदिता घनाः ।
अवृष्टा नैव गच्छन्ति ध्रुवं वर्षन्ति वारिदाः ॥ ६३ ॥
उत्तरस्यां घटाटोपः पूर्वतो वायुसञ्चरः ।
तदावश्यं भवेद्वर्षमवृष्टा नैव गच्छति ॥ ६४ ॥
परावर्त्यान्यतो वायुः पूर्वतो यदि संचरेत् ।
यदि तत्र घटाटोपो ध्रुवं वृष्टिर्भविष्यति ॥ ६५ ॥
पूर्वस्यां स्पन्दते विद्युद्वायुर्वायव्यपूर्वतः ।
चातको रौति सोत्कंठमकस्माद् बहु बर्षति ॥ ६६ ॥
यद्यम्बरं बहुपुटैरभ्रैः सर्वं समावृतम् ।
परितः पवनः स्तम्भो न चिराद् बहु बर्षति ॥ ६७ ॥
अत्युष्मणा व्याकुलता सर्वतो जलदोदयः ।
प्रतिकूलो न चेद् वायुर्न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ६८ ॥
सर्वरात्रस्थिरो मेघः प्रभाते यदि गर्जति ।
अत्युष्मणा व्याकुलत्वे बहुरात्रे स वर्षति ॥ ६९ ॥
वार्दलैरभिसंमर्दो वार्दलानां यतस्ततः ।
सर्वतो द्वित्रयामान्ते घटाटोपो भविष्यति ॥ ७० ॥
सायं बहुपुटास्तुल्याः केकिचापजपाशुकैः ।
जलजन्तूर्मिगिरिभिर्वर्षन्ति न चिरात् घनाः ॥ ७१ ॥
पर्य्यन्तधवला नीलाः स्निग्धा नैकपुटा घनाः ।
यान्तः प्राचीं प्रतीचीं वा वर्षंति न चिराद् बहु ॥ ७२ ॥
चित्रास्तित्तिरपक्षाभा उदयेऽस्तमये घनाः ।
दृश्यन्ते चेदहोरात्रं वर्षन्ति न चिराद् बहु ॥ ७३ ॥

३९-' मयूर चित्र ' नामक वृष्टि-विद्या-सम्बन्धी पुस्तक में लिखा है- कि " वर्षा ऋतु में जिस दिन सूर्य अत्यन्त जोशीला, दुस्सह और घृत के रंग की तरह प्रभावाला हो तो उस दिन वह अवश्य वर्षा करता है। "

४०-४१-वर्षा काल में जिस दिन उदय के समय का सूर्य अत्यन्त प्रकाश के कारण देखा न जा सके, पिघले हुए सुवर्ण के समान हो, स्निग्ध वैदूर्यमणि की सी प्रभावाला हो और अत्यन्त तीव्र होकर तप रहा हो अथवा आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ गया हो तो वह उसी दिन खूब अच्छी वर्षा करता है।

४२-उदय वा अस्त के समय में सूर्य अथवा चन्द्रमा फीका होकर शहद के से रंग का हो और प्रचंड हवा चले तो अतिवृष्टि होती है।

४३-सूर्य की अमोघ किरणें सन्ध्या के समय यदि निकली रहें और बादल पृथ्वी पर झुके रहें तो ये महावृष्टि के लक्षण समझने चाहिये। सूर्य पिण्ड से एक प्रकार की जो सीधी रेखा कभी-कभी दिखाई देती है वह अमोघ किरण कहलाती है।

४४-चन्द्रमा यदि कबूतर और तोते की आँखों के सदृश हो अथवा शहद के रंग का हो और आकाश में यदि चन्द्रमा का दूसरा प्रतिबिम्ब भी दिखाई देता हो तो शीघ्र ही वर्षा आती है।

४५-चन्द्रमा के परिवेष कृकवाक की आँखों के समान हो तो वे वृष्टि के सूचक होते हैं और यदि आकाश तीतर के पंखों के समान बादलों से आच्छादित हो तो वृष्टि होती है।

४६-चन्द्रमा में परिवेष हो, तारा-गण में तीव्र प्रकाश हो और बादलों की आभा तीतरों के पाँखों की सी होतो अवश्य मेघ बरसता है।

४७-दिशायें विमल हों और आकाश काक के अंडे की कान्ति वाला हो, वायु का आगमन रुककर होता हो एवं आकाश गोनेत्र की सी कान्ति वाला हो तो यह भी वृष्टि के आगमन का लक्षण है।

४८-उदय होता हुआ सूर्य जोशीला हो, आकाश गौर-वर्ण का हो और संध्या खिली हुई हो तो अति वृष्टि होगी।

४९-रात में तारे चमकते हों, प्रातःकाल अत्यन्त लालवर्ण का सूर्य उदय होता हो और बिना वर्षा के समय इन्द्रधनुष होता हो तो ये लक्षण तत्काल वृष्टि के समझने चाहिये।

५०-प्रातःकाल में इन्द्रधनुष पश्चिम दिशा में दिखाई देता हो तो वारुण ( जलसम्बन्धी ) नक्षत्रों के द्वारा शीघ्र ही वर्षा होती है।

५१-नीले रंग वाले बादलों में सूर्य के चारों ओर परिधि ( कुण्डलना ) हो और दिन में ईशानकोण के अन्दर बिजली होती हो तो अतिवृष्टि होती है।

५२-सूर्य के उदय और अस्त के समय में लाल कुंडल, बिजली, सूर्य की परछाई, परिघ और इन्द्रधनुष दृष्टिगत हों तो शीघ्र ही अधिक बर्षा आती है।

५३-श्रावण के महीने में प्रातःकाल गर्जना हो और जल पर मछली का भ्रम होता हो तो अठारह प्रहर के पहले-पहले पृथ्वी जल पूरित हो जाती है।

५४-श्रावण में एक बार ही दक्षिण की प्रचंड हवा चले तो वारुणनक्षत्र आने पर वहाँ शीघ्र ही वर्षा होती है।

५५-पूर्व की हवा होने पर तमाम दिशायें यदि धूम्रवर्ण की हों तो चार प्रहर के अन्दर-अन्दर बादल तालाबों को भर देंगे।

५६-रात में गर्जना हो, दिन में लाल रंग वाली दण्डाकार बिजली चमकती हो और प्राची दिशामें शीतल हवा चलती हो तो शीघ्र वर्षा आती है।

५७-संध्या के समय में जो बादल पर्वताकार दिखाई देते हों वे सूर्य के अस्त होने पर आठ प्रहर वर्षा करते हैं।

५८-पूर्व दिशा में धूम्रवर्ण का बादल यदि सूर्यास्त होने पर काला होजाय और उत्तर में मेघमाला हो तो शीघ्र वर्षा करती हैं।

५९-प्रभात के समय में दिशायें निर्मल हों और मध्याह्न के समय गर्मी ( धूप ) पड़ती हो तो अर्द्ध-रात्रि के समय प्रजा के सन्तोष के लायक अच्छी वर्षा होती है।

६०-अत्यन्त वायु का चलना, सर्वथा ही वायु का न चलना, अत्यन्त गरमी का पड़ना, अत्यन्त शीत पड़ना, अत्यन्त बादलों का होना और सर्वथा ही बादलों का न होना ये छः प्रकार के मेघ के लक्षण कहे गये हैं।

६१-वायु का न चलना, बहुत वायु चलना और ऊष्मा ( गरमी ) के साथ चौतरफ़ी हवा का चलना, इन सब को पैदा करता हुआ तथा चारों ओर फैला हुआ बादल अवश्य वर्षा करता है।

६२-वर्षाकाल के आरम्भ में दक्षिण दिशा के अन्दर यदि वायु, बादल अथवा बिजली चमकती हो तो अवश्य वर्षा होती है।

६३-शुक्रवार के निकले हुए बादल यदि शनिवार तक ठहरे रहैं तो वे बिना वर्षा किये कभी नष्ट नहीं होते हैं, अवश्य वर्षा करते हैं।

६४-उत्तर में बादलों का घटाटोप हो रहा हो और पूर्व से वायु चलती हो तो अवश्य वर्षा होती है, वे बादल बिना वर्षा किये कभी नहीं जाते हैं।

६५-अन्य किसी दिशा से लौट कर यदि वायु पूर्व से चलने लगे और वहां बादल भी छाये हुए हों तो अवश्य वृष्टि होगी।

६६-पूर्व में बिजली चमकती हो, वायव्य और पूर्व से वायु चलती हो और उत्कंठा के साथ चातक ( पपीहा ) पक्षी शब्द करता हो तो अचानक बहुवृष्टि होती है।

६७-यदि अनेक पुट ( तह ) वाले बादलों से सब आकाश ढका हुआ हो और हवा चारों ओर से रुकी हुई हो तो शीघ्र ही अधिक वर्षा होती है।

६८-अत्यन्त गरमी के कारण यदि घबराहट हो रही हो और वायु प्रतिकूल नहो तो शीघ्र ही चारों ओर वर्षा होती है।

६९-पूरी रातभर छाया हुआ मेघ प्रातःकाल यदि गर्जना करे और अत्यन्त ऊष्मा से व्याकुलता हो रही हो तो कई रात तक वर्षा होती है।

७०-यदि बादलों की बादलों से मुठ भेड़ ( टक्कर ) होती हो तो दो-तीन प्रहर के बाद घटा टोप होगा।

७१-सायंकाल के समय अनेक तह वाले बादल यदि मोर, धनुष, जपा ( लाल पुष्प ) और तोते के तुल्य हों अथवा जल जन्तु, लहरों एवं पहाड़ों के तुल्य हों तो शीघ्र ही वर्षा आती है।

७२-पर्यन्त ( कोर-छोर ) के भागों में श्वेतवर्ण वाले, नीले, स्निग्ध (चिकने) और अनेक पुट ( तह ) वाले बादल यदि पूर्व या पश्चिम को जाते हों तो शीघ्र ही बहुत वर्षा होती है।

७३-तीतर के पंखों की सी आभावाले विचित्र वर्ण के मेघ यदि उदय और अस्त के समय अथवा रात दिन दिखाई दें तो शीघ्र ही बहुत वर्षा होती है।

इति दिविष्ठनिमित्ताधिकारः।

### भूमिष्ठ निमित्ताधिकारः ।

घटस्थं जलमुष्णं स्यात् सर्वा ऊर्ध्वमुखा लताः ।
निर्गच्छेत् कुङ्कुमं तेजः स्नानं कुर्वन्ति पक्षिणः ॥ ७४ ॥
सायं रटति गोमायुः सप्ताहं दुर्दिनं यदि ।
खद्योतो जलदासन्नं दिशि याति सुवृष्टये ॥ ७५ ॥
नयत्यण्डानि चेदुच्चैर्निराबाधे पिपीलिकाः ।
पिपीलिकाः शिरश्छन्ना भविष्यद्वृष्टिसूचिकाः ॥ ७६ ॥
द्रुमाधिरोहः सर्पाणां व्यवायः सर्पयोस्तथा ।
गवां प्लुतं प्रतीन्दुश्च भविष्यद्वृष्टि सूचकाः ॥ ७७ ॥
गोमये चोत्कराः कीटाः परितापोऽतिदारुणः ।
चातकानां रवौ दृष्टिः सद्यो वृष्टिं प्रचोदयेत् ॥ ७८ ॥
धूमिताः निविडाः शैलाश्चर्मादिषु तथार्द्रता ।
अम्लं तु तक्रं जायेत न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ७६ ॥
जलं चेत् विरसं मीनाः पोप्लुयन्ते स्थलानुगाः ।
बहूच्चैर्भेकनिर्ह्रादा न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ८० ॥
विलिखन्ति नखैर्भूमिं मार्जाराः सुभृशं तथा ।
लोहकिट्टं विस्रगन्धि न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ८१ ॥
गिरयोऽञ्जनपुञ्जाभा वाष्पप्रोद्गारिकन्दराः ।
वाष्परुद्धगुहा वापि न चिरात् तर्हि वर्षति ॥ ८२ ॥
कृकलासास्तरुशिरःस्थिताः पश्यन्ति खं बहु ।
गावो रविमुदीक्ष्यन्ते न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ८३ ॥
पशवः कुक्कुराश्चापि धुन्वन्ति श्रवणान् खुरान् ।
नेच्छन्ति निर्गमं गेहान्न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ८४ ॥
गृहाणां पटले स्थित्वा यदि श्वानो दिवोन्मुखाः ।

उदीक्षन्ते शंकितास्या न चिरात्तर्हि वर्षति ॥ ८५ ॥

पक्षौ प्रसार्य्य तिष्ठन्ति वका यदि यतस्ततः ।
सर्वतो द्वित्रयामान्ते घटाटोपो भविष्यति ॥ ८६ ॥

द्रुमारूढाऽहिचीत्कारा भेका गम्भीरनादिनः ।
दिनत्रयान्तरे तत्र देवो गर्जिष्यति ध्रुवम् ॥ ८७ ॥

चटका रजसि स्नाति पयसि स्नाति टिट्टिभः ।
अत्युग्रं चातको ब्रूते ध्रुवं वर्षति वासवः ॥ ८८ ॥

नवनीतद्रवः कुम्भ्यामहिफेनगुड़द्रवः ।
लवणं विक्रियां याति ध्रुवं वर्षति वासवः ॥ ८९ ॥

बहुकालमजा तिष्ठेत् पवनाभिमुखी यदि ।
क्षुद्रसर्पा द्रुमारूढ़ा ध्रुवं वर्षति वासवः ॥ ९० ॥

क्षुद्राणां कुड्मला दग्धा अर्कादौ कुड्मलोदयः ।
वटशाखाः सुरुङ्गाः स्युर्ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ९१ ॥

सार्द्रस्निग्धमृदुः श्मश्रु प्राणिनोऽत्युष्मणाऽऽकुलाः ।
आलस्यं श्लथता निद्रा ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ९२ ॥

गोमये कृमयो भृङ्गं पक्षयोर्भम्भणायितम् ।
कृकलासा रक्तभासा ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ९३ ॥

चातका वा मयूरा वा रुवन्ति वहु फेरवाः ।
निशीथे कुक्कुटारावा ध्रुव वर्षति वारिदः ॥ ९४ ॥

मक्षिका बहु सर्पंति भ्रमंति भ्रमरा बहु ।
नयन्ति गोशकृत्पिंडं ध्रुवं वर्षति वारिदः ॥ ९५ ॥

किट्टमुत्पद्यते कांस्ये व्याकुला जलजन्तवः ।
नाडिकासूष्णता तोये ध्रुवं वर्षति वासवः ॥ ९६ ॥

स्नुहीपत्रेषु दृश्यन्ते यत्र तत्रांकिरोदयाः ।
वृष्टिभावक वायूनां विद्यात्तत्रागमं तदा ॥ ९७ ॥
अच्छिद्रस्निग्धपत्रा हि वृत्ता गुल्मा लता यदि ।
दृश्यन्ते सर्वतस्तर्हि निर्दोषा वर्षवायवः ॥ ९८ ॥
उद्‌गाढनिद्रो दृश्येत पित्तप्रकृतिको नरः ।
वृष्टिभावक वायूनां विद्याद् तत्रागमं तदा ॥ ९९ ॥
वातपित्तप्रधानानां भूरि भ्रमति चेच्छिरः ।
वृष्टिभावुक वायूनां तीव्राणामागमस्तदा ॥ १०० ॥
लेखनीयोगतः पत्रे प्रसरत्येव चेन्मसी ।
क्लेशाच्छुष्यति वा तर्हि भावको वायुरागतः ॥ १०१ ॥

७४-७५–घड़े में रक्खा हुआ जल गरम होजाय, सब लताओं का मुख ऊँचा होजाय, कुँकुमकासा तेज चारों ओर से निकलता हो, पत्ती स्नान करते हों, गीदड़ सायंकाल में चिल्लाते हों सात दिन तक दुर्दिन ( मेघाच्छन्न आकाश ) रहै, रात्रि में जुगनू जल के स्थान के समीप जाता हो तो ये सब वृष्टि के लक्षण हैं।

७६–कीड़ियाँ यदि बाधारहित किसी ऊँचे स्थान में अंडों को लेजाती हों और कटे सिर की कीड़ियाँ दिखाई देती हों तो वे किड़ियाँ भावी वृष्टि की सूचक हैं।

७७–वृक्षों पर सर्पों का चढ़ना, सर्पों का व्यवाय ( मैथुन ) करना, गायों का कूदना, चन्द्रमा की परछाई दिखना ये सब भावी वर्षा के लक्षण हैं।

७८–गोबर में उत्कर–कीटों ( गंडोलों ) का होना, अत्यन्त कठिन परिताप होना, चातक पक्षियों की दृष्टि सूर्यपर होना ये तत्कालीन वृष्टि के लक्षण हैं।

७९–पहाड़ यदि घने, धुंधले हों, चमड़े आदि में गीला पन हो, तक्र ( छाछ ) खट्टी हो जाती हो तो शीघ्र बर्षा होती है।

८०–जल विरस ( दूसरे स्वाद का ) हो जाय, मछलियाँ भूमि की ओर कूदने लगजायँ,

मेंढक बहुत ऊंचे स्वर से बोलने लगें तो शीघ्र ही वर्षा आती है।

८१-मार्जार ( बिल्ली ) यदि नखों से भूमि को बहुत खोदने लगे, लोह के जंग से दुर्गन्ध निकलती हो तो शीघ्र वर्षा आती है।

८२-पर्वत यदि काजल के समूह के समान वर्ण के हो जावें, कन्दराओं से वाष्प ( भाफ ) निकलती हों अथवा गुहायें भाफ से रुकी हों तो शीघ्र वर्षा आती है।

८३-कृकलास ( गिरगट, किरकांट ) यदि वृक्ष की चोटी पर स्थिर होकर आकाश को बहुत देखते हों तथा गायें सूर्य को देखती हों तो शीघ्र वर्षा आती है।

८४-पशु और कुत्ते यदि कानों और पंजों व खुरों को धुनते हों और घर से निकलना नहीं चाहते हों तो शीघ्र वर्षा आती है।

८५-मकान की छतपर स्थित होकर यदि कुत्ते शंका सहित आकाश देखते हों तो शीघ्र वर्षा आती है।

८६-बगुले यदि अपने पंख फैलाकर इधर-उधर बैठते हों तो दो तीन पहर के बाद घटा टोप होगा।

८७-वृक्ष पर चढ़े हुये सर्पों का चीत्कार शब्द होता हो, मेंढकों की जोर की आवाज होती हो, तो तीन दिन में वहाँ मेघ निश्चय से गर्जता है।

८८-चिड़ियाँ मिट्टी में स्नान करें, टिट्टिभ ( टटेरी ) जल में स्नान करें चातक जोर से शब्द करे तो शीघ्र वर्षा आती है।

८९ घड़े में यदि मक्खन, अफीम, गुड़ अथवा लवण पिघलने लगे तो शीघ्र वर्षा आती है।

९०-बकरी यदि अधिक समय तक पवन की गति की ओर मुखकर के खड़ी रहै, और छोटे-छोटे साँप वृक्षों पर चढ़े हों तो शीघ्रही वर्षा होती है।

९१-छोटे पेडों की कलियाँ जल जायँ, आकड़े आदि के पेड़ में कलियाँ निकल आवें, बड़ की शाखाओं में खोखले हो जावें तो शीघ्र वर्षा आती है।

९२-दाढ़ी, मूंछ, गीलीसी, चिकनी, और नरम होजायँ, प्राणी गरमी से व्याकुल होवें तथा आलस्य, शिथिलता, निद्रा आने लगे तो अवश्य वर्षा आती है।

९३–गोबर में कीड़े पड़ जाँय, मौरों के पंखों में ' भन-भन ' शब्द होने लगे, गिरगट लाल आभावाले होजावें तो अवश्य वर्षा आती है।

९४–यदि चातक, मोर, और सियार बहुत रोने लगें और आधी रात में मुरगों के शब्द हों तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

९५–मक्खियाँ यदि बहुत फिरने लगें, भ्रमर अधिक घूमने लगें और वे गोबर की गोलियाँ बनाकर लेजाते हों तो निश्चय से वर्षा होती है।

९६–काँसी में जंग लगने लगे जल के जीव व्याकुल हो जावें, नालियों के जल में कुछ उष्णता होजाय तो अवश्य वर्षा होती है।

९७–थोर के पत्तों में यदि जहां तहां अंकुर निकल आवें तो उन्हें वर्षा कराने वाली हवा के बुलानेवाले जानना चाहिये।

९८–यदि वृक्ष, गुल्म, लतायें छिद्र रहित स्निग्ध पत्र वाली दिखाई देती हों तो चारों ओर से दोष रहित वर्षा कराने वाली वायु चलती है।

९९–पित्त की प्रकृति वाला मनुष्य यदि प्रगाढ़ ( अत्यन्त ) निद्रा में प्राप्त हुआ दिखाई दे तो वृष्टि कारक वायु का आगमन जानना।

१००–वात–पित्त प्रधान मनुष्य का शिर यदि अधिक घूमने लगे तो वृष्टि कारक वायु का आगमन जानना चाहिये।

१०१–कागज पर कलम लगाते ही यदि स्याही फैल जाती हो और कठिनता से वह सूखती हो तो वृष्टि करने वाली वायु का आगमन समझो।

इति भूमिष्ठानिमित्ताधिकारः।

## अनावृष्टि हेतवः।

उल्कापातो दिशां दाहो निर्घातः पांशुवृष्टयः<br>
इन्द्रायुधं खेटयुद्धं षडेते वृष्टिघातकाः ॥ १०२ ॥<br>
नैऋतं पश्चिमोवायुर्नाड्यापः शीतनिर्मलाः।<br>
दशाहानि तदा तत्र वर्षाणां न भविष्यति ॥ १०३ ॥

प्रभातेऽभ्रघटाटोपो मध्यान्हे प्रखरो रविः ।
सायं तु शीतलो वायू रात्रौ तारा न वर्षति ॥ १०४ ॥
दिवा घनघटाटोपो रात्रौ विमलमम्बरम् ।
दुर्भिक्षलक्षणं ज्ञेयं न देवस्तत्र वर्षति ॥ १०५ ॥
संपन्नाऽप्युत्तरप्रान्ते साध्वी घनघटा छटा ।
अवृष्टैव विलीयेत मारुतो यदि दक्षिणः ॥ १०६ ॥
संवृत्तायां झटीवृष्टौ वायुश्च.ति पश्चिमः ।
यदि चेन्द्रधनुर्व्योम्नि तदा श्वभ्रं विलीयते ॥ १०७ ॥
आर्द्रायां च भरण्यां च रोहिण्यां उत्तरात्रये ।
मघायां मंगलो यावत्तावद्देवो न वर्षति ॥ १०८ ॥
रोहिणी दुर्ग्रहा यावद्रूक्षो यावदहस्करः ।
यावच्च सन्ति दुर्योगास्तावद्देवो न वर्षति ॥ १०९ ॥
यावत्काकोदरा मेघा यावच्चंद्रसमो रविः ।
यावत्नैर्ऋतो वायुस्तावद्देवो न वर्षति ॥ ११० ॥
प्रातस्तृणाग्रे मुक्तावद् भान्ति नीहारविन्दवः ।
वातश्च शीतलो वाति तदा प्रावृट् समाप्यते ॥ १११ ॥

* १०२-उल्का गिरना, दिशाओं का दाह होना, निर्घात का होना, रज की वृष्टि होना, इन्द्र धनुष तथा ग्रहों का युद्ध होना ये छः वर्षा के नाश के योग हैं।

---

* यहाँ उल्का शब्द उपलक्षण समझना चाहिये। इससे धिष्ण्या और तारा का भी ग्रहण कर लेना चाहिये।

उल्कापात और धिष्ण्या पात में आकाश के अन्दर प्रकाश होता है, किन्तु उल्का में तो प्रकाश शनैः

१०३–नैर्ऋत्य कोण वा पश्चिम की हवा हो, जल की नालियों के जल शीतल और निर्मल हो जायं तो वहाँ दस दिन तक वर्षा नहीं होगी।

(नोट—वृष्टि परीक्षा के लिए लोहे के नलों में जल भरलेना चाहिए। फिर १२ घंटे बाद इसकी परीक्षा करनी चाहिए।)

१०४–प्रातःकाल बादलों का घटाटोप होना मध्याह्न में सूर्य का प्रचन्डता से तपना, सायंकाल ठंडी वायु का चलना और रात्रि में तारा निकलना ये लक्षण वर्षा के नाशक हैं।

१०५-दिन में बादलों का घटाटोप हुआ रहना और रात्रि में स्वच्छ आकाश का होना दुर्भिक्ष का लक्षण है, ऐसी दशा में मेघ नहीं बरसता है।

---

शनैः बढ़ता है और धिष्ण्या में एकदम प्रकाश होकर क्रमशः क्षीण होता जाता है। तारा टूटने में प्रकाश नहीं होता बल्कि आकाश में एक सीधी सी पतली तथा चमकीली रेखा होकर वहीं तत्काल नष्ट हो जाती है। उसका धिष्ण्या और तारा ये तीनों ही नियत दिशाओं में बहने वाली हवाओं के परस्पर संघर्ष से पैदा होते हैं।

दिग्दाह या दिशा दाह उसे कहते हैं कि जब कभी आकाश का वर्ण लालसा होजाय और गर्मी बढ़-जाय तो सायंकाल के समय पश्चिम क्षितिजपर और प्रातःकाल पूर्वक्षितिज में यह दिग्दाह होता है, अन्य समयों में अन्यत्र नहीं होता।

दिशाओं की नियत वायु के कारण वर्षा के गर्भ (जिनका वर्णन पहले अध्याय में हो चुका है) आपस में भिड़-भिड़ कर नष्ट हो जाते हैं और इससे एक भयंकर शब्द पैदा होता है– यही 'निर्घात' कहलाता है।

आकाश में कभी-कभी धूल ही धूल छाई हुई दिखाई देती है और आकाश रज से अच्छादित होजाता है इसे 'रजोवृष्टि' कहते हैं।

आकाश में सफ़ेद बादल हो रहे हों और थोड़ी देर में इन्द्रधनुष हो जाय तो वह मेघ का विघातक है आकाश में जल के विरल पड़जाने पर इन्द्रधनुष होता है। अग्नि की विशेषता से जल विरल होता है और सोमवल की विशेषता से जल घन हो जाता है। जल के विरल होने से ही इन्द्रधनुष होता है जो उक्त समय में होने से मेघ विघातक होता है।

ग्रहयुद्ध से यह नहीं समझना चाहिये कि ग्रह गण आपस में लड़ाई करते हैं, इसका अभिप्राय यह है कि एक रेखा पर जब एक से अधिक ग्रह आ जाते हैं तब ग्रह की ग्रह के साथ युति होती है, इससे ग्रहों की किरणों का आपस में घर्षण होजाता है, बस इसी घर्षण का नाम ग्रह युद्ध है। इस युद्ध से वायु में एक प्रकार की हल चल उत्पन्न होजाती है, जिससे आकाश में आये हुये मेघ तीन-तेरह होजाते हैं।

१०६-उत्तर दिशा में अच्छी बादलों की घटा छायी भी रहै, किन्तु यदि दक्षिण की हवा चल जाय तो वह घटा बिना वर्षा किये ही नष्ट हो जाती है।

१०७-वर्षा की झड़ी लग रही हो और पश्चिम की वायु तथा इन्द्रधनुष हो जावे तो तत्काल ही वह वृष्टि नष्ट हो जाती है।

१०८-आर्द्रा, भरणी रोहिणी, तीनों उत्तरा ( उत्तराषाढ़, उत्तरफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद ) और मघा इन नक्षत्रों में जब तक मंगल रहै तब तक वर्षा नहीं होती।

१०६-रोहिणी जब तक दुष्ट ग्रहों ( शनि, मंगल सूर्य ) से युक्त रहै, सूर्य जब तक रूक्ष रहै तथा जब तक वर्षा के विघातक दुर्योग रहैं तब तक वर्षा नहीं आती।

११०-जब तक मेघ सर्पाकार रहै, जब तक सूर्य चन्द्र की तरह रहै अर्थात् तेजी रहित धूप हो और जब तक नैऋत्य कोण की वायु रहै तब तक वर्षा नहीं होती।

१११-जब प्रातःकाल घास के अग्रभाग में मोती की तरह ओस की बूंदें चमकने लग जावें और ठंडी हवा चलने लगजाय तो वर्षा काल की समाप्ति समझलेनी चाहिए।

इति अनावृष्टिहेतवः।

## इति सद्यो-लक्षणाध्यायश्चतुर्थः।

## अथ ग्रहयोगाध्यायः ।

पलेशाः स्युः शनिर्ज्ञोऽर्को गुरुरिन्दुर्भृगुः कुजः ।
होरेशाश्च शनिर्जीवो भौमोऽर्कोऽच्छो बुधः शशी ॥ १ ॥
वारेशाः शनिसूर्येन्दुभौमज्ञगुरुभार्गवाः ।
मासेशास्तु शशी ज्ञोऽच्छो रविर्भौमो गुरुः शनिः ॥ २ ॥
वर्षेशाः शनिरारोच्छश्चन्द्रो जीवो रविर्बुधः ।
मेषार्कदिवसे वारा वारेशैर्लुप्ततुर्य्यकैः ॥ ३ ॥
चन्द्रो बुधश्च शुक्रश्च त्रयोऽप्यन्तर्ग्रहा इमे ।
वहिर्ग्रहास्त्रयोऽप्येवं शोणितश्चांगिरा यमः ॥ ४ ॥
गुरुः शुक्रश्च चन्द्रश्च बुधश्चेति शुभग्रहाः ।
शनिश्च मंगलश्चार्कस्त्रयः क्रूरग्रहा इमे ॥ ५ ॥
आर्द्रं चतुर्ग्रहं जीवशनिशुक्रनिशाकरम् ।
त्रयः शुष्कग्रहा उक्ताः बुधः सूर्यश्च मंगलः ॥ ६ ॥
रूक्षौ भौमशनी स्निग्धा गुरुशुक्रदिवाकराः ।
द्विधर्मिणौ चन्द्रचान्द्री योगिद्रष्टृग्रहानुगौ ॥ ७ ॥
शीतं चतुर्ग्रहं सौम्यशनिशुक्रनिशाकरम् ।
मंगलद्युमणी तूष्णौ शीतोष्णस्तुबृहस्पतिः ॥ ८ ॥
शनिर्बृहस्पतिः सौम्यो वायुप्रकृतिकास्त्रयः ।
शोषप्रकृतिको भौमः स्नेहप्रकृतिकाः परे ॥ ९ ॥
पुंग्रहा गुरुभौमार्काः स्त्रीग्रहौ शशिभार्गवौ ।
नपुंसकौ शनिबुधावौष्ण्यशैत्यादिकल्पनात् ॥ १० ॥
शुक्रो निसर्गतो वृष्ट्यै निग्रहाय निमित्ततः ।
शोणितो निग्रहायैव वर्षणाय निमित्ततः ॥ ११ ॥

शुक्रश्च शोणितश्चैतौ परीक्ष्यौ जीवनोदये।
जीवनं हि तदायत्तं तदुपोद्बलकाः परे ॥ १२ ॥
वायुं बुधशनी शुक्रगुरू जनयतो जलम्।
मंगलद्युमणी घर्मं स्वाभावादिति चक्षते ॥ १३ ॥
शनिः पूर्वं गुरुः पूर्वोत्तरं भौमस्तु पाश्चिमम्।
शुक्रस्तु दक्षिणं वायुं संचारयति योगतः ॥ १४ ॥
शनिर्गुरुं घनं शीतं रूक्षं वायुं प्रवाहयेत्।
आर्द्रं तु शीतलं शुक्रो मंगलो रोगकारकम् ॥ १५ ॥
नात्युष्णं नातिशीतं च गुरुरार्द्रं प्रवाहयेत्।
चन्द्रश्चान्द्रिश्च संयुक्तदृष्टखेटानुसारतः ॥ १६ ॥
अभ्रं प्रचण्डवातं च शनिः सम्पादयत्यपि।
शीतर्तौ बिन्दुपाताय ग्रीष्मर्तौ शुक्र उष्मणे ॥ १७ ॥
उल्कापाततडित्गर्जाद्युत्पातं जनयेत्कुजः।
ऋतुं जनयते जीवः सर्वेषां सुप्रसादकम् ॥ १८ ॥
येन येन ग्रहेणायं सन्निधत्ते सुधाकरः।
तत्स्वभावानुसारेण फलं दत्ते तदा तदा ॥ १९ ॥

१-पलों के स्वामी-शनि, बुध, सूर्य, वृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र और मंगल होते हैं। होरा के स्वामी-शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा होते हैं।

२-वारों के स्वामी-शनि, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति और शुक्र होते हैं। महीनों के स्वामी-चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, वृहस्पति और शनि होते हैं।

३-वर्ष के पति-शनि, मंगल, शुक्र, चन्द्रमा, वृहस्पति, सूर्य और बुध होते हैं। मेष की संक्रान्ति के दिन मंगल के अतिरिक्त अन्य वारेश होने चाहिए।

४-चन्द्रमा, बुध और शुक्र ये तीनों अन्तर्ग्रह हैं। मंगल, वृहस्पति और शनि ये तीनों बहिर्ग्रह कहलाते हैं।

५-वृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा और बुध ये शुभग्रह हैं। शनि मंगल और सूर्य ये क्रूरग्रह हैं।

६-वृहस्पति, शनि, शुक्र चन्द्रमा ये चारों आर्द्र ( गीले ) ग्रह कहलाते हैं। बुध, सूर्य, और मंगल ये तीन शुष्क ( सूखे ) ग्रह कहलाते हैं।

७-मंगल और शनि ये दोनों रूक्ष ( रूखी प्रकृति के ) ग्रह हैं। वृहस्पति, शुक्र, और सूर्य ये तीन स्निग्ध ( चिकनी प्रकृति के ) ग्रह हैं। चन्द्रमा और बुध ये द्विधर्मी ( स्निग्ध और रूक्ष ) ग्रह कहलाते हैं ये जिसके साथ हों अथवा जिसे देखते हों उसके अनुगामी होते हैं।

८-बुध, शनि, शुक्र और चन्द्रमा ये चार शीत ( ठंडी प्रकृति के ) ग्रह हैं, मंगल और सूर्य ये दोनों ऊष्मा ( गरम स्वभाव के ) ग्रह हैं, तथा वृहस्पति शीतोष्ण ( सरद गरम स्वभाव के ) ग्रह हैं।

६-शनि, वृहस्पति और बुध ये तीन वायु प्रकृति के ग्रह हैं, मंगल शोष प्रकृति का ( सुखाने वाला ) ग्रह है। अवशिष्ट सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र ये तीनों स्नेह स्वभाव वाले ग्रह हैं।

१०-वृहस्पति, मंगल, सूर्य ये तीन पुं ग्रह ( पुल्लिग ) कहलाते हैं। चन्द्रमा, शुक्र ये दोनों स्त्री ग्रह कहलाते हैं। शनि और बुध नपुंसक ग्रह हैं। यह कल्पना उष्णता और शैत्य आदि गुणों के कारण की गई है।

११-शुक्र हमेशा स्वभाव से ही वृष्टि करता है, किसी निमित्त के होने पर वृष्टि रोकता है। किन्तु मंगल सदा स्वभाव से ही वृष्टि विघातक है, किसी निमित्त के आने पर ही वर्षा करता है।

१२-वर्षा काल के आरम्भ में अर्थात् वर्षा के लिये शुक्र और मंगल की ही परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि इन्हीं दो के आधीन वर्षा का आना है, अन्य ग्रह तो इनके सहायक हैं।

१३-स्वभाव से ही बुध और शनि वायु पैदा करते हैं, शुक्र और वृहस्पति जल पैदा करते हैं, मंगल और सूर्य गरमी पैदा करते हैं।

१४-शनि के योग से पूर्व को वायु चलती है, गुरू के योग से पूर्व उत्तर को, मंगल के योग से पश्चिम को, और शुक्र के योग से दक्षिण दिशा को वायु चलती है।

१५-शनि के योग से भारी, घन, ठंढी और रूखी हवा चलती है, शुक्र के योग से गीली और ठंढी हवा चलती है, और मंगल के योग से रोग करने वाली हवा चलती है।

१६-वृहस्पति न अधिक गरम न अधिक शीत अर्थात् साधारण आर्द्र (गीली) वायु चलाता है। चन्द्रमा और बुध ये दोनों संयुक्त और दृष्ट ग्रहों के अनुसार से वायु चलाते हैं।

१७-शनैश्चर अभ्र और प्रचंड वायु को पैदा करता है। शुक्र शीत ऋतु में बिन्दुपात करता है और ग्रीष्म ऋतु में गरमी पैदा करता है।

१८-मंगल उल्कापात, बिजली, गर्जना आदि उत्पात पैदा करता है। बृहस्पति सब को प्रसन्न करने वाली ऋतु पैदा करता है।

१९-चन्द्रमा जिस-जिस ग्रह के साथ हो जाता है उसी उसी के स्वभाव के अनुसार फल दिया करता है।

इति ग्रहाणां स्वभावाधिकारः।

## अष्ट विकाराः।

वर्णोऽयनगती वक्रमुदयोऽस्तं च मण्डलम्।
राशिर्नक्षत्रमित्येतैः फलमादिश्यते ग्रहे ॥ २० ॥
भौमेऽयने संक्रमे च बुधो जीवस्तथोदये।
शुक्रोऽस्तगमने वृष्टिं करोति च शनिस्त्रिषु ॥ २१ ॥
गच्छन्नुदयमस्तं वा बुधः शुक्रश्च वर्षति।
शुक्रोदये ग्रहा अस्तं गता वर्षन्ति भूरिशः ॥ २२ ॥
गुरुणा यदि दृष्टः स्यादुद्यन्नस्तमयन् ग्रहः।
पूर्णं पादोनदृष्ट्या वा तदा वर्षति नान्यथा ॥ २३ ॥
जलनाडीगताः सर्वे संगमे चोदयास्तयोः।
अयने संक्रमे वक्रमार्गयोर्वृष्टिहेतवः ॥ २४ ॥
आर्द्रादिभमते सूर्ये वृष्टिः प्रायेण जायते।
ग्रहाणामुदयेऽस्ते च संगमे मण्डलान्तरे ॥ २५ ॥
एकराशौ शुक्रशन्योरस्तंभावोऽतिदुःखदः।
क्रूराः शुभाः स्युर्वक्रान्ते वक्रत्वेऽपि गुरुः शुभः ॥ २६ ॥
अतिवारगताः क्रूराः कुर्वते स्वल्पवर्षणम्।
अवर्षणं तु कुर्वन्ति यदि शीघ्राः शुभग्रहाः ॥ २७ ॥

क्रूरैर्वक्रैरनावृष्टिर्वृष्टिर्वक्रैः शुभग्रहैः ।
क्रूरं वक्रं गते सौम्ये शीघ्रे घोरमवर्षणम् ॥ २८ ॥

अतीचारगते जीवे शनौ वक्रत्वमागते ।
आत्यन्तिक्या त्वनावृष्टया पृथ्वी सर्वत्र शुष्यति॥ २९ ॥

वक्रीभूत्वा यदा शुक्रं बुधस्त्यजति कर्हिचित् ।
तदा वर्षति पर्जन्यः सप्त वाहानि पंच वा ॥ ३० ॥

इत्थं वैकारिका देशा उक्ताः साधारणा हि ये ।
प्रतिग्रहं विशेषेण वैकारिकमथ ब्रुवे ॥ ३१ ॥

२०–वर्ण, अयन ( दक्षिणायन और उत्तरायण ) की गति, बक्र गति, उदय, अस्त, मण्डल, राशि और नक्षत्र इन आठों के अनुसार ग्रह का फल वर्णन किया जाता है।

२१–मंगल अयन काल में, बुध संक्रान्ति काल में, बृहस्पति उदय के समय में, शुक्र अस्त होने के समय में और शनैश्चर तीनों ( संक्रमण तथा उदय अस्त ) कालों में वर्षा करता है।

२२–बुध और शुक्र ये दोनों ही उदय एवं अस्त होते हुए वर्षा करते हैं। शुक्र के उदय होने पर अस्त हुए सभी ग्रह खूब वर्षा करते हैं।

२३-उदय तथा अस्त होते हुए ग्रह को गुरू यदि पूर्ण, अथवा चतुर्थांश कम दृष्टि से देखे तो वह ग्रह वर्षा करता है अन्यथा नहीं।

२४–उदय और अस्त के अयन में, संक्रमण में, वक्र और सरल गति के समय जलनाड़ी* में गए हुए सब ग्रह वृष्टि का रक होते हैं।

२५–आर्द्रादि नक्षत्रों पर सूर्य के जाने से प्रायः वृष्टि होती है, तथा इसी प्रकार ग्रहों के उदय, अस्त, संगम और मण्डलान्तर में जाने के समय प्रायः वर्षा होती है।

२६-शुक्र और शनि का एक राशि पर अस्त होना अत्यन्त दुःख दाता है। वक्र गति के समाप्त होने पर क्रूर ग्रह शुभ होजाता है। बृहस्पति वक्रगति की दशा में भी शुभ ही होता है।

*जलनाड़ी का विवरण आगे सप्तनाड़ी चक्र में देखना चाहिये।

२७-अतिचार ( तेज चाल ) में प्राप्त हुए क्रूर ग्रह अल्प वर्षा करते हैं, किन्तु शुभ ग्रहों के अतिचार में प्राप्त होने से अवर्षा होती है ।

२८-क्रूर ग्रहों के वक्री होने से अवर्षा होती है और शुभ ग्रहों के वक्री होने से वृष्टि होती है । क्रूर ग्रह वक्र होजावें और सौम्यग्रह का अतिचार होजावे तो घोर अवर्षा होती है ।

२९-बृहस्पति के अतिचार होने ( तेज चलने ) पर और शनि के वक्री होने पर अत्यन्त अना वृष्टि के कारण सब जगह पृथ्वी सूख जाती है ।

३०-वक्री होकर बुध यदि शुक्र को छोड़ दे तो ५ या ७ दिन वर्षा होती है ।

३१-इस तरह साधारण वैकारिक भाव कहे गये हैं । विशेषकर प्रत्येक ग्रह के वैकारिक भाव अब आगे कहे जाते हैं ।

इति साधारण वैकारि का धिकारः ।

## शनिः ।

विपुलो विमलस्निग्धः शनिर्नीलमणिप्रभः ।
वाणातसी प्रसूनाभः शुभो रुक्षस्तु नेष्टकृत् ॥ ३२ ॥
दक्षिणे पथि दुर्भिक्षं सुभिक्षं तूत्तरे पथि ।
कृत्तिकायास्तु रोहिण्या उत्तरोऽप्यशुभः शनिः ॥ ३३ ॥
सप्रदक्षिणमृक्षाणां सुभिक्षं कुरुते चरन् ।
संचरन्नपसव्यं तु दुर्भिक्षाय शनैश्चरः ॥ ३४ ॥
हस्तः स्वाती भरण्यार्द्रा श्रवणा पूर्वफाल्गुनी ।
शनिः स्निग्धश्चरन्नाशु वर्षति प्रचुरं जलम् ॥ ३५ ॥
श्लेषा शताभिषज्ज्येष्ठा स्वल्पवृष्टिकरः शनिः ।
घोरावृष्टिकरो मूले रेवत्युत्तरभाद्रयोः ॥ ३६ ॥
चित्राराधाऽनुराधासु पूर्वाषाढधनिष्ठयोः ।
पुनर्वसु मघा पुष्येष्ववग्रहकरः शनिः ॥ ३७ ॥

मूलश्रुत्योर्मध्यवृष्टिः सुवृष्टिर्मृगचित्रयोः ।
मन्दवृष्टिः प्रोष्ठपदे हस्ते पुष्ये च वारुणे ॥ ३८ ॥
अनावृष्टिर्मघाश्लेषाकृत्तिकारेवतीषु च ।
विशाखायां शनौ पूर्वं वृष्टिः पश्चादवर्षणम् ॥ ३९ ॥
भरण्यां श्रावणे वृष्टिर्नेत्युक्तं रुद्रयामले ।
विसंवादे प्रमाणं स्यात् प्रत्यक्षं युक्तिमच्च यत् ॥ ४० ॥
मंगलश्च शनिः शुक्रो धनिष्ठायां स्थिता यदि ।
गर्जन्तोऽपि न वर्षन्ति पयोबिन्दुं पयोधराः ॥ ४१ ॥
धनिष्ठायां शनिर्यत्र मंगलेनैव युज्यते ।
तदापि वर्षणं नास्ति सस्यहानिश्च जायते ॥ ४२ ॥
विश्वेशभे भगेमन्दः सप्तमर्क्षे यदा रविः ।
तदा जलविनाशः स्यात् प्रजानां कदनं महत् ॥ ४३ ॥
शनिर्दुष्टो धनुर्मीनकन्यायुग्मवृषस्थितः ।
अतिदुष्टतमाचष्टे तुलावृश्चिकयोरपि ॥ ४४ ॥
सुभिक्षं मकरे कुम्भे मीने सर्वप्रजाक्षयः ।
गुर्जरेऽजे शनौ पीडा प्रभासे तु वृषस्थिते ॥ ४५ ॥
मरुस्थलेषु मिथुने कर्के काश्मीरमण्डले ।
इन्द्रप्रस्थे तु सिंहस्थे कन्यास्थे मालवे तथा ॥ ४६ ॥
तुलावृश्चिकचापेषु यदि याति शनैश्चरः ।
अनावृष्टिं तदा कुर्यात् पृथ्वीं दुर्भिक्षपीडिताम् ॥ ४७ ॥
अन्तर्वेदश्च विन्ध्याद्रिर्मकरे नर्मदातटः ।
कुम्भे तु पश्चिमो देशः पीड्यते गौतमीतटः ॥ ४८ ॥
मीने तु सर्वदेशोऽपि मेषस्थे यमुनातटः ।
वृषे च मिथुने गोदावरीतीरः प्रपीड्यते ॥ ४९ ॥

कर्के वङ्गश्च सिंहे तु कान्यकुब्जः प्रपीड्यते ।
कन्यायां म्लेच्छदेशोऽपि तुलायामुत्तरापथः ॥ ५० ॥
वृश्चिके पूर्वदेशो वा कान्यकुब्जो धनुष्यपि ।
शनिना पीड्यते देश इत्युक्तं रुद्रयामले ॥ ५१ ॥
वक्रीभूत्वा शनिः पूर्वद्वारभेषु न वर्षति ।
दुर्भिक्षं कुरुते मीनकन्ययोर्वक्रतां गतः ॥ ५२ ॥
अस्तंगतस्तुले मीने सुवृष्टिं कुरुते शनिः ।
अवृष्टिं मिथुने कर्के सिंहकन्यामृगालिषु ॥ ५३ ॥
साधु वर्षति सर्वत्र मिथुनेऽस्तगतः शनिः ।
वृश्चिके वर्षति स्वल्पं मकरेऽस्तो न वर्षति ॥ ५४ ॥
मीनेऽस्तगमने साधुवृष्टिमेके विदो विदुः ।
परे त्वाहुर्वृष्टिमान्द्यात् जलं वाय्वादिषु क्वचित् ॥ ५५ ॥
उदयं मिथुने मेषे शनिर्गच्छन् प्रवर्षति ।
कर्के तुले त्वनावृष्टिं विदधात्युदयादयम् ॥ ५६ ॥

३२-आकाश में शनिग्रह यदि बड़े आकार का, विमल, स्निग्ध, नीलमणि की प्रभा वाला और बाण तथा अलसी के पुष्प की सी आभावाला दिखाई देता होतो शभ है। रूक्ष हो तो अशुभ है।

३३-शनि का दक्षिण की तरफ़ उदय होना दुर्भिक्षकारी है और उत्तर की तरफ़ उदय सुभिक्षकारी होता है। किन्तु यदि यह कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र के उत्तर में हो तोभी अशुभ ही होता है।

३४-शनिश्चर यदि नक्षत्रों के दाहिनी ओर चलता है तो सुभिक्ष करता है, बाईं ओर जाता है तो दुर्भिक्ष करता है।

३५-हस्त, स्वाती, भरणी, आर्द्रा, श्रवण, पूर्व फल्गुनी इन नक्षत्रों में चलता हुआ शनि शीघ्र वर्षा करता है।

३६-अश्लेषा, शतभिषा, ज्येष्ठा इन नक्षत्रों पर चलता हुआ शनि अल्पवृष्टि करता है। मूल, रेवती और उत्तराभाद्रपद इनमें चलता हुआ घोर अवृष्टि करता है।

३७-चित्रा, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढ़, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मघा और पुष्य इनमें जाने से शनि वृष्टि को रोकता है।

३८-मूल और श्रवण में साधारण वर्षा होती है। मृगशिर और चित्रा में सुवृष्टि होती है। भाद्रपद, हस्त, पुष्य और वरुण नक्षत्र में मंदवृष्टि होती है।

३९-मघा, अश्लेषा, कृत्तिका, रेवती नक्षत्रों में शनि के प्रविष्ट होने पर अनावृष्टि होती है। विशाखा में प्रविष्ट होने पर पहिले तो वर्षा और बाद में अवर्षा होती है।

४०-रुद्रयामल नाम के ग्रंथ का मत है कि भरणी और श्रवण नक्षत्र में शनि के आने पर वर्षा नहीं होती है।

४१-धनिष्ठा नक्षत्र में यदि मंगल, शनि और शुक्र स्थित हों तो गर्जना करते हुए भी बादल वर्षा नहीं करते हैं।

४२-धनिष्ठा नक्षत्र में शनि यदि केवल मंगल से ही युक्त होजाय, तब भी वर्षा नहीं होती है और धान्य की हानि होती है।

४३- * पूर्वाषाढ़ नक्षत्र या पूर्वफाल्गुनी पर शनि हो और पुनर्वसु नक्षत्र पर सूर्य होतो जल का नाश होता है और प्रजा को दुःख होता है।

४४-धनु, मीन, कन्या, मिथुन और वृषराशि में स्थित शनि दुष्ट कहलाता है। इसी तरह तुला और वृश्चिक में भी स्थित शनि अतिदुष्ट होता है।

४५-शनि के मकर और कुंभराशि पर रहने से सुभिक्ष, मीन पर रहने से सर्वप्रजा का नाश, मेष राशि पर रहने से गुजरात में और वृष पर रहने से प्रभास देश में पीड़ा प्राप्त होती है।

किन २ राशियों पर आया हुआ शनि, कौन-कौन से देशों को हानिकारक है यह आगे बताते हैं।

४६-शनि के मिथुन राशि पर आने से मरुस्थल में, कर्क पर आने से काश्मीर प्रान्त में,

* किसी-किसी ग्रन्थ में पूर्वफाल्गुनी नहीं लिया है केवल पूर्वाषाढ़ ही लिया है।

सिंह राशि पर आने से इन्द्रप्रस्थ ( दिल्ली ) में, कन्या राशि पर आने से मालवा देश में पीड़ा होती है।

४७-शनि जब तुला, वृश्चिक और धन राशि पर जाता है तब अनावृष्टि करता है और भूमण्डल को दुर्भिक्ष से पीड़ित कर देता है।

४८-मकर राशि पर शनि के आजाने से अन्तर्वेद ( गङ्गा यमुना के मध्य का ) देश विन्ध्याद्रि, नर्मदा तट पीडित होते हैं। कुम्भ पर शनि के आने से पश्चिम देश तथा गोदावरी के तटवर्ती देश पीड़ित होते हैं।

४६-मीन राशि पर शनि के आने से सभी देश पीड़ित होते हैं, मेष राशि पर आने से यमुना तट और वृष तथा मिथुन पर आने से गोदावरी नदी का तीर पीड़ित होता है।

५०-कर्क राशि पर शनि के आने से बङ्ग देश, सिंह पर आने से कान्यकुब्ज ( कन्नौज ) देश, कन्या राशि पर आने से म्लेच्छ देश और तुला राशि पर आने से उत्तरापथ पीड़ित होते हैं।

५१-वृश्चिक पर तथा धनु पर शनि आने से पूर्व देश को वा कान्यकुब्ज देश को पीड़ा होती है। यह सब मत रुद्रयामल नामक ग्रन्थ का है।

५२-पूर्व* द्वार नक्षत्रों में वक्री होकर शनि वर्षा नहीं करता है। इसी तरह मीन और कन्या में वक्री होकर शनि दुर्भिक्ष करता है।

५३-तुल और मीन राशि में अस्त होने पर शनि अच्छी वर्षा करता है। मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, मकर और वृश्चिक में अस्त हुआ शनि अवृष्टि करता है।

५४-मिथुन राशि पर अस्त हुआ शनि सब जगह अच्छी वर्षा करता है, वृश्चिक राशि पर अस्त हुआ अल्पवर्षा और मकर राशि पर अस्त हुआ शनि अवृष्टि करता है।

५५-किसी का मत है कि मीन पर अस्त हुआ शनि अच्छी वर्षा करता है, दूसरे लोग कहते हैं कि मीन राशि पर शनि के कारण वृष्टि की कमी से वायव्य आदि कोणों में कहीं वर्षा होजाती है।

५६-मिथुन और मेष राशि पर उदय हुआ शनि वर्षा करता है और कर्क तथा तुला राशि पर उदय होने से अनावृष्टि करता है।

इतिशन्यधिकरणम्।

---

* पूर्वद्वार परिभाषा नक्षत्र ये हैं— कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा।

## बृहस्पतिः ।

मण्डलेषु च सर्वेषु संक्रमन्तं ग्रहं गुरुः ।
पूर्णं पश्यति पादोनं तत्र वृष्टिर्भविष्यति ॥ ५७ ॥
अकल्मषांशुजटिलः कुन्दस्फटिकसप्रभः ।
सत्पथानुगतः खेटैरहतश्च गुरुः शुभः ॥ ५८ ॥
अनावृष्टिं धूम्रनिभः प्रकरोति बृहस्पतिः ।
श्यामादिवर्णविकृतिं गच्छन्नपि स नेष्टकृत् ॥ ५९ ॥
क्षेमारोग्यसुभिक्षाय भानामुत्तरतो गुरुः ।
अनिष्टकृद्दक्षिणतो मध्यतस्तु स मध्यमः ॥ ६० ॥
आच्छाद्य रोहिणीं तारामारुह्य शकटं तथा ।
संचरन् गुरुरत्यन्तं प्रजापीडाद्यनर्थकृत् ॥ ६१ ॥
कृत्तिकातो द्विभं कृत्वा चक्रं द्वादशधा भजेत् ।
एकादशं द्वादशं च पञ्चमं च त्रिभं नयेत् ॥ ६२ ॥
गुरूदयो यत्र भागे तन्नक्षत्रोपलक्षिताः ।
मासवद् द्वादशैव स्युर्गुरुचारेण वत्सराः ॥ ६३ ॥
क्षुदग्निभीः कार्तिकेऽब्दे मार्गे चात्यल्पवर्षणम् ।
पौषे माघे चाविशेषात् सुभिक्षं च सुवृष्टयः ॥ ६४ ॥
क्वचिद् वृष्टिः क्वचित् सस्यं क्वचिद् वृद्धिश्च फाल्गुने ।
चैत्रेऽब्दे मध्यमा वृष्टिर्वैशाखे सर्वसस्यता ॥ ६५ ॥
ज्येष्ठेऽनावृष्टिराषाढे सस्यं वृष्टिः क्वचित् क्वचित् ।
श्रावणे मध्यमा वृष्टिः सस्यं पूर्णं पुनः क्षयः ॥ ६६ ॥
भाद्रे सुभिक्षं दुर्भिक्षमतिवृष्टिः क्वचित् क्वचित् ।
आश्विने तु सुवृष्टिः स्यात् सर्वसस्यसमृद्धयः ॥ ६७ ॥

मूले मघायां रोहिण्यां रेवत्यां चोदिते गुरौ ।
एष्वेव च शनौ प्राप्ते दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ ६८ ॥
सुवृष्टिं कुरुते नक्रे कुम्भे मेषे गुरूदयः ।
कर्के मीने धनुष्यल्पामनावृष्टिं तुलोदयः ॥ ६९ ॥
माघफाल्गुनयोः खण्डवृष्टिः पौषे सुवृष्टयः ।
मार्गशीर्षेऽल्पवृष्टिः स्याच्छ्रावणे बहुवृष्टयः ॥ ७० ॥
आश्विने मध्यमा वृष्टिरवृष्टिर्ज्यैष्ठकार्तिके ।
चैत्रे विचित्रवृष्टिः स्यात् वैशाखे तु सुभिक्षता ॥ ७१ ॥
आषाढभाद्रयोर्हानिर्गुरोरुदयतः फलम् ।
अस्तो गुरुः करोत्यल्पां वृष्टिं मिथुनमेषयोः ॥ ७२ ॥
सुभिक्षं मीनकन्यास्तो दुर्भिक्षं तु वृषेऽस्तगः ।
वक्रो जीवः सुभिक्षाय यत्र तत्र यदा तदा ॥ ७३ ॥
रेवत्यार्द्रामृगशिरःस्थितोऽनावृष्टिकृद् गुरुः ।
अषाढाफाल्गुनीहस्तमघासु तु सुवृष्टिकृत् ॥ ७४ ॥
परे तु गुरुचारेऽस्मिन्नन्यथैव फलं विदुः ।
त्रिभे भगाच्च विष्णोश्च मूलार्द्राश्विषु वृष्टिकृत् ॥७५॥
अग्नेस्त्रिभेऽदितिश्लेषामघाराधानुराधभे ।
मध्यवृष्टिमनावृष्टिं कुरुते शेषभे गुरुः ॥ ७६ ॥
परे तु गुरुचारेऽस्मिन्नन्यथैव फलं विदुः ।
अनावृष्टयै भाद्रपदाश्लेषा पुष्यपुनर्वसू ॥ ७७ ॥
कृत्तिका रोहिणी राधानुराधा मध्यवृष्टये ।
मघा तु फल्गुनी हस्तो मृग्यार्द्रा च सुवृष्टये ॥ ७८ ॥
मासद्वयं शाक्रमूले मासत्रयमषाढयोः ।
स्वातीचित्रे खण्डवृष्टयै गुरुयोगात् पराः शुभाः ॥ ७९ ॥

एकादश्यां प्रयास्यन् स्यात् सिहं कन्यां तुलामभि ।
बृहस्पतिस्तदा नूनं प्रवर्षति महाजलम् ॥ ८० ॥
स्वल्पालिचापयोर्वृष्टिर्मध्या गोयुग्मकर्कटे ।
सिंहेऽतिवृष्टिः सद्वृष्टिः शेषराशिस्थिते गुरौ ॥ ८१ ॥
सिंहेऽतिवृष्टयो मीनेऽनावृष्टिश्चापगे समा ।
कन्याजयोः सुवृष्टिः स्यात् गुरौ शेषेऽल्पवृष्टयः ॥ ८२ ॥
बृहस्पतिर्दिवाचापे निशि मीने फलाधिकः ।
सिंहे दशांशे विंशांशे मेषेऽसौ विफलो दिवा ॥ ८३ ॥

५७-सब मण्डलों में संक्रमण करते हुए ग्रहों को जहाँ बृहस्पति पूर्ण दृष्टि अथवा एक पाद कम दृष्टि से देखता है, वहाँ वर्षा होती है ।

५८-शुभ किरणों से जटिल, कुन्द पुष्प और स्फटिक मणि की सी प्रभावाला, अच्छे मार्ग पर जाता हुआ तथा अन्य ग्रहों से अहत ( युति-रहित ) बृहस्पति शुभ होता है ।

५९-धूआँ के रंग वाला बृहस्पति अनावृष्टि करता है । इसी तरह काले वर्ण आदि विकार को प्राप्त हुआ भी बृहस्पति शुभ नहीं है ।

६०-नक्षत्रों के उत्तर की तरफ हो तो बृहस्पति क्षेम और आरोग्य प्रदान करता है, दक्षिण की तरफ हो तो अनिष्ट कारक है तथा मध्य में होतो मध्यम फल देता है ।

६१-बृहस्पति यदि रोहिणी के तारा को आच्छादित करके और शकट पर ( रोहिणी ताराओं का समूह शकटाकार होता है ) आरूढ़ होकर जावै तो वह प्रजा पीड़ा आदि क्लेशों से अत्यन्त अनर्थकारी होता है ।

६२-६३-कृत्तिका नक्षत्र से गणना करते हुए सब (२७) नक्षत्रों का दो दो का चक्र (थोक) कर लेना चाहिये । इस विभाग में पाँचवें ग्यारहवें और बारहवें नक्षत्र का तीन तीन का थोक करना चाहिये । इस प्रकार २७ नक्षत्र १२ चक्र में बँट जाते हैं । जिस भाग में जिस नक्षत्र से उपलक्षित बृहस्पति का उदय हो वहीं से उस वक्त में आये नक्षत्र से उपलक्षित मास से शुरू करके गुरू की गति के अनुसार उन-उन नामों के बारह वर्ष कायम करले ने चाहिये जैसे कृत्तिका में कार्त्तिक, पुष्य में पौष इत्यादि । नक्षत्रों का विभाग निम्नलिखित क्रम से समझना चाहिये ।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
|---|---|---|---|---|---|
| कृत्तिका<br>रोहिणी | मृगशिर<br>आर्द्रा | पुनर्वसु<br>पुष्य | अश्लेषा<br>मघा | पू. फा.<br>उत्त. फा.<br>हस्त | चित्रा<br>स्वाति |

| ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ |
|---|---|---|---|---|---|
| विशाखा<br>अनुराधा | ज्येष्ठा<br>मूल | पूर्वाषाढा<br>उत्तराषाढ़ा | श्रवण<br>धनिष्ठा | शतभिषा<br>पू. भा.<br>उ. भा. | रेवती<br>अश्विनी<br>भरणी |

६४-इस उपर्युक्त चक्र के क्रम से गुरू का उदय कार्त्तिक के नक्षत्रों में हो तो कार्त्तिक नाम के वर्ष में अग्नि के द्वारा नष्ट होकर मनुष्य भूखे मरैं, मार्ग शीर्ष में उदय होने से उस नाम के वर्ष में अत्यल्प वर्षा और, पौष या माघ में गुरू के उदय होने से उन-उन वर्षों में सामान्यतः सुभिक्ष और सुवृष्टि होती है ।

६५-फाल्गुन में उदय होने से उस नाम के वर्ष में कहीं वृष्टि कहीं वृद्धि और कहीं पर धान्य पैदा होता है । चैत्र में होने से उस वर्ष में मध्यम वर्षा होती है। वैशाख में होने से सब धान्य होते हैं ।

६६-ज्येष्ठ में उदय होने से अनावृष्टि, आषाढ़ में उदय होने से धान्य तथा कहीं कहीं वर्षा, श्रावण में उदय होने से मध्य वर्षा तथा पूरा धान्य होकर पुनः नाश होता है ।

६७-भाद्र में उदय होने से सुभिक्ष होता है, अतिवृष्टि से कहीं कहीं दुर्भिक्ष भी हो जाता है। आश्विन में गुरू के उदय से तो अच्छी वर्षा और सब तरह की धान्य समृद्धि होती है ।

६८-मूल, मघा, रोहिणी और रेवती नक्षत्रों में उदय हुआ गुरु सुभिक्षकारी होता है। तथा इन्हीं उपर्युक्त नक्षत्रों में शनि प्राप्त होवै तो वह भी निश्चय ही दुर्भिक्ष करता है ।

६९-मकर, कुंभ और मेष राशि पर उदय हुआ बृहस्पति सुवृष्टि कारक होता है । कर्क, मीन और धनुष पर उदय हुआ अल्पवृष्टि तथा तुला पर उदय हुआ गुरू अनावृष्टि करता है ।

७०-७२-बृहस्पति का उदय यदि माघ फाल्गुन में हो तो खण्डवर्षा, पौष में हो तो अच्छी वर्षा मार्गशीर्ष में हो तो अल्पवृष्टि, श्रावण में हो तो बहुवृष्टि, आश्विन में हो तो साधारण वर्षा ज्येष्ठ और कार्तिक में हो तो अवृष्टि, चैत्र में हो तो विचित्र वर्षा, वैशाख में होतो सुभिक्ष, तथा आषाढ़ और भाद्रपद में होतो हानि होती है । यह गुरु के उदय का फल समझना चाहिये ।

७३-मीन और कन्या राशि पर अस्त हुआ गुरू सुभिक्ष करता है और वृष राशिपर अस्त हुआ दुर्भिक्ष करता है। बृहस्पति जहाँ जब वक्री होता है तहाँ तब वह सुभिक्षकारक होता है।

७४-रेवती, आर्द्रा और मृगशिर इन तीनों नक्षत्रों पर स्थित बृहस्पति अनावृष्टि करता है। आषाढ़, फाल्गुनी, हस्त और मघा नक्षत्रों पर स्थित बृहस्पति सुवृष्टि करता है।

७५-७६-कई तो गुरुवार का अन्य ही फल कहते हैं। यथा—पूर्व फल्गुनी और श्रवण से तीसरे नक्षत्र पर तथा मूल आर्द्रा और अश्विनी नक्षत्र पर स्थित बृहस्पति अच्छी वर्षा करता है। कृत्तिका से तीसरे नक्षत्र पर तथा पुनर्वसु, अश्लेषा, मघा, विशाखा और अनुराधा नक्षत्र पर स्थित बृहस्पति मध्यवृष्टि करता है। इनके अतिरिक्त बचे हुए नक्षत्रों में स्थित बृहस्पति अनावृष्टि करता है।

७७-७८-कई ऋषियों का इस गुरुवार में और ही मत है। वह इस प्रकार है-गुरु के योग से भाद्रपदा, अश्लेषा, पुष्य और पुनर्वसु अनावृष्टि के लिये होते हैं। कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, अनुराधा, मध्यवृष्टि के लिये और मघा, फाल्गुनी, हस्त, मृगशिर, आर्द्रा ये नक्षत्र सुवृष्टि के लिये होते हैं।

७९-ज्येष्ठा और मूल में यदि बृहस्पति हो तो दो महीने तक वृष्टि होती है। पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़ में बृहस्पति हो तो तीन महीने तक वृष्टि होती है। स्वाती, चित्रा के तृतीय और चतुर्थ चरण (तुला) में यदि बृहस्पति रहे तो खण्ड वृष्टि होती है उसके परे शुभ होता है।

८०-८१-बृहस्पति यदि एकादशी तिथि में सिंह, कन्या अथवा तुला राशि को प्राप्त हो तो अवश्य महावर्षा होती है, वृश्चिक या धनुष राशि को प्राप्त हो तो अल्पवर्षा और वृष, मिथुन तथा कर्क राशि को प्राप्त हो तो मध्यम वर्षा होती है। सिंह राशि में अतिवृष्टि और अवशिष्ट राशियों में गुरु के स्थित होने पर शुभ वर्षा होती है।

८२-किसी का मत है कि गुरु के सिंह राशि पर आने से अतिवृष्टि, मीन पर आने से अनावृष्टि, धनुष पर आने से मध्यवृष्टि, कन्या और मेष पर आने से सुवर्षा और शेष राशियों में अल्पवर्षा होती है।

८३-बृहस्पति दिन में धन राशि पर प्रविष्ट होने से और रात्रि में मीन राशि पर प्रविष्ट होने से अधिक फल देता है। सिंह राशि के दशवें अंश पर और मेष राशि के बीसवें अंश पर दिन में प्रविष्ट होने से इसका फल नष्ट हो जाता है।

इति बृहस्पत्यधिकरणम्।

मङ्गलः

विपुलो विमलो भौमः किंशुकाशोकवच्छविः ।
शुभाय तप्तताम्राभो मार्गमुत्तरमाश्रितः ॥ ८४ ॥
अनृजुः पुरुषः श्यामो ज्वलितो धूमवान् शिखी ।
विवर्णो वामगो धत्ते मङ्गलोऽपि न मङ्गलम् ॥ ८५ ॥
धूमायन् सशिखो वापि पारियात्राचलोपगान् ।
विहन्ति मंगलो देशान् ये च देशाः स्वभक्तिगाः ॥ ८६ ॥
नेष्टो भौमो मघां भिन्दन् विशाखां रोहिणीमपि ।
भौमो वृष्टिनिरोधाय रोहिण्या दक्षिणश्चरन् ॥ ८७ ॥
उष्णमश्रुमुखं व्यालं रक्तास्यमसिमौसलम् ।
भौमस्य पञ्चवक्राः स्युर्द्वितीयेन्त्येऽप्यवर्षणम् ॥ ८८ ॥

अवृष्टिर्मङ्गले वक्रे मकरेऽस्तः प्रवर्षति ।
मिथुनेऽस्तोऽल्पवर्षाय नान्यत्रास्तो विशेषकृत् ॥ ८९ ॥
कुम्भेऽतिवृष्टिर्वृष्टिस्तु चापे मीने त्ववर्षणम् ।
अवग्रहोत्तरा वृष्टिर्मकरे मङ्गलोदयात् ॥ ९० ॥
दास्त्रब्राह्मादित्यपित्र्यस्तेष्वेवं द्विदैवते ।
मूलश्रवणपूभासु मङ्गलस्योदयः शुभः ॥ ९१ ॥
यदा मलिम्लुचे मासि भौमो राश्यन्तरे व्रजेत् ।
गुरुर्वा महती वृष्टिरथवा लोकसंचयः ॥ ९२ ॥

पूर्वात्रये च रेवत्यामश्विन्यां हस्ततस्त्रिभे ।
वारुणे चानुराधायां मङ्गलः साधु वर्षति ॥ ९३ ॥
रोहिणीश्रवणाज्येष्ठामूलस्थश्चोत्तरास्थितः ।
मघार्द्राभरणीस्वातीस्थितो भौमो न वर्षति ॥ ९४ ॥

मङ्गलः कर्कराशिस्थः सुवर्षति शुभेक्षितः।
शुभैरयुक्तः सिंहे तु कन्यायां च न वर्षति ॥ ६५ ॥
मेषे दिवा वृश्चिके तु राशावधिकरोत्ययम् ।
जले प्रभवति प्रायः कर्के मीने च वृश्चिके ॥ ६६ ॥

८४-बड़े मण्डलवाला, स्वच्छ, किंशुक ( केसूला के पुष्प ) और अशोक पुष्प ( आसापाला के फूल ) की सी शोभा वाला, तपाये हुए ताम्र की आभावाला तथा उत्तर के मार्ग में आश्रित मङ्गल का तारा शुभ होता है।

८५-कुटिल ( टेढ़ा ), कठोर, श्यामवर्ण का जलता हुआ सा धुआँ तथा शिखावाला विवर्ण और वाम मार्ग पर आश्रित मंगल अमंगल करता है।

८६-शिखावाला एवं धुआंसा दिखाई देने वाला मंगल पारियात्र पर्वत के प्रान्त देशों को और अपनी 'भक्ति'* में आए हुए देशों को नष्ट करता है।

८७-मघा, विशाखा और रोहिणी नक्षत्र को भेदन करता हुआ मंगल शुभ नहीं होता है। रोहिणी के दक्षिण चलता हुआ मंगल वर्षा को रोकता है।

८८-मंगल के उष्ण, अश्रुमुख, व्याल, रक्तास्य और असिमौसल ये पाँच मुख हैं; इनमें दूसरे और पाँचवें मुख से वर्षा नहीं होती है।

८९-मंगल के वक्री होने से अवर्षा होती है। मकर राशि पर अस्त होने से वर्षा होती है तथा मिथुन पर अस्त होने से अल्प वर्षा होती है। अन्य राशियों पर अस्त होने से यह मंगल विशेष फल नहीं दिखाता है।

९०-मंगल का उदय यदि कुंभ में होतो अतिवृष्टि, धनुष पर हो तो वर्षा, मीन में होतो अनावृष्टि होती है। मकर में मंगल का उदय होतो प्रारंभ में वर्षा होकर आगे वर्षा रुक जाती है।

९१-अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, विशाखा, मूल, श्रवण और पूर्वाभाद्रपद इन नक्षत्रों में मंगल का उदय होना शुभ है।

९२-अधिक मास में मंगल अथवा बृहस्पति एक राशि से दूसरी राशि पर प्रवेश करै तो महावृष्टि या लोक का नाश होता है।

---

* मंगल की भक्ति के देशों के नाम आगे "ग्रहभक्तिदेश" नामके प्रकरण में देखें।

९३-पूर्व फल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, अश्विनी, हस्त, चित्रा स्वाती, अनुराधा और वारुण नक्षत्र में मंगल अच्छी वर्षा करता है।

९४-रोहिणी, श्रवण, ज्येष्ठा, मूल, मघा, आर्द्रा, भरणी और स्वाती इन नक्षत्रों में स्थित हुआ तथा तीनों उत्तरा ( उ. फ., उ. षा., उ, भा. ) में स्थित हुआ मंगल वर्षा नहीं करता है।

९५- कर्क राशि पर स्थित तथा शुभ ग्रहों से देखा हुआ मंगल अच्छी वर्षा करता है।

९६-यह मंगल मेष और वृश्चिक राशिपर दिन में आने से अपना विशेष प्रभाव दिखाता है तथा कर्क, मीन और वृश्चिक राशिपर आने से जल के विषय में विशेष शक्ति बनाता है।

इति मंगलाधिकारः ।

## शुक्रः ।

स्फुरद्बिम्बो निर्विकारो विपुलो दधिसप्रभः ।
शुभाय विजयी शुक्रो मार्गमुत्तरमाश्रितः ॥ ९७ ॥
माञ्जिष्ठाभः सुवर्णाभो घृतमण्डनिभो भृगुः ।
दधिप्रभो रौप्यनिभः सुवृष्टिं जनयिष्यति ॥ ९८ ॥
शुक्रस्ताम्रनिभो रूक्षो दिवादृष्टोऽप्यवृष्टिकृत् ।
वृषे कर्के तुले वक्रो मार्गी भूत्वा सुवर्षति ॥ ९९ ॥
नागो गजैरावतौ च वृषभो गोजरद्गवौ ।
मृगोऽजवैश्वानरजावुत्तराद्दक्षिणे स्थिताः ॥ १०० ॥
नवैता वीथयः क्लृप्ता आश्विनादिभमण्डले ।
त्रिभिस्त्रिभिस्तु नक्षत्रैस्तासां मार्गास्त्रयस्त्रिकैः॥ १०१ ॥
ऐरावतः सौम्यमार्गो मध्यमार्गो जरद्गवः ।
वैश्वानरो याम्यमार्गो भागाः षोडश षोडश ॥ १०२ ॥
वृष्टिसस्यार्घकृच्छुक्रः शुभः सौम्यासु वीथिसु ।
वृष्टिः सस्यार्घनाशाय याम्ये पथि सवीथिषु ॥ १०३ ॥

उद्यन्नस्तमयन् शुक्रः शुभायोत्तरवीथिषु ।
मध्यासु मध्यफलदो दक्षिणासु त्वनिष्टकृत् ॥ १०४ ॥

अस्तं गच्छन्ननावृष्टिं कुर्य्याद् वृश्चिकचापयोः ।
मीनेऽतिवृष्टिं कुरुते सुवृष्टिं मिथुने भृगुः ॥ १०५ ॥

वृषकर्कालिमीनेषु वृष्टिः शुक्रोदयेऽधिका ।
तुलायामल्पवृष्टिः स्यादवृष्टिश्चापकुम्भयोः ॥ १०६ ॥

उद्यन्नस्तमयन् वासावाषाढे जलशोषकृत् ।
उदितः फाल्गुने ज्यैष्ठे सुवृष्टिं कुरुते भृगुः ॥१०७॥

श्रावणेऽस्तंगतो दुःखं शुभं भाद्रे तथाश्विने ।
अस्तगः कार्तिके ज्यैष्ठे महावृष्टिं करोति सः ॥१०८॥

१..................................
षण्मासानिव दुर्भिक्षं फाल्गुनेऽस्तं गते भृगौ ॥१०९॥

कार्तिकेऽस्तं गतः शुक्रो यद्युदेति च कार्तिके ।
तदाह्नां नवतिं पूर्णां तत्र देवो न वर्षति ॥ ११० ॥

शुक्रस्यास्तोदयौ शुक्ले वृष्टियोगाय चक्षते ।
कृष्णेऽष्टम्यां चतुर्दश्याममायां च सुवृष्टये ॥ १११ ॥

भरणीतश्चतुष्कन्तु चतुष्कं पंचकं त्रिकम् ।
पञ्चकं षट्कमित्येवं ग्रहाणां मण्डलानि षट् ॥११२॥

वक्रोदयास्तगो वृष्ट्यै द्वितीये मण्डले भृगुः ।
त्रिके षट्के च शुभदस्ततोऽन्यत्राशुभावहः ॥ ११३ ॥

द्वारं मेघस्य मेघस्य वायोर्घर्मस्य रेतसः ।
हेम्नः क्रमेण षट्स्वेषु भिद्यते तूदये फलम् ॥११४॥

मेघद्वारद्वये मेघा वर्षन्ति प्रचुरं पयः ।
वायुद्वारे न वर्षन्ति मेघा दिव्युन्नतिं गताः ॥ ११५ ॥

१ क्रोडपत्रेष्वपि नोपलभ्यतेऽर्धमिदम् ।

घर्मद्वारे सुवृष्टिः स्याद्रेतोद्वारेऽभ्रसंचयः ।
हेमद्वारे सुवृष्टिश्च सुभिक्षं च प्रजायते ॥ ११६ ॥

भरण्याद्यष्टकं मेघद्वारं तत्रोदये जलम् ।
मघादिपञ्चकं धूलिद्वारं तत्र जलक्षयः ॥ ११७ ॥

स्वात्यादिसप्तकं राजद्वारं तत्रोदयोऽशुभः ।
उदयात् कनकद्वारे सप्तके तु शुभोदयः ॥ ११८ ॥

भरण्याद्यष्टनक्षत्रचारी शुक्रः सुवृष्टये ।
तत्राप्यार्द्रादित्यपुष्याश्लेषासु तु विशेषतः ॥ ११६ ॥

वृष्ट्यै भाद्रपदे याम्या फल्गुन्यौ त्वाष्ट्रतस्त्रिभम् ।
योगाच्छुक्रेण भेदात्तु मघाग्नेयी च वर्षति ॥ १२० ॥

ज्येष्ठामूले अषाढे च शुक्रभेदात् पुनर्वसू ।
अनावृष्ट्यै तथा शुक्रो मार्गे भौमहते व्रजन् ॥ १२१ ॥

अवर्षके भे विचरन् भार्गवो यदि वर्षति ।
वर्षकर्क्षगतो वर्षं षोडशार्चिर्न वर्षति ॥ १२२ ॥

प्राच्यां प्रावृषि दृष्टोऽल्पं जलं सृजति नित्यशः ।
पश्चिमायां स्थितः शुक्रो जलं सृजति भूरिशः ॥१२३॥

शुक्रः स्वातीत्रये पूर्वे पश्चिमे पितृपञ्चके ।
अनावृष्टिं प्रकुरुते विपरीतः प्रवर्षति ॥ १२४ ॥

मघादिपञ्चके शुक्रो दृश्यते यदि पश्चिमे ।
अनावृष्टिकरः किंतु पूर्वदृष्टः सुवृष्टिकृत् ॥ १२५ ॥

स्वात्यादित्रितये शुक्रो दृष्टः पश्चिमतो यदि ।
सुवृष्टिः स्यादनावृष्टिः पूर्वदृष्टे तु कष्टदा ॥ १२६ ॥

ज्येष्ठमूलास्थिते पूर्वदृष्टेऽनावृष्टिरिष्यते ।
हस्तानुराधयोः केचिदनावृष्टिं प्रचक्षते ॥ १२७ ॥

नित्यं वातश्च वृष्टिश्च शुक्रे मिथुनकर्कयोः ।
शुक्रे कर्के सरः शुष्येत् सिंहे शुष्येत् पयोधरः ॥ १२८॥
कुम्भराशिगतः शुक्रो ददाति प्रचुरं जलम् ।
शेषराशिगते शुक्रे विशेषो नावधार्य्यते ॥ १२९ ॥

९७–चमकते हुए बिम्बवाला निर्विकार, बडा और दधि के समान प्रभावाला तथा उत्तर के मार्ग में आश्रित एवं विजयी शुक्र होता है ।

९८– जो शुक्र मंजीठ और सुवर्ण की आभावाला हो, घृत तथा चावल के माँड के समान वर्ण वाला तथा दही और चाँदी की प्रभावाला होतो वह अच्छी वर्षा करेगा ।

९९–शुक्र यदि ताम्रवर्ण का हो, रूक्ष हो अथवा दिन में दीखता भी हो तो वह अनावृष्टि करता है। यह शुक्र वृष, कर्क और तुलाराशिपर वक्र होकर मार्गी होने पर अच्छी वर्षा करता है ।

१००-१०१–नाग, गज, ऐरावत, वृषभ, गो, जरद्गव, मृग, अज, वैश्वानर इन नौ वीथियों की उत्तर से दक्षिण की ओर अश्विन्यादि नक्षत्रमण्डल में कल्पना की गई है । इस तरह तीन नक्षत्रों के द्वारा नौ मार्ग बने हैं; क्योंकि नक्षत्र कुल २७ हैं ।

१०२–ऐरावत को सौम्य मार्ग, जरद्गव को मध्यमार्ग और वैश्वानर को याम्यमार्ग कहते हैं। अर्थात् उत्तर का मार्ग ऐरावत, मध्यका जरद्गव और दक्षिण का मार्ग वैश्वानरमार्ग है । इन तीन मार्गों के सोलह सोलह भाग हैं । ग्रह संस्था ४८ अंश के परिसर में स्थित हैं अतः १६ अंश के ३ मार्ग होने से ४८ अंश का परिसर समाप्त हो जाता है ।

१०३–सौम्य ( उत्तर ) वीथियों में शुक्र वर्षा धान्य आदि करता है और शुभ होता है। दक्षिण वीथियों में शुक्र वर्षा धान्य आदि का नाश करता है ।

१०४–उत्तर की वीथियों में शुक्र उदय और अस्त होता हुआ शुभ होता है; मध्य वीथियों में मध्यफल देता है और दक्षिण की वीथियों में अनिष्ट करता है ।

१०५–वृश्चिक और धनराशि पर अस्त हुआ शुक्र अनावृष्टि करता है, मीनराशि पर अतिवृष्टि और मिथुनराशि पर सुवृष्टि करता है ।

१०६–वृष, कर्क, वृश्चिक और मीनराशि पर शुक्र के उदय होने से अधिक वर्षा होती है । तुला में अल्पवृष्टि और धन तथा कुंभ में उदय होने से अवृष्टि होती है ।

१०७-यह शुक्र आषाढ़ के महीने में उदय अस्त हुआ जल को सुखा डालता है, वर्षा नहीं होने देता है। किन्तु फाल्गुन या ज्येष्ठ में उदय हुआ शुक्र सुवृष्टि करता है।

१०८-श्रावण में अस्त हुआ शुक्र दुःखप्रद होता है, भाद्र और आश्विन में अस्त हुआ शुभ होता है और कार्तिक तथा ज्येष्ठ में अस्त हुआ महावृष्टि करता है।

१०९-फाल्गुन के महीने में अस्त हुआ शुक्र छै महीने तक दुर्भिक्ष करता है।

११०-कार्तिक मास में अस्त हुए शुक्र का यदि कार्तिक में ही उदय होजाय तो ९० दिन पर्यन्त वर्षा नहीं होगी।

१११-शुक्लपक्ष में शुक्र का अस्त और उदय होना वृष्टियोग का लक्षण है। तथा कृष्ण-पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्या में इसका उदय और अस्त होना सुवृष्टिकारक है।

११२-भरणी से चार नक्षत्र (मृगशिरा तक) एक मण्डल, आर्द्रा से चार नक्षत्र (अश्लेषा तक) दूसरा मण्डल, मघा से पाँच नक्षत्र (चित्रा तक) तीसरा मण्डल, स्वाति से तीन नक्षत्र (अनुराधा तक) चौथा मण्डल, ज्येष्ठा से पाँच नक्षत्र (श्रवण तक) पाँचवाँ मण्डल और धनिष्ठा से छै नक्षत्र (अश्विनी तक) छठा मण्डल, इस तरह से प्रत्येक ग्रहों के ये छै मण्डल कहे गये हैं।

११३-द्वितीय मण्डल में शुक्र का वक्री, उदय और अस्त होना वृष्टिकारक होता है। तीन नक्षत्र वाले चौथे मण्डल में और छै नक्षत्र वाले छठे मण्डल में इसका वक्री उदय और अस्त होना शुभ है और अन्य मण्डलों में अशुभ है।

११४-मेघ, वायु, घर्म, रेतः (वीर्य) और सुवर्ण ये क्रम से छै द्वार माने गये हैं।

११५-मेघ के दोनों द्वारों में शुक्र के उदय होने से खूब जल बरसता है। वायु द्वार में उदय होने से आकाश में उन्नत हुए भी बादल वर्षा नहीं करते हैं।

११६-घर्मद्वार में सुवृष्टि रेतोद्वार में बादलों का नाश एवं हेमद्वार में वृष्टि और सुभिक्ष होता है।

११७-११८-भरणी से आठ नक्षत्र (अश्लेषा तक) मेघद्वार कहलाता है। इसमें शुक्र के उदय होने से वर्षा होती है। मघा से पाँच नक्षत्र (चित्रा तक) धूलिद्वार कहलाता है, इसमें जल का नाश होता है। स्वाती से सात नक्षत्र (उत्तराषाढ तक) राजद्वार कहलाता है, इसमें शुक्र का उदय अशुभ फल देता है और श्रवण से सात नक्षत्र (अश्विनी तक) कनकद्वार कहलाता है, इसमें शुक्र का उदय होना शुभ है। चक्र यह है:—

द्वार परिज्ञापक चक्र ।

| मेघद्वार | धूलिद्वार | राजद्वार | कनकद्वार |
|---|---|---|---|
| १ भरणी | १ मघा | १ स्वाती | १ श्रवण |
| २ कृत्तिका | २ पूर्वफल्गुनी | २ विशाखा | २ धनिष्ठा |
| ३ रोहिणी | ३ उत्तरफल्गुनी | ३ अनुराधा | ३ शतभिषा |
| ४ मृगशिर | ४ हस्त | ४ ज्येष्ठा | ४ पूर्वभाद्र |
| ५ आर्द्रा | ५ चित्रा | ५ मूल | ५ उत्तरभाद्र |
| ६ पुनर्वसु | | ६ पूर्वाषाढ | ६ रेवती |
| ७ पुष्य | | ७ उत्तराषाढ | ७ अश्विनी |
| ८ अश्लेषा | | | |

११९-भरणी आदि नक्षत्रों पर चलनेवाला शुक्र सुवृष्टि करता है। इन आठों में भी आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा में विशेष फल समझना चाहिये।

१२०-भाद्रपद में भरणी, दोनों फल्गुनी, चित्रा, स्वाती, विशाखा, तथा मघा और कृत्तिका ये प्रत्येक नक्षत्र शुक्र के साथ योग होने से वर्षा करते हैं।

१२१-ज्येष्ठा, मूल और पूर्व-उत्तर आषाढा तथा पुनर्वसु नक्षत्रों के बीच में से या मंगल से हत हुए नक्षत्रों पर जानेवाला ( मंगल जिन नक्षत्रों पर से गया हो उसी मार्ग से जाता हुआ ) शुक्र अनावृष्टि करता है।

१२२ अवर्षक ( वर्षा न करने वाले ) नक्षत्र में विचरता हुवा शुक्र यदि वर्षा करदे तो वर्षक ( वर्षा करने वाले ) नक्षत्र पर आया हुआ चन्द्रमा वर्षा नहीं करता है। जल नक्षत्र यह हैं:- हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पू० षा; श्रवण, पूर्वाभा, रेवती, भरणी, तीनों उत्तरा और रोहिणी।

१२३-वर्षाऋतु में पूर्वदिशा के अन्दर शुक्र यदि दिखाई दे तो नित्य थोड़ी थोड़ी वर्षा होती है और यदि पश्चिम में दिखाई दे तो खूब जल बरसता है।

१२४-स्वातीत्रय ( स्वाति, विशाखा, अनुराधा ) में पूर्व में उदय हुआ शुक्र और पितृ पंचक ( मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा ) में पश्चिम में उदय हुआ शुक्र अनावृष्टि करता है। यदि उक्त नक्षत्रों में विपरीत ( वक्री ) होतो वर्षा करता है।

१२५-मघादि पांच नक्षत्रों में यदि शुक्र पश्चिम में दिखाई देतो अनावृष्टि करता है। किन्तु इन्हीं नक्षत्रों में पूर्व दिशा में दिखाई देतो सुवृष्टि करता है।

१२६-स्वाति आदि तीन ( स्वाति, विशाखा, अनुराधा ) नक्षत्रों में यदि शुक्र पश्चिम में दिखाई देतो सुवृष्टि होती है। पूर्व में यदि उक्त नक्षत्रों में दिखाई देतो दुःखदायिनी अनावृष्टि होती है।

१२७-ज्येष्ठ और मूल पर रहते हुए शुक्र के पूर्व में दिखने से अनावृष्टि होती है। किसी का मत है कि हस्त और अनुराधा की स्थिति में अनावृष्टि होती है।

१२८-मिथुन और कर्क में शुक्र के उदय से सदा हवा और वर्षा होती है। किसी का मत है कि कर्क के शुक्र में तालाब सूख जाते हैं और सिंह पर शुक्र के आने से मेघ तक का जल सूख जाता है।

१२९-कुंभ राशि पर गया हुआ शुक्र खूब जल देता है अवशिष्ट राशियों पर गये हुए शुक्र का कोई विशेष फल निर्धारित नहीं किया जासकता।

इति शुक्रादेशाधिकरणम्।

## बुधः।

विपुलो विमलः स्निग्धः सस्यकारुण्यमणिप्रभः।
शुकवर्णो हैमवर्णः स्फुरद्बिंबो बुधः शुभः ॥ १३० ॥
प्राकृतायां गतौ वृष्टिः सस्यं क्षेमं च जायते।
संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रं न शुभोऽन्यगतौ बुधः ॥ १३१ ॥
कन्यायां तु बुधो वक्रः सुभिक्षं कुरुते ध्रुवम्।
वृषेऽतिवृष्टिर्मिथुनेऽनावृष्टिश्च बुधोदयात् ॥ १३२ ॥
न चोत्पातपरित्यक्तो जायते स बुधोदयः।
जलाग्निवायुभयकृत् सस्यार्घक्षयवृद्धिकृत् ॥ १३३ ॥
चन्द्रक्षेत्रे यदा चन्द्रबुधशुक्रोदयो भवेत्।

षण्मासानिव दुर्भिक्षमतिवृष्टिश्च जायते ॥ १३४ ॥
अस्तं यावदनावृष्टिः शुक्लाषाढ़े बुधोदयात् ।
भाद्रे बुधोदये भद्रमाश्विने न शुभं भवेत् ॥ १३५ ॥
आषाढ़े श्रावणे वापि बुधे यद्युदयं गते ।
शुक्रोऽस्तमेत्यनावृष्टया तृणदुर्भिक्षमादिशेत् ॥ १३६ ॥
अस्ते शुक्रे बुधो याति श्रावणे तूदयं यदि ।
तदा भाद्रपदे मासि मेघो नैव प्रवर्षति ॥ १३७ ॥
उद्यन्नस्तमयन् वापि बुधः शुक्रात् पुरः स्थितः ।
वृष्टिं जनयति क्षिप्रं जलनाडीगतोऽधिकम् ॥ १३८ ॥
पौषे माघे च वैशाखे आषाढे श्रावणे बुधः ।
दृष्टोऽनावृष्टिदुर्भिक्षमदृष्टस्तु शुभं दिशेत् ॥ १३९ ॥
आश्विने कार्तिके मासे यद्ययं दृश्यते बुधः ।
शास्त्रचौराग्निरोगाम्बुक्षुद्भयानि करोति सः ॥ १४० ॥
कर्कसंक्रमकालात्तु यदा दशदिनान्तरे ।
समुदेति बुधस्तर्हि सुवृष्टिः श्रावणे सिते ॥ १४१ ॥
सिंहसंक्रमकालात्तु यदा दश दिनान्तरे ।
समुदेति बुधस्तर्हि तत्र स्युरतिवृष्टयः ॥ १४२ ॥
कर्के सिंहे च कन्यायां बुधोऽस्तं यदि गच्छति ।
अनावृष्टिर्मन्दवृष्टिरतिवृष्टिर्भवेत् क्रमात् ॥ १४३ ॥
रोहिण्यादिमघान्तासु धनिष्ठाश्रुत्युषासु च ।
बुधः करोत्यनावृष्टिं प्रभिन्दन् यदि गच्छति ॥ १४४ ॥
अशुभं केचिदिच्छन्ति पूर्वाणामपि भेदने ।
हस्तादिषु चरन् षट्सु सुभिक्षक्षेमकृद् बुधः ॥ १४५ ॥

श्लेषास्वातीकृत्तिकासु मृगशीर्षे बुधे क्रमात् ।
महावृष्टिर्मध्यवृष्टिरल्पवृष्टिश्च वायवः ॥ १४६ ॥
कन्यायां मिथुने मेषः प्रचुरो वायुनो सह ।
तुले जलं मध्यवृष्टिर्मेषवृश्चिकयोर्बुधे ॥ १४७ ॥

१३०-बड़ा, विशाल, स्वच्छ, स्निग्ध, सस्यक नामक मणि की आभावाला, शुक्र वा सुवर्ण के-से वर्णवाला और जिसके विम्ब में से ज्योति निकलती हो ऐसा बुध शुभ होता है ।

१३१-यह बुध यदि अपनी प्राकृत ( स्वाभाविक ) गति ( हालत ) में रहे तो धान्य और क्षेमकुशल को प्रदान करता है, संक्षिप्त और मिश्र गति में मिश्र फल देता है और इनसे भिन्न गति में शुभ नहीं होता ।

१३२-कन्या राशि पर वक्री ( उल्टी गति ) हुआ बुध अवश्य सुभिक्ष करता है । वृष में उदय हुआ बुध अतिवृष्टि और मिथुन राशि पर उदय हुआ बुध अनावृष्टि करता है ।

१३३-बुध का उदय उत्पातों से रहित नहीं होता, वह जल अग्नि और वायु के द्वारा भय उत्पन्न करता है और धान्य का नाश करता है ।

१३४-चन्द्रमा राशि में यदि चन्द्र, बुध और शुक्र का उदय होतो छः महीने तक दुर्भिक्ष रहे और अतिवृष्टि होय ।

१३५-आषाढ़ शुक्ला में बुध के उदय होने से जब तक वह अस्त नहीं होवे तब तक अनावृष्टि होती है । भाद्रपद में बुध के उदय होने से कल्याण होता है और आश्विन में बुधोदय से अशुभ होता है ।

१३६-आषाढ़ वा श्रावण में भी यदि बुध का उदय हो जाने पर शुक्र अस्त होजावे तो अनावृष्टि के द्वारा घास का दुर्भिक्ष कहना चाहिये ।

१३७-शुक्र के अस्त रहने पर श्रावण में यदि बुध का उदय होगा तो भाद्रपद के महीने में वर्षा नहीं होगी ।

१३८-उदय वा अस्त होता हुआ बुध यदि शुक्र के आगे रहे तो वह शीघ्र वर्षा पैदा करता है । यदि वह जलनाड़ियों में गया हुआ होगा तो अधिक वर्षा करेगा ।

१३९-पौष, माघ, वैशाख, आषाढ़ और श्रावण में बुध के दिखाई देने से अनावृष्टि और दुर्भिक्ष होता है। यदि वह उक्त मासों में न दीखे तो शुभ है।

१४०-आश्विन और कार्तिक में बुध के दिखाई देने से शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और क्षुधा से भय प्राप्त होता है।

१४१-कर्क संक्रान्ति से दस दिन के अन्दर में बुध के उदय होने से श्रावण शुक्ला में अच्छी वर्षा होती है।

१४२-इसी प्रकार सिंह की संक्रान्ति काल से दश दिन के अन्दर में जब बुध का उदय होता है तब अतिवृष्टि होती है।

१४३-कर्क राशि पर बुध के अस्त होने से अनावृष्टि, सिंह पर अस्त होने से अल्पवृष्टि और कन्या पर अस्त होने से अतिवृष्टि होती है।

१४४-रोहिणी से मघा तक के ७ नक्षत्रों एवं धनिष्ठा, श्रवण और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों को भेदन करता हुआ बुध यदि जावे तो अनावृष्टि होती है।

१४५-किसी का मत है कि तीनों पूर्वा नक्षत्रों में भेदन करने से भी अशुभ फल ही होता है। हस्त आदि छः नक्षत्रों में विचरण करता हुआ यह सुभिक्ष और क्षेम करता है।

१४६-अश्लेषा, स्वाती, कृत्तिका और मृगशीर्ष इन नक्षत्रों में बुध के आने पर क्रम से महा-वृष्टि और हवा चलती है।

१४७-मिथुन तथा कन्या राशि पर बुध के आने से वायु सहित खूब वर्षा होती है। तुला पर आने से वर्षा और मेष तथा वृश्चिक राशिपर आने से मध्य वृष्टि होती है।

इति बुधादेशाधिकरणम्।

## चन्द्रः।

समशृंगो विशालांगस्तुंगो स्निग्धः शशी शुभः।
नागवीथ्यां चरन् सौम्यग्रहैर्दृष्टयुतो यदि ॥ १४८ ॥

कुजाद्यैर्निहते शृंगे मण्डले वा यथाक्रमम्।
आयार्घवृष्टिनृपतिप्रजानां नाशकृच्छशी ॥ १४९ ॥

कृत्तिकारोहणी सौम्या मघाचित्राभ्य उत्तरे।
विशाखादिभषट्काच्च चरन्निन्दुः शुभावहः ॥ १५० ॥
एतेषां दक्षिणे मार्गे चरन् दुष्टफलः शशी।
अन्येषां दक्षिणे मार्गे चरन्नपि न दोषकृत् ॥ १५१ ॥
इन्दोः प्रदक्षिणं यान्तः शुभदास्त.रका ग्रहाः।
इन्दुर्वर्षासु धर्षाय स्थितः क्षेत्रे गुरुज्ञयोः ॥ १५२ ॥
यदि शुक्लद्वितीयायां वामे चन्द्रोदयो रवेः।
शुभं तदाखिले मासि न शुभं दक्षिणोदये ॥ १५३ ॥

१४८–समश्रृंग वाला, बड़े अङ्ग वाला, तुंग ( ऊँचा ), स्निग्ध तथा नागवीथी में विचरता हुआ और सौम्य ग्रहों से देखा हुआ एवं उनसे युक्त चन्द्रमा शुभ होता है।

१४९–चन्द्रमा का शृङ्ग अथवा मण्डल यदि मङ्गल से निहत हो तो आमदनी का, बुध से निहत हो तो बाजार की दरों का, बृहस्पति से निहत हो तो वृष्टि का, शुक्र से निहत हो तो राजा का और शनि से निहित हो तो प्रजा का नाश करता है।

१५०–कृत्तिका रोहिणी, मृगशिर, मघा, चित्रा और विशाखा से छः नक्षत्र तक के उत्तर में विचरता हुआ चन्द्रमा शुभ फल देता है।

१५१–उपरि लिखित नक्षत्रों के दक्षिण मार्ग में चलता हुआ चन्द्रमा दुष्ट फल देता है। किन्तु अन्य अवशिष्ट नक्षत्रों के दक्षिण मार्ग में चलता हुआ भी यह अशुभ फल नहीं देता।

१५२–तारक ( तारा ) ग्रह चन्द्रमा से दक्षिण मार्ग को जाते हुए शुभ फल देते हैं, तथा बृहस्पति और बुध के क्षेत्र में स्थित चन्द्रमा वर्षा ऋतु में वर्षा करता है।

१५३–शुक्ल पक्ष की द्वितीया में सूर्य से बांई ओर चन्द्रोदय होने से सम्पूर्ण महीने तक शुभ होता है, किन्तु सूर्य से दाहिनी ओर चन्द्रमा का उदय होना अशुभ है।

इति चन्द्रादेशाधिकरणम्।

## सूर्य्यः।

पूर्वाषाढात्तु चत्वारि पञ्च तूत्तरभाद्रतः।
आर्द्रातः पञ्च ऋक्षाणि चन्द्रभानि चतुर्दश ॥ १५४॥

पूर्वभाद्रं शतभिषङ् मृगशीर्षं च रोहिणी ।
पूफादीनि नवर्क्षाणि सूर्य्यभानि त्रयोदश ॥ १५५ ॥
सूर्यस्तु चन्द्रभे चन्द्रः सूर्य्यभे वा स वर्षति ।
सूर्ये वा सूर्य्यभे चन्द्रश्चन्द्रभे स च वर्षति ॥ १५६ ॥
चन्द्रभे तावुभौ स्यातामल्पवृष्टिस्तदा भवेत् ।
सूर्यभे तावुभौ स्यातां तत्र वृष्टिर्न जायते ॥ १५७ ॥
वायुस्तु सूर्य्यभे सूर्ये वायुदोषान्न वर्षति ।
चैन्द्रे तु चन्द्रभे छाया नोष्माल्पत्वात्प्रवर्षति ॥१५८॥
चन्द्रे चन्द्रे भवेद्वायुः सूर्ये सूर्ये न वर्षति ।
चन्द्रसूर्यसमायोगे सदा वर्षति वासवः ॥ १५९ ॥

पहिले के प्रकरणों में तीन बहिर्ग्रह और तीन अन्तर्ग्रहों का विवरण आचुका है अब इस प्रकरण में सूर्य और चन्द्रमा के योग से वृष्टि का विवरण लिखते हैं ।

१५४-पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा और मघा ये १४ नक्षत्र "चन्द्र नक्षत्र" कहलाते हैं ।

१५५-पूर्वाभाद्रपद, शतभिषा, मृगशीर्ष, रोहिणी, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल ये १३ नक्षत्र 'सूर्यनक्षत्र' कहलाते हैं ।

१५६-यदि सूर्य चन्द्रनक्षत्रों में और चन्द्रमा सूर्यनक्षत्रों में हो तो वर्षा करता है ।

१५७-चन्द्रनक्षत्र में यदि सूर्य चन्द्रमा दोनों हों तो अल्पवृष्टि होती है, किन्तु यदि सूर्य नक्षत्र पर सूर्य चन्द्रमा दोनों हों तो वृष्टि नहीं होती ।

१५८-सूर्यनक्षत्र पर सूर्य के आने पर वायु तो चलती है, किन्तु वायु के दोष से वर्षा नहीं होती । चन्द्र के चन्द्र नक्षत्र पर रहने से छाया रहता है अर्थात् केवल बादल आच्छादित रहते हैं, किन्तु ऊष्मा की कमी के कारण वर्षा नहीं होती ।

१५९-चन्द्र नक्षत्र पर चन्द्रमा के होने पर वायु चलती और सूर्य नक्षत्र पर सूर्य के होने पर वर्षा नहीं होती । किन्तु चन्द्रमा और सूर्य के समायोग में सदा वर्षा होती है ।

इति सूर्येन्दुयोगाधिकरणम् ।

पुरुषर्क्षाणि मूलार्द्धादार्द्रातो दश तु स्त्रियः ।
विशाखातस्त्रय क्लीबं सौम्ययाम्यायनक्रमात् ॥ १६० ॥
यादृशर्क्षगते चन्द्रे सूर्यो विशति यादृशम् ।
तद्वशात् सूर्यनक्षत्रभुक्तिकाले वदेत् फलम् ॥ १६१ ॥
दाहः पुंसोः स्त्रियोच्छाया क्लीबयोस्तु न किंचन ।
स्त्रीपुंसके सुवृष्टिस्त्री क्लीबेऽल्पा शेषकेऽनिलः ॥ १६२ ॥
नरे नरे भवेत्तापः क्लीबे क्लीबे महोष्णता ।
स्त्रियां स्त्रियां महावातो वृष्टिः स्त्रीनरसंगमे ॥ १६३ ॥
वायुर्नपुंसके भे च स्त्रीणांभे चाभ्रदर्शनम् ।
स्त्रीणां पुरुषसंयोगे वृष्टिर्भवति निश्चितम् ॥ १६४ ॥

१६०-सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन के क्रम से मूलार्द्ध से शुरू कर मृगशिर नक्षत्र तक पुरुष नक्षत्र कहलाते हैं । आर्द्रा से दश नक्षत्र ( चित्रा ) तक स्त्री संज्ञक नक्षत्र और बिशाखा से तीन नक्षत्र ( ज्येष्ठा ) तक नपुंसक कहे जाते हैं ।

१६१-जिस नक्षत्र पर गये हुए चन्द्रमा में सूर्य जिस नक्षत्र में प्रवेश करता है, उसके कारण सूर्य नक्षत्र के भुक्ति काल के समय उसका फल कहना चाहिये ।

१६२-दो पुरुष नक्षत्रों के योग से छाया अर्थात् केवल बादलों का आच्छादित होजाना और नपुंसक नक्षत्रों के योग से कुछ नहीं होता । स्त्री और पुरुष नक्षत्र के योग से अच्छी वर्षा होती है, स्त्री और नपुंसक के योग से अल्प वृष्टि और शेष अन्य योगों में केवल वायु मात्र चल कर रह जाती है ।

१६३-किसी का मत है कि पुरुष नक्षत्र का योग होने पर ताप, नपुंसक में नपंसक का

योग होने से महोष्णता ( तेज गर्मी ), स्त्री ही स्त्री का योग होने से महावायु और पुरुष स्त्री नक्षत्र के योग से वर्षा होती है ।

१६४–अन्य मत है कि नपुंसक नक्षत्र में वायु, स्त्री नक्षत्र में केवल बादलों के दर्शन और स्त्री नक्षत्रों के पुरुष नक्षत्र के योग से निश्चय वृष्टि होती है ।

इति स्त्रीपुंयोगाधिकरणम् ।

पौष्णाश्विनी मघापुष्यश्रुतिस्वातीमृगीस्थिते ।
चन्द्रेऽर्को जललग्ने वा प्रविशन् भं सुवृष्टये ॥ १६५ ॥
भरणी कृत्तिका चन्द्रे चन्द्रे राधानुराधयोः ।
नक्षत्रं प्रविशन् भानुर्न करोति प्रवर्षणम् ॥ १६६ ॥
ऋक्षप्रवेशे सूर्य्यस्य चन्द्रे केन्द्रत्रिकोणगे ।
जलभस्थे च शुक्रेण युते दृष्टे सुवृष्टयः ॥ १६७ ॥
निशीथे वा निशायां वा जललग्नेऽपि वा रवेः ।
भप्रवेशे सुवृष्टिः स्याद् वृष्टियोगान्तरेऽपि वा ॥ १६८ ॥

१६५–रेवती, अश्विनी, मघा, पुष्य, श्रवण, स्वाती और मृगशिर इन नक्षत्रों में वा जल लग्न में चन्द्रमा के स्थित रहने पर नक्षत्र में प्रविष्ट होता हुआ सूर्य सुवृष्टि करता है ।

१६६–भरणी और कृत्तिका के चन्द्रमा में तथा विशाखा और अनुराधा के चन्द्रमा में सूर्य नक्षत्र का प्रवेश हो तो वृष्टि नहीं होती ।

१६७–सूर्य के नक्षत्र प्रवेश के समय केन्द्र, त्रिकोण में और जल नक्षत्र में चन्द्रमा के रहने पर तथा शुक्र से युक्त वा दृष्ट होने पर अच्छी वर्षा होती है ।

१६८–रात्रि में, अर्धरात्रि में वा जललग्न में अथवा अन्य वृष्टि योग में सूर्य के नक्षत्र-प्रवेश होने पर वृष्टि होती है ।

इति नक्षत्रसंक्रमाधिकरणम् ।

अब्दविंशोपकाः कर्कसंक्रमेऽर्कादिवारतः ।
दिशो नखा गजाः सूर्य्या धृत्योऽष्टादशसायकाः ॥१६६॥
यदि कर्कार्कसंक्रान्तौ शन्यर्कौ बुधमंगलौ ।
नातिवृष्टिस्तदा तत्र शेषवारे सुवृष्टयः ॥ १७० ॥
जलराशिस्थिते चन्द्रे कर्कटं याति भास्करः ।
तदा वदन्ति दैवज्ञाः साधुवृष्टिर्भविष्यति ॥ १७१ ॥
मीने मेषे वृषे युग्मे वर्तमाने निशाकरे ।
जलं ददाति प्रविशन् कर्कमर्कः शताढकम् ॥ १७२ ॥
चापे सिंहे च पंचाशत् तदर्द्धं नक्रकन्ययोः ।
तुलालिकुम्भकर्केषु तदर्द्धं वारि वर्षति ॥ १७३ ॥
अर्द्धं वर्षति शैलाग्रे तदर्द्धं विपिनादिषु ।
तदर्द्धं चोपरस्थाने शेषं चेत्रे प्रवर्षति ॥ १७४ ॥
कर्कटे प्रविशन्तं चेत् सूर्य्यं पश्येद् बृहस्पतिः ।
पूर्णं पादोनदृष्ट्या वा तत्र काले प्रवर्षणम् ॥ १७५ ॥
श्रावणे कर्कसंक्रांतौ यदि मेघमहोदयः ।
सप्तमासान् सुभिक्षं स्यात् साधु वर्षति वासवः ॥१७६॥
मङ्गले कर्कसंक्रान्तिः शनौ मकरसंक्रमः ।
रिक्तातिथौ पञ्चदशमुहूर्ते वा न शस्यते ॥ १७७ ॥
स्वाति जेष्ठा भरण्यार्द्राश्लेषाशतभिषासु च ।
वाणचन्द्रमुहूर्ते वा दुष्टो मकरसंक्रमः ॥ १७८ ॥
पुनर्वसौ विशाखायां रोहिण्यामुत्तरात्रये ।
वाणवेदमुहूर्ते वा शुभो मकरसंक्रमः ॥ १७९ ॥
अमावस्या सुभिक्षाय रविसंक्रान्तिवासरात् ।
एकादशे पञ्चविंशे चतुर्थेऽष्टादशेऽहनि ॥ १८० ॥

पूर्वसंक्रमनक्षत्रात् परसंक्रमभे शुभम् ।
द्वितीये वा तृतीये वा न शुभं तुर्य्यपञ्चमे ॥ १८१ ॥
प्रतिमासं तु संक्रान्तिफलमुक्तं यथायथम् ।
पूर्वे गर्भध्रुवाध्याये क्रमाद् द्वादशमासिके ॥ १८२ ॥

१६६–कर्क संक्रान्ति के दिन रविवार होने से १० बिस्वा, चन्द्रवार होने से २० बिस्वा, मंगलवार होने से ८ बिस्वा, बुधवार होने से १२ बिस्वा, गुरुवार होने से १८ बिस्वा, शुक्रवार होने से १८ बिस्वा और शनिवार होने से पाँच बिस्वा वर्षा होती है।

१७०–कर्क संक्रान्ति के दिन शनि, रवि, बुध और मंगलवार होने से अधिक वृष्टि नहीं होती है, शेष वारों में सुवृष्टि होती है।

१७१–चन्द्रमा के जलराशि पर स्थित रहने से यदि सूर्य कर्क राशि पर जावै तो अच्छी वर्षा होती है, इस तरह ज्यौतिषी लोग कहते हैं।

१७२–मेष. वृष, मिथुन और मीन राशि पर चन्द्रमा के रहते हुए यदि सूर्य कर्क राशि में प्रविष्ट होतो १०० आढक वर्षा होती है।

१७३-१७४–कर्क संक्रान्ति के समय धनुष और सिंह राशि पर चन्द्रमा के होने से ५० आढ़क वर्षा, मकर और कन्या राशि पर चन्द्रमा के रहने से २५ आढक वर्षा और तुला, वृश्चिक, कुंभ वा कर्क राशि पर चन्द्रमा के रहने से १२॥ आढक वर्षा होती है अर्थात् अत्यन्त अल्प वर्षा होती है। इसमें से भी आधी वर्षा पहाड़ की चोटी पर, उससे आधी वन में, उससे आधी ऊषर जमीन में और उससे भी आधी खेत में वर्षा समझनी चाहिये।

जल की नाप इस प्रकार करें– एक हाथ ( २४ अंगुल या १८ इंच ) के व्यास का गोलाकार कुंड बना के मैदान में रखदे; फिर उसमें वर्षा का जल एकत्र हो उसे तौले कि कितने द्रोण, या आढक आदि वर्षा हुई।

अनुमान ५ तोले ( २ औंस ) की १ पल, ५० पल की एक आढक ४ आढक का १ द्रोण होता है। यह द्रोण इस समय के २॥ इंच के अनुमान का है।

यदि १ द्रोण जल बरसे तो उस वर्ष का पानी साधारण भूमि में अनुमान ४ हाथ (९६ अंगुल या ६ फीट ) तक नीचे पहुँचता है।

१७५-कर्क राशि में प्रविष्ट होते सूर्य को यदि बृहस्पति पूर्ण दृष्टि अथवा एक पाद कम ( पौन ) दृष्टि से देखता हो तो अच्छी वर्षा होती है।

१७६-श्रावण के महीने में यदि कर्क संक्रान्ति के समय मेघ खूब छाये हुए हों तो सात महीने तक सुभिक्ष होता है और अच्छी वर्षा होती है।

१७७-मंगल के दिन कर्क संक्रान्ति का होना, शनिवार को मकर संक्रान्ति का होना और १५ मुहूर्त्त रिक्ता तिथि का होना शुभ नहीं है।

१७८-स्वाती, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, शतभिषा इन नक्षत्रों में वा पन्द्रह ( १५ ) मुहूर्त्त में मकर राशि या सूर्य के प्रविष्ट होने से अशुभ फल होता है।

१७९-पुनर्वसु, विशाखा, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्रों में अथवा चौथे पांचवें मुहूर्त्त में मकर राशि पर सूर्य का प्रविष्ट होना शुभ है।

१८०-रवि-संक्रान्ति के दिन से ग्यारहवें, पचीसवें, चौथे, वा अठारहवें दिन अमावास्या का होना सुभिक्ष का सूचक है।

१८१-पहली संक्रान्ति का नक्षत्र यदि दूसरी संक्रान्ति में आवे तो शुभ फल होता है। किन्तु उस नक्षत्र से दूसरे, तीसरे, चौथे, और पाँचवें नक्षत्र शुभ नहीं होते।

१८२-यहाँ यह संक्रान्तिफल संक्षेप से कहा गया है, क्योंकि इसके पूर्व द्वादशमासिक प्रकरण के गर्भध्रुवाध्याय में प्रतिमास की संक्रान्ति का फल ठीक प्रकार से कह चुके हैं।

इति राशिसंक्रमाधिकरणम्।

## ग्रहयुतियोगः।

उपर्युपरिसंस्थानां चरतां नैकवर्त्मसु।
ग्रहणामतिदूरत्वाद् दृश्यते समदेशिता॥ १८३॥
तेनांशसाम्याद् दृक्सूत्र.सत्या ग्रहयुतिर्मता।
अस्तं समागमो युद्धमिति भेदात्त्रिधा युतिः॥ १८४॥
सूर्येण युतिरस्ताख्या चन्द्रेण तु समागमः।
युतिस्ताराग्रहाणां तु युद्धं चापि समागमः॥ १८५॥

युद्धं चतुर्विधं तत्र लक्ष्यते प्रेक्ष्यमाणयोः ।
भेदोल्लेखावंशुमर्द्दापसव्याविति भेदतः ॥ १८६ ॥
बिम्बग्रासे तु भेदः स्यादुल्लेखः स्पृष्टबिम्बता ।
अत्यल्पान्तरितो मर्द्दोऽपसव्योंऽशानतिक्रमः ॥१८७॥
संपातस्थानसंप्राप्तग्रहयोः स्वगतेर्वशात् ।
सांनिध्यतारतम्येन भेदोल्लेखादिसम्भवः ॥ १८८ ॥
दक्षिणः कम्पितो रूक्षो विवर्णो विकृतोऽप्रभः ।
अधिगूढोऽणुरप्राप्यनिवृत्तो जित उच्यते ॥ १८९ ॥
जयी तु विपुलः स्निग्धो द्युतिमानपि दक्षिणः ।
उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी ॥१९०॥
द्वावपि स्निग्धविपुलसप्रभौ चेत्समागमः ।
अंशान्तरितबिम्बत्वे सर्वेषां तु समागमः ॥ १९१ ॥
युद्धं समागमो वापि यद्यव्यक्तो स्वलक्षणैः ।
तदा तत्फलमव्यक्तं व्यक्तौ व्यक्तमलं फलम् ॥१९२॥
भेदयुद्धे त्वनावृष्टिरुल्लेखादिषु शस्त्रभीः ।
युद्धे यो जीयते खेटस्तद्विशेषात् फलं ब्रुवे ॥ १९३ ॥
वाह्लीकाः परिपीड्यन्ते मङ्गले गुरुणा हते ।
वधेन तु जिते साल्वाः कलिङ्गाः शूरसेनकाः ॥ १९४ ॥
शुक्रेण क्षत्रिया म्लेच्छाः शनिना सकलाः प्रजाः ।
उत्तरस्थाः सरिद्वृक्षा मङ्गलेन बुधे जिते ॥ १९५ ॥
शूद्रा म्लेच्छाः पार्वतीयास्त्रैगर्ता गुरुणा हते ।
शुक्रेण तु जिते सस्याम्बुदनाशोऽग्निकोपनम् ॥ १९६॥
शनिना तु जिते योधाः पीड्यन्ते नाविकास्तथा ।
जीवे शुक्रहते साल्वा वत्सा वङ्गाश्च कैकयाः ॥१९७॥

मद्रा कुलूता गान्धाराः पीड्यन्ते सस्यधेनवः ।
जीवे भौमजिते मध्यदेशो गौः पीड्यते नृपः ॥ १९८ ॥
जीवे बुधहते मध्यदेशो म्लेच्छश्च नश्यति ।
जीवे शनिहते विप्रा यौधेया अर्जुनायनम् ॥ १९९ ॥
शुक्रे भौमहते सेनापतिनाशः सुयोधने ।
शुक्रे बुधहते वृष्टिरल्पा चीरं च हीयते ॥ २०० ॥
अब्जानां गणमुख्यानां पीडा शनिहते सिते ।
अनावृष्टिर्गुरुहते शुक्रे नश्यन्ति कोशलाः ॥ २०१ ॥
मध्यदेशाः शूरसेना मत्स्या वङ्गाः कलिङ्गकाः ।
शनौ भौमहते काशिवाह्लीकौड्रान्ध्रटङ्कणाः ॥२०२॥
ज्ञहतेऽङ्गवणिक्खेटाः शका गुरुहते हताः ।
शनौ शुक्रहते त्वर्धवृद्धिः पीडा हि पक्षिणाम् ॥२०३॥
हतानां मङ्गलादीनां विशेषोऽयमुदाहृतः ।
अपि घ्नन्ति हताः स्वस्वभक्तीस्ते ग्रहभक्तितः ॥२०४॥
उक्तं युद्धफलं नेष्टं ग्रहाणां देशभेदतः ।
अत ऊर्ध्वं फलं ब्रूमः पौर्वापर्ये समागमे ॥२०५॥

१८३-१८४-अनेक मार्गों में ऊपर ही ऊपर विचरते हुए ग्रहों के अत्यन्त दूर होने के कारण उनकी एक ही स्थान में स्थिति दिखाई देती है। अतः अंशसाम्य से दृक् सूत्र की समीपता के कारण ग्रहयुति मानी जाती है। अर्थात् ऊपर और नीचे अनेक मार्गों पर विचरते हुए ग्रहों की किरणों का परस्पर मेल होने से जो ग्रहों के बिम्ब में विकार पैदा होता है उसे ग्रहयुति वा ग्रहयुद्ध कहते हैं। यह ग्रहयुति अस्त, समागम और युद्ध इन भेदों से तीन प्रकार की होती हैं।

१८५-किसी ग्रह का सूर्य से युति होना अस्त कहलाता है, चन्द्रमा से युति होना समागम कहलाता है और तारा ग्रहों की आपस में युति होना युद्ध वा समागम दोनों नामों से कहलाते हैं।

१८६–देखने पर ग्रहों का यह युद्ध चार तरह से दिखाई देता है। भेद, उल्लेख, अंशुमर्द और अपसव्य।

१८७–एक ग्रह के बिम्ब का दूसरे ग्रह के द्वारा ग्रास हो जावै तो भेद, बिम्ब के स्पर्श करने पर उल्लेख, अत्यन्त अल्प विम्ब के छिपने को अंशुमर्द और एक अंश पर आने को अपसव्य कहते हैं।

१८८–संपात स्थान में प्राप्त ग्रहों की अपनी गति के वश से समीपता के कारण भेद उल्लेख आदि युद्ध के भेद हुआ करते हैं।

१८९–इन दो ग्रहों के युद्ध में पराजित (हारा हुआ) वह ग्रह समझा जाता है जो दक्षिण, कंपयुक्त, रूखा, विवर्ण, विकृत, प्रभारहित, छिपा हुआ सा छोटा और उस ग्रह के पास न पहुँच कर ही वापस गया हुआ दिखाई देता हो।

१९०–विजयी वह ग्रह होता हैं जो बड़ा, स्निग्ध, तेजस्वी, दक्षिण वा उत्तर की ओर हो। इन ग्रहों के युद्ध में शुक्र की प्रायः विजय ही होती है।

१९१–यदि दोनों हीं ग्रह स्निग्ध, विपुल और प्रभावाले दिखाई देते हों तो उस ग्रह युति को समागम कहते हैं। विम्ब (मण्डल) का अंशों से अन्तरित होने पर सभी ग्रहों का समागम कहलाता है।

१९२–युद्ध वा समागम यदि अपने लक्षणों से अव्यक्त (अप्रकट) हों तो उनके फल भी अव्यक्त ही रहते हैं, अर्थात् निश्चित रूप से उनके फल ज्ञात नहीं होसकते हैं। यदि युद्ध वा समागम में से किसी का होना स्पष्ट रूप से निश्चित कर लिया जावे तो उनका फल भी पर्याप्त रूप से मिलता ही है।

१९३-भेदयुद्ध होने पर अनावृष्टि और उल्लेखादि होने पर शस्त्र का भय होता है। युद्ध में जिस ग्रह की जय होवै उसी का फल कहा जाता है।

१९४-बृहस्पति के द्वारा मंगल के हत होने पर बाह्लीक देशों को पीड़ा पहुँचती है और बुध के द्वारा हत होने से साल्व, कलिङ्ग और शूरसेन देशों की हानि होती है।

१९५–शुक्र के द्वारा मंगल के हत होने पर क्षत्रिय और म्लेच्छों की हानि होती है और शनि के द्वारा हत होने से तमाम प्रजा की हानि होती है। इसी प्रकार मगल के द्वारा बुध के पराजित होजाने पर उत्तर में स्थित नदी तट के वृक्षों का नाश होजाता है।

१९६-गुरु के द्वारा बुध के हत होने पर शूद्र, म्लेच्छ, पर्वतीय लोग और त्रैगर्त देश की हानि होती है और शुक्र के द्वारा हत होने से धान्य और मेघ का नाश होता है, तथा अग्नि का भय रहता है।

१९७-१९८-शनि के द्वारा बुध के पराजित होने पर योद्धा लोगों और नाव चलाने वालों की हानि होती है। शुक्र के द्वारा बृहस्पति की हार होने पर, साल्व, वत्स, बंगाल, कैकय, भद्र, कुलूत और गान्धार देश तथा धान्य और गौ इनको पीड़ा पहुँचती है। मंगल के द्वारा बृहस्पति के हत होने से मध्य देश, गौ और राजा को पीड़ा पहुँचती है।

१९९-बुध के द्वारा गुरु के हत होने से मध्य देश और म्लेच्छों का नाश होता है। और शनि के द्वारा गुरु के हत होने से विप्र देश, यौधायन देश का तथा अर्जुनायन देश का नाश होता है।

२००-मंगल के द्वारा शुक्र की हार होने से युद्ध में सेनापति का नाश होता है और बुध के द्वारा हार होने से अल्प वृष्टि होती है और दूध कम होता है।

२०१-शनि के द्वारा शुक्र की हार होने से जलजन्तुओं और गणों के नेताओं का नाश होता है। गुरु के द्वारा भृगु की हार होने से अनावृष्टि होती है और कोशल देश का नाश होता है।

२०२-२०३-मंगल के द्वारा शनि के हत होने पर, मध्यदेश, शूरसेन, मत्स्य, वंग और कलिङ्ग देशों का नाश होता है, बुध के द्वारा हत होने से काशी, बाह्लीक, ओड्र आन्ध्र और टंकण देशों का नाश होता है। गुरु के द्वारा हत होने से अंगदेश, वणिक्, खेट और शक देश इनकी हानि होती है।

२०४-हत हुए मंगल आदि ग्रहों का उपसंहार खास खास फल यह कहा गया है। तथा वे ग्रहभक्ति से हत हुए अपनी अपना भक्ति के देशों को भी नष्ट करते हैं।

२०५-देश भेद से ग्रहों के युद्ध का नेष्ट फल कह दिया गया है। अब इसके आगे पौर्वापर्य समागम का फल कहते हैं।

इतिग्रह युत्यधिकरणम्।

## ग्रहधिष्ण्ययोगः।

चक्रांशेऽप्युदयांशे वा तिष्ठतोः सहयोगिता।
ऋक्षं समं समो राशिरिति वा सहयोगिता ॥२०६॥

सप्तभौमज्ञशुक्राणां नवांशाः शनिजीवयोः ।
इन्दोर्द्वादशचक्रांशा भानोः पंचदश स्मृताः ॥२०७॥
शनेः पञ्चदशैवांशाः एकादश बृहस्पतेः ।
स्युः सप्तदश भौमस्य चन्द्रस्य द्वादश स्मृताः ॥२०८॥
शुक्रस्य नव कालांशा अष्टौ तस्यैव वक्रिणः ।
नवोदयांशा शुक्रस्य तस्यैवाष्टौ तु वक्रिणः ॥२०९॥
.................................. ।
त्रयोदश बुधस्यांशास्तस्य द्वादश वक्रिणः ॥२१०॥
चन्द्रस्य दैनिकी भुक्तिर्नक्षत्रमिति कथ्यते ।
त्रयोदशांशा विंशत्या कलानां तन्मितिर्मता ॥२११॥
स्पष्टात्तु विकलाः पञ्चत्रिंशद्दशकलास्तथा ।
त्रयोदशांशाऽचन्द्रस्य दैनिकी भुक्तिरिष्यते ॥२१२॥
चत्वारोंऽशाः पञ्चकला विकला दश पंच च ।
अभिजिन्मानमित्येवमष्टाविंशतिमानि वा ॥२१३॥
राशिकलृप्तिस्त्रिशदंशैरश्विपूषान्तरादितः ।
क्रांतिपातात् त्रिंशदंशैः कलृप्ता अत्र न संमताः ॥२१४॥
स्वे युत्यंशे योगफलं करोतीति मतं मम ।
एकैकस्य स युत्यंशो भिद्यते युतिमानतः ॥ २१५ ॥

२०६–२०७-प्रकरण के प्रारम्भ में पहिले सहयोगिता का अर्थ समझाते हैं। चक्रांँश ( गति स्थान ) में या उदयाँश ( उदय स्थान ) में बैठे हुए दो ग्रहों की सहयोगिता होती है। इसी तरह दोनों ग्रहों का नक्षत्र एक हो या राशि एक हो तो वह भी सहयोगिता ही कही जाती है। इनमें मङ्गल, बुध और शुक्र के सात अंश और शनि, गुरु के नौ अंश हैं। चन्द्रमा के चक्रांश बारह माने गये हैं और सूर्य के चक्रांश पन्द्रह माने गये हैं।

२०८–शनि के पन्द्रह १५ अंश, गुरु के ११ अंश, मङ्गल के १७ अंश और चन्द्रमा के १२ अंश माने गये हैं।

२०६-२१०-शुक्र के कालांश ६ होते हैं, वक्री होने पर इसके ८ अंश रहते हैं। इसी तरह इस शुक्र के उदयांश ६ होते हैं और वक्री होने पर ८ रह जाते हैं। बुध के १३ अंश होते हैं और वक्री होने पर इसके १२ रहते हैं।

२११-चन्द्रमा की दैनिक भक्ति को नक्षत्र कहते हैं तेरह अंश बीस कला यह इसका मान कहा गया है।

२१२-चन्द्र स्पष्ट की गणित से चन्द्रमा की दैनिक गति का मान यह है-१३ अंश, १० कला और ३५ विकला।

२१३-चार, पाँच कला और १५ विकला यह अभिजित्-मान कहा गया है, अथवा इसे अट्ठाईस नक्षत्र का मान समझना चाहिये।

२१४-अश्विनी से प्रारम्भ करके रेवती के अन्त तक ३० अंश की राशि स्थिति मानी जाती है। क्रांति पात से जो तीस अंश की कल्पना की जाती है, वह यहाँ ठीक नहीं है।

२१५-अपनी युति के अंश में ग्रह योग फल करते हैं, यह मत मेरा है। क्योंकि एक एक का युत्यंश युतिमान के कारण पृथक् हो जाती है।

इति ग्रहधिष्ण्याधिकरणम्।

## सामान्यसादेश्ययोगः।

पुरोऽगारमनावृष्टिः पुरः शुक्रं प्रवर्षणम्।
पुरो जीवं भवेदूष्मा पुरो बुधमथानिलः ॥२१६॥
सूर्यागारं यमागारं जीवांगारमवर्षणम्।
बुधशुक्रं जीवबुधं वृष्टिं जनयति ध्रुवम् ॥ २१७ ॥
अदृष्टावयुतौ क्रूरैर्ज्ञशुक्रावेकराशिगौ।
जीवदृष्टौ विशेषेण महावृष्टिप्रदायिनौ ॥ २१८ ॥
अदृष्टवयुतौ क्रूरैर्ज्ञजीवावेकराशिगौ।
शुक्रदृष्टौ बिशेषेण कुरुतो वृष्टिमुत्तमाम् ॥ २१९ ॥
अदृष्टवयुतौ क्रूरैर्जीवशुक्रौ सहस्थितौ।
बुधदृष्टौ विशेषेण कुरुतो वृष्टिमुत्तमाम् ॥ २२० ॥

शुक्रचन्द्रौ भौमचन्द्रावेकराशिगतौ यदि ।
उद्बन्धना दिशः सर्वा जलयोगस्तदा महान् ॥२२१॥
एकराशिगतो जीवः सूर्येण सह वर्षति ।
यावन्नास्तमनं याति योगो वा बुधजीवयोः ॥२२२॥
एकराशौ शनिर्भौमो बलवद्वृष्टिहेतवे ।
मासद्वयं भवेद् वृष्टिस्ततो वृष्टिर्निवर्तते ॥ २२३ ॥
अदृष्टावयुतौ सौम्यैः शनिभौमौ सहस्थितौ ।
तदा वायुप्रकोपः स्यात् तथैवाग्निभयं भवेत् ॥२२४॥
एकराशौ तथैकर्क्षे राहुभौमाववृष्टये ।
गुरुशुक्रौ यदैकस्थावकाले वर्षणं भवेद् ॥ २२५ ॥
सूर्यस्य पुरतो गच्छेद् यदि शुक्रो बुधोऽपि वा ।
वर्षाकाले तदा वृष्टिभर्वत्येव निरन्तरा ॥ २२६ ॥
अङ्गाराग्रतः सूर्यो वृष्टिं नावरुणद्धि वा ।
सूर्यादग्रेसरोऽङ्गारः प्रतिबध्नाति वर्षणम् ॥ २२७ ॥
जीवादग्रेसरः शुक्रो वृष्टिं जनयति ध्रुवम् ।
शुक्रादग्रेसरो जीवो न वृष्टि जनयिष्यति ॥ २२८ ॥
बुधाच्छुक्रे महावृष्टिरल्पा शुक्रात् परे बुधे ।
तयोरन्तर्गतो भानुरन्यो वा नैव वर्षति ॥ २२९ ॥
उन्मार्गगमनं कुर्वन यदि शुक्रं त्यजेद् बुधः ।
तदा वर्षति पर्जन्यः सप्त वाहानि पञ्च वा ॥ २३० ॥
उद्यमन्नस्तमयन् वापि बुधः शुक्रात् पुरः स्थितः ।
वृष्टिं जनयति क्षिप्रं जलनाडीगतोधिकम् ॥ २३१ ॥
शुक्रादग्रे यदांगारो वृष्टिर्नास्त्युत्तरापथे ।
विद्युत्कोपो रजोवृष्टिरग्निदाहश्च जायते ॥ २३२ ॥

शुक्राद् गुरौ वृथा मेघाः पूर्वस्यां करकाऽथवा।
शुक्रादग्रे शनौ रोगैः पीड्यते दक्षिणापथः ॥ २३३ ॥
जीवाङ्गारं सचन्द्रं चेद् वृष्टियोगं वदन्ति हि।
शुक्राद् बुधस्ततः सूर्यो भवत्यन्नमहार्घता ॥ २३४ ॥
सूर्यमध्यौ शुक्रबुधावनावृष्टिकरौ मतौ।
बुधपृष्ठौ शुक्रशनी धनधान्यसमृद्धयः ॥ २३५ ॥
यदि चेन्मङ्गलो गच्छेत् पुरतः सूर्यशुक्रयोः।
तुषारवर्षी पर्जन्यो वृष्टयै स्यात् खण्डमण्डले ।२३६॥
शुक्रमङ्गलमध्यस्थे सूर्ये घोरमवर्षणम्।
ताभ्यां युक्तो रविः कृत्स्नां प्लावयेज्जगतीं जलैः ॥२३७॥
अग्रे बुधो रविर्मध्ये शुक्रः पृष्ठे त्ववग्रहः।
अग्रे शुक्रो रविर्मध्ये गुरुः पृष्ठेऽतिवर्षणम् ॥ २३८ ॥
अग्रे सूर्यो बुधो मध्ये भौमः पृष्ठे सुभिक्षता।
अग्रे शुक्रः शनिर्मध्ये बुधः पृष्ठे सुभिक्षता ॥ २३९ ॥
बुधो बृहस्पतिः शुक्र एकराशिगतास्त्रयः।
अदृष्टा अयुताः क्रूरैर्महावृष्टिविधायिनः ॥ २४० ॥
शनिश्च मङ्गलः शुक्र एकराशिगतास्त्रयः।
तदा वर्षति पर्जन्यो जीवदृष्टौ न संशयः ॥ २४१ ॥
सूर्यशुक्रबुधेष्वेकराशिगेष्वल्पवर्षणम्।
सूर्यशुक्रगुरुष्वेकराशिगेष्वतिवृष्टयः ॥ २४२ ॥
शनिशुक्रकुजैर्वृष्टिजीवदृष्टैः सहस्थितैः।
शनिराहुकुजैर्युद्धमवृष्टिश्चैकराशिगैः ॥ २४३ ॥
शनिराहुगुरुष्वेकराशिगेषु शिलोदकम्।
सर्वे ग्रहा एकराशौ दुर्भिक्षा वृष्टिरोगदाः ॥ २४४ ॥

शुक्रोऽङ्गारः शनिर्जीवः सहस्था अवरोधकाः ।
शुक्रो राहुः शनिर्जीवः सहस्था वृष्टिहेतवः ॥ २४५ ॥
भौमो बुधो गुरुः शुक्रः सहस्था पांशुवृष्टये ।
................................................ ॥ २४६ ॥
भौमः शुक्रशनी राहुरेकराशिगता यदि ।
मेघा जलं न मुञ्चन्ति दुर्भिक्षं जायते तदा ॥ २४७ ॥
भौमो बृहस्पतिः शुक्रः शनिश्चैते सहस्थिताः ।
मेघा जलं न मुञ्चन्ति दुर्भिक्षं जायते तदा ॥ २४८ ॥
सूर्यो बृहस्पतिः शुक्रः शनी राहुः सहस्थिताः ।
मेघा जलं न मुञ्चन्ति सर्वधान्यमहार्घता ॥ २४९ ॥
चत्वारः पञ्च वा खेटा एकराशिगता यदि ।
प्लावयन्ति महीं सर्वां रुधिरेण जलेन वा ॥ २५० ॥
बुधेज्यशुक्राः सूर्येन्दू एकराशिगता यदि ।
नैर्ऋत्यदिक्प्रजानाशो दुर्भिक्षं तर्हि जायते ॥ २५१ ॥
बुधेज्यशनिराह्वर्का एकाशिगता यदि ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सुखं सर्वत्र जायते ॥ २५२ ॥
शुक्रपूर्वा यमाङ्गारबुधा जीवयुतायुताः ।
प्रचण्डवायुकोपः स्यादनावृष्टिश्च जायते ॥ २५३ ॥
सूर्यश्चन्द्रो बुधो जीवः शुक्रश्चेति सहस्थिताः ।
वृष्टियोगं प्रकुर्वन्ति नाङ्गारः पुरतो यदि ॥ २५४ ॥
सूर्यपृष्ठगताः सर्वे सर्वे सूर्यपुरोगमाः ।
योगौ वृष्टिकरावेतौ वृष्टिविद्याः प्रचक्षते ॥ २५५ ॥
अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः ।
वदा वदा प्रकुर्वन्ति सुवृष्टिमनुलोमगाः ॥ २५६ ॥

वृष्टिदाः पृष्ठतः क्रूरा वृष्टिदा अग्रतः शुभाः।
वैपरीत्यमनावृष्टचै जायतेऽनेकसंचरे ॥ २५७ ॥
यद्यग्रस्थितसौम्याः स्युः क्रूरग्रहपरम्पराः।
तदा प्रभूतमुदकं वर्षन्ति न विपर्य्यये ॥ २५८ ॥

२१६-वर्षाकाल में सूर्य से आगे मङ्गल के रहने पर अनावृष्टि, शुक्र के आगे रहने पर वर्षा, गुरु के आगे रहने पर गर्मी और बुध के आगे रहने पर वायु चलती है।

२१७-सूर्य-मङ्गल, शनि-मङ्गल और गुरु-मङ्गल से अवर्षा होती है। बुध-शुक्र और गुरु-बुध का योग अवश्य वर्षा करता है।

२१८-क्रूर ग्रहों से अदृष्ट और अयुत बुध और शुक्र एक राशि में स्थित हों और यदि उन्हे बृहस्पति भी देखता हो तो वे अधिक महावृष्टि के देने वाले होते हैं।

२१९-क्रूर ग्रहों से अदृष्ट और अयुत ( भिन्न ) बुध और बृहस्पति एक राशि में स्थित हों और यदि शुक्र उन्हें देखता हो तो वे अधिकतया अच्छी वर्षा करते हैं।

२२०-क्रूर ग्रहों से अदृष्ट और अयुत गुरु और भृगु एक जगह स्थित हों और बुध उन्हें देखता हो तो वे विशेष कर उत्तम वर्षा करते हैं।

२२१-शुक्र और चन्द्रमा वा मङ्गल और चन्द्रमा यदि एक राशि पर स्थित हों तो सब दिशाएँ बन्धन-रहित हो जाती हैं और जल का योग पूर्ण होता है।

२२२-सूर्य के सहित बृहस्पति यदि एक राशि पर प्राप्त हो जावै तो जब तक वह अस्त न हो तब तक वर्षा का योग समझना चाहिये। ये फल बुध और बृहस्पति के योग से भी समझना चाहिए।

२२३-शनि और मङ्गल का एक राशि पर होना महावृष्टि का कारण समझना चाहिये। इस योग से दो महीने तक वर्षा होकर वह समाप्त होती है।

२२४-सौम्य ग्रहों से अदृष्ट और अयुक्त शनि और मङ्गल यदि एक स्थान में स्थित हों तो वायु का प्रकोप और अग्नि का भय होता है।

२२५-एक राशि वा एक ही नक्षत्र पर राहु और मङ्गल आजावैं तो ये दोनों वर्षा का नाश करते हैं। गुरु और शुक्र यदि एकत्र स्थित हों तो असमय में वर्षा होगी।

२२६-सूर्य के आगे शुक्र वा बुध जावै तो वर्षा काल में निरन्तर वर्षा होती रहती है।

२२७-मङ्गल के आगे सूर्य की गति होतो वह वर्षा को नहीं रोकता, किन्तु यदि सूर्य के आगे मङ्गल हो तो वह वर्षा को तत्काल रोक देता है।

२२८-बृहस्पति से आगे शुक्र हो तो वह अवश्य वर्षा पैदा करता है। किन्तु शुक्र के आगे बृहस्पति हो तो वह वर्षा पैदा नहीं करेगा।

२२९-बुध के आगे शुक्र के होने पर महावृष्टि और शुक्र से आगे बुध के होने पर अल्पवृष्टि होती है। यदि इन दोनों के मध्य में सूर्य वा अन्य ग्रह आजावें तो वर्षा नहीं होती।

२३०-उन्मार्ग गमन ( अनिश्चित क्रम से गमन ) करता हुआ बुध यदि शुक्र को छोड़दे तो सात वा पाँच दिन तक वर्षा होती है।

२३१-उदय वा अस्त होता हुआ बुध यदि शुक्र से आगे रहे तो शीघ्र ही वर्षा पैदा करता है, जल नाड़ियों में आने पर यह अधिक फल देता है।

२३२-शुक्र से आगे मङ्गल के रहने पर उत्तरापथ में वर्षा का अभाव रहता है और बिजली का कोप, रजोवर्षा तथा अग्निदाह का भय रहता है।

२३३-शुक्र से आगे बृहस्पति के रहने पर मेघ व्यर्थ चले जाते हैं अर्थात् वर्षा नहीं होती अथवा पूर्व दिशा में ओले गिरते हैं शुक्र से आगे शनि के रहने पर दक्षिण के देश रोगों से पीड़ित होते हैं।

२३४-बृहस्पति मंगल यदि चन्द्रमा के साथ हों तो इसे वर्षा का योग समझना चाहिये। शुक्र से आगे बुध और इसके बाद सूर्य होतो अन्न की महगाई होती है।

२३५-शुक्र और बुध के मध्य में सूर्य का होना अनावृष्टि करने वाला होता है। शुक्र और शनि के पीछे बुध का होना धन धान्य की समृद्धि करता है।

२३६-यदि सूर्य और चन्द्रमा के आगे मंगल की गति होतो देशों में कहीं-कहीं बर्फ गिराने वाली वर्षा होती है।

२३७-शुक्र और मंगल के मध्य में सूर्य के रहने पर घोर अवर्षा होती है किन्तु यदि सूर्य उन दोनों ग्रहों से युक्त होतो सम्पूर्ण पृथ्वी को जल से प्लावित कर देता है।

२३८-आगे बुध हो, मध्य में सूर्य हो और पीछे के भाग में शुक्र होतो वर्षा की रोक होती

है। किन्तु यदि आगे शुक्र हो, मध्य में सूर्य हो और पृष्ठ भाग में बृहस्पति होतो खूब वर्षा होती है।

२३६-आगे सूर्य, मध्य में बुध और पृष्ठ में मंगल होतो सुभिक्ष होता है। इसी तरह आगे शुक्र, मध्य में शनि और पृष्ठ में बुध हो तोभी सुभिक्ष होता है।

२४०-बुध, बृहस्पति और शुक्र ये तीनों एक ही राशि पर स्थित हों और क्रूर ग्रहों से अदृष्ट और अयुत हों तो इन्हें महावृष्टि करने वाले समझने चाहिये।

२४१-शनि, मंगल और शुक्र ये तीनों एक राशि पर हो और गुरु इन्हें देखता होतो अवश्य निस्सन्देह वर्षा होती है।

२४२-सूर्य, शुक्र और बुध इनके एक राशि पर होने से अल्पवृष्टि होती है। सूर्य, शुक्र और बृहस्पति इनके एक राशि पर होने से अतिवृष्टि होती है।

२४३-शनि, शुक्र और मंगल इनके एक जगह स्थित रहने से और गुरु के द्वारा इनके देखे जाने से वर्षा होती है। शनि, राहु और मंगल यदि एक स्थान पर स्थित हों तो युद्ध तथा अवृष्टि होती है।

२४४-शनि, राहु, मंगल ये तीनों एक राशि पर स्थित हों तो ओले के साथ वर्षा होती है। यदि सभी ग्रह एक राशि पर आजावें तो दुर्भिक्ष, अवर्षा और रोग के द्वारा कष्ट प्राप्त होता है।

२४५-शुक्र, मंगल, शनि और बृहस्पति ये ग्रह एक स्थान में स्थित होने से वर्षा रोकते हैं। और शुक्र, राहु, शनि तथा बृहस्पति ये ग्रह एक स्थान में स्थित होकर वर्षा आने के कारण होजाते हैं।

२४६-मंगल, बुध, गुरु और शुक्र एक स्थान में स्थित होकर रजोवृष्टि करते हैं।

२४७-मंगल, शुक्र, शनि और राहु ये ग्रह यदि एक राशि पर आजावें तो मेघ कभी वर्षा नहीं करते और दुर्भिक्ष होता है।

२४८-मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये ग्रह साथ-साथ बैठे हों तो मेघ वर्षा नहीं करते और दुर्भिक्ष होता है।

२४९-सूर्य, बृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु इन ग्रहों के एकत्र स्थित होने से मेघ वर्षा नहीं करते हैं और सब धान्यों की महगाई रहती है।

२५०-चार वा पाँच ग्रहों के एक स्थान में आजाने से संपूर्ण पृथ्वी जल अथवा रुधिर से आप्लावित होजाती है ।

२५१-बुध, बृहस्पति, शुक्र, सूर्य और चन्द्रमा इन ग्रहों के एक स्थान में एकत्रित होने से नैर्ऋत्य दिशा की प्रजा का नाश और दुर्भिक्ष होता है ।

२५२-बुध, बृहस्पति, शनि, राहु और सूर्य इन ग्रहों के एक राशि पर आजाने से सुभिक्ष, कुशलता, आरोग्यता और सर्वत्र सुख प्राप्त होता है ।

२५३-शुक्र, शनि, मंगल और बुध ये ग्रह बृहस्पति से युक्त हों या न हों तब भी प्रचण्ड वायु का कोप और अनावृष्टि होती है ।

२५४-सूर्य, चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र इन ग्रहों के आगे यदि मङ्गल न हो तो ये ग्रह एक राशि पर स्थित होने से वर्षा करते हैं ।

२५५-सब ग्रह सूर्य के पीछे चले गये हों या सब ही ग्रह सूर्य के आगे आगये हों, ये दोनों ही योग वृष्टिविद्या में वर्षा करने वाले कहे गये हैं ।

२५६-सूर्य के साथी ग्रह आगे हों या पीछे हों वे यदि मार्गी हों तो वर्षा करते हैं ।

२५७-क्रूर ग्रह सूर्य के पृष्ठ भाग में होने पर वर्षा करते हैं और शुभ ग्रह सूर्य के आगे होने से वर्षा करते हैं । अनेक ग्रहों का संचार होने पर विपरीत तथा अनावृष्टि होती है ।

२५८-यदि परम्परा से क्रमानुसार क्रूर ग्रहों के आगे सौम्य ग्रह स्थित हों तो खूब वर्षा होती है । विपरीत योग में वर्षा नहीं होती ।

इति सामान्यसादेश्याधिकरणम् ।

## विशेषसादेश्ययोगः ।

मेषे राहुश्च शुक्रश्च दुर्भिक्षाय सहस्थितौ ।
मेषेऽर्को मङ्गलः शुक्रः शनिर्दुर्भिक्षहेतवः ॥ २५९ ॥
अनावृष्टिकरो योगो वृषे भानुः कुजः शनिः ।
त्रयो वा यदि मीने स्युश्चन्द्रः शुक्रश्च मङ्गलः ॥२६०॥
दुर्भिक्षायाऽप्यनावृष्टयै वृषेऽर्को मङ्गलः शनिः ।
शुक्रक्षेत्रे सुवृष्टयै स्याद्धिषणो मङ्गलः शनिः ॥२६१॥

शनिराहू तु मिथुनस्थानौ दुर्भिक्षकारकौ ।
मीने चापेऽतिदुर्भिक्षं शनिमङ्गलराहुभिः ॥ २६२ ॥
गुरुक्षेत्रे शनौ राहौ स्वल्पवृष्टिस्तृणक्षयः ।
भौमे राज्ञा विरोधः स्याद् बुधे वृष्टिश्च भूयसी ॥२६३॥
बुधश्चेन्मकरे कुम्भे वृष्टिः स्याद् भूयसी तदा ।
बुधक्षेत्रे रवौ चन्द्रे वृष्टियोगः सुभिक्षता ॥ २६४ ॥

२५९-मेष राशि पर शुक्र और राहु का साथ बैठना दुर्भिक्ष करता है तथा मेष राशि पर ही सूर्य, मङ्गल, शनि और शुक्र का होना भी दुर्भिक्ष का कारण है ।

२६०-वृषराशि पर सूर्य, मङ्गल और शनि का होना अनावृष्टि करने वाला योग है । मीन राशि पर चन्द्र, शुक्र और मङ्गल इन तीनों का होना भी अनावृष्टि करने वाला योग समझना चाहिए ।

२६१-वृष राशि पर सूर्य, मङ्गल और शनि के होने से दुर्भिक्ष और अनावृष्टि होती है । शुक्र के क्षेत्र में बृहस्पति मङ्गल और शनि के होने से सुवृष्टि होती है ।

२६२ मिथुन राशि पर शनि और राहु का होना दुर्भिक्ष करता है । मीन और धन राशि पर शनि, मङ्गल और राहु के होने से अत्यन्त दुर्भिक्ष होता है ।

२६३-गुरु के क्षेत्र में शनि और राहु के होने पर अल्पवृष्टि और घन का नाश होता है, मङ्गल के होने पर राजाओं में लड़ाई और बुध के होने पर खूब वर्षा होती है ।

२६४-मकर वा कुंभ राशि पर बुध के होने से खूब वर्षा होती है । बुध के क्षेत्र में सूर्य और चन्द्रमा के होने पर सुभिक्ष होता है और यह योग वर्षा करने वाला भी है ।

इति विशेषसादेश्याधिकरणम् ।

## राशिचक्रयोगः ।

मिथुने मङ्गलो जीवस्तुले यदि शनैश्चरः ।
राहुर्धनुषि मेघाः स्युस्तदानीं प्रबलाधिकाः ॥२६५॥

कर्के बृहस्पतिः सिंहे शुक्रः स्यान्मङ्गलस्तुले ।
शनिर्मीने तृणं सस्यं वृष्टिश्चापि न जायते ॥ २६६ ॥
सिंहे शुक्रस्तुले भौमः कर्के जीवो भवेद् यदि ।
महावातो धूलिपातो भवेद्धान्यमहार्घता ॥ २६७ ॥
दुर्भिक्षाय शनिर्मीने गुरुः कर्के कुजस्तुले ।
अनावृष्टिश्च दुर्भिक्षं मीने शुक्रेन्दुमङ्गलैः ॥ २६८ ॥

२६५–मिथुन राशि पर मङ्गल और बृहस्पति, तुला राशि पर शनि और धन राशि पर राहु हो तो अत्यधिक वर्षा होती है ।

२६६–कर्क पर बृहस्पति, सिंह पर शुक्र, तुला पर मङ्गल और मीन राशि पर शनि के होने से घास, धान्य और वर्षा भी नहीं होती ।

२६७–सिंह पर सूर्य, तुला पर मङ्गल, और कर्क राशि पर बृहस्पति के होने से जोर की हवा रजोवृष्टि तथा धान्य की मँहगाई होती है ।

२६८–मीन राशि पर शनि, कर्क पर बृहस्पति और तुला पर मङ्गल के होने से अथवा मीन राशि पर ही शुक्र, चन्द्रमा और मङ्गल के होने से दुर्भिक्ष होता है ।

इति राशिचक्रयोगाधिकरणम् ।

## नक्षत्रचक्रयोगः ।

चित्रायां यदि शुक्रः स्यान्मघायां यदि मङ्गलः ।
रोहिण्यां शनिरायातः सर्वं सस्यं विनश्यति ॥ २६९ ॥
शनिः स्यादुत्तराषाढे सप्तमर्क्षे दिवाकरः ।
विनश्यति जलं तत्र प्रजा च बहु पीड्यते ॥ २७० ॥
शनिर्यदि धनिष्ठायां तत्रैव यदि मङ्गलः ।
अनावृष्टिस्तदा तत्र सस्यहानिश्च जायते ॥ २७१ ॥
गुरुः शतभिषायां स्याच्चित्रायां यदि मङ्गलः ।
श्रवणे वा श्रविष्ठायां गुरुशुक्राववस्थितौ ॥ २७२ ॥

गोधूमास्तत्र नश्यन्ति सर्वसस्यमहार्घता।
मघाधनिष्ठयोर्जीवे मृग्यां राहौ महार्घता॥ २७३॥
भरण्यां वा विशाखायां गुरुशुक्रौ महार्घता।
आर्द्रायां शनिराहू चेदनावृष्टिस्तदा भवेत्॥ २७४॥

२६९-चित्रा पर शुक्र, मघा पर मङ्गल और रोहिणी पर शनि के आने से सब धान्य नष्ट हो जाता है।

२७०-उतराषाढा पर शनि हो और अश्लेषा पर सूर्य हो तो वहाँ जल का नाश हो जाता है और प्रजा को बहुत पीड़ा प्राप्त होती है।

२७१-शनि यदि धनिष्ठा पर हो और इसी जगह मङ्गल भी हो तो अनावृष्टि तथा धान्य का नाश हो जाता है।

२७२-२७३-शतभिषा पर गुरु हो चित्रा पर मङ्गल हो अथवा श्रवण वा धनिष्ठा पर गुरु शुक्र एक साथ बैठे हों तो गेहूँ का नाश हो जाता है और तमाम धान्य मँहगे हो जाते हैं। मघा और धनिष्ठा पर बृहस्पति के होने से और मृगशिर पर राहु के होने से मंहगाई होती है।

२७४-भरणी वा विशाखा पर गुरु शुक्र के होने से मँहगाई होती है। आर्द्रा पर शनि और राहु के होने से अनावृष्टि होती है।

इति नक्षत्रचक्रयोगाधिकरणम्।

## समसप्तकयोगः।

मिथः सप्तमराशिस्थौ पश्चात् प्राग्वीथिसंस्थितौ।
गुरुशुक्रावनावृष्टिदुर्भिक्षमरणप्रदौ॥ २७५॥
पूर्वस्यां दृश्यते शुक्रः पश्चिमायां बृहस्पतिः।
समसप्तमयोर्योगादनावृष्टिं प्रचक्षते॥ २७६॥
समसप्तमयोः सूर्यभौमयोः शनिभौमयोः।
गुरुभार्गवयोर्योगा अनावृष्टिकरा मताः॥ २७७॥

"भौमार्की एकराशौ चेदन्योन्यसमसप्तमौ ।
गुरुशुक्रौ कुजार्कौ वा विदुरावर्षणं तदा ॥" २७८

मुहूर्त्तगणपतिः

गुरुणा यदि शुक्रस्य दृश्यते सप्तसप्तकम् ।
रवेर्गुरोर्भृगोः खेटैः सप्तमैर्नास्ति वर्षणम् ॥ २७६ ॥

मङ्गलेन तु शुक्रस्य यदि स्यात् समसप्तकम् ।
शनिना वापि जीवस्य भवेत् प्रावृषि वर्षणम् ॥२८०॥

क्रूराणां सह सौम्यैश्च यदि स्यात् सप्तसप्तकम् ।
अनावृष्टिस्तदा तत्र भवेल्लोकप्रपीडनम् ॥ २८१ ॥

२७५-प्राग्वीथी नामक मार्ग में स्थित तथा आपस में सातवीं राशि पर स्थित हुए गुरु शुक्र अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और मरण देते हैं।

२७६-पूर्व में शुक्र और पश्चिम में बृहस्पति स्थित हो इस समसप्तक के योग से अनावृष्टि समझनी चाहिये।

२७७-सूर्य-मङ्गल, वा शनि-मङ्गल अथवा बृहस्पति-शुक्र ये बराबर के सातवें स्थान में स्थित हों तो अनावृष्टि होती है।

२७८-भौम और शनि, गुरु और शुक्र अथवा मङ्गल और सूर्य ये एक राशि पर आपस-में सातवें स्थान पर स्थित हों तो वर्षा समझनी चाहिये।

२७६-गुरु से शुक्र का यदि समसप्तक हो अथवा सूर्य, गुरु वा भृगु से अन्य ग्रहों का सम सप्तक हो तो अवर्षा या अतिवर्षा होती है।

२८०-मङ्गल से शुक्र का अथवा शनि से गुरु का समसप्तकयोग हो तो वर्षाऋतु में अच्छी वर्षा होती है।

२८१-क्रूर ग्रहों का सौम्य ग्रहों के साथ समसप्तक का योग होने से अनावृष्टि होती है और लोक को पीड़ा पहुँचती है।

इति समसप्तकाधिकरणम् ।

## चक्रवेधयोगः ।

ऋत्तप्रवेशे शुक्रस्य त्रिकोणे सप्तमे शशी ।
जलराशिस्थितः शुक्रदृष्टो वा सुप्रवर्षति ॥ २८२ ॥
सोमः शनेर्मङ्गलाद्वा त्रिकोणे सप्तमेऽपि वा ।
जलराशिस्थितः शुक्रदृष्टौ वा सुप्रवर्षति ॥ २८३ ॥
शनिस्त्रिकोणे केन्द्रे वा यदि सौम्योऽनुवर्तते ।
जलराशिस्थितः शुक्रदृष्टो वा सुप्रवर्षति ॥ २८४ ॥
बहूदकाः कर्कनक्रमीनाः कुम्भधनुर्वृषाः ।
अर्द्धोदकास्तुलाकीटौ सामान्यौ निर्जलाः परे ॥२८५॥

२८२-शुक्र के नत्तत्रप्रवेश के समय चन्द्रमा त्रिकोण सप्तम स्थान में हो और वह जल राशि पर स्थित हो तथा शुक्र उसे देखता हो तो अच्छी वर्षा करता है ।

२८३-शनि वा मङ्गल से त्रिकोण सप्तम स्थान से चन्द्रमा स्थित हो, जलराशि पर बैठा हो तो वह शुक्र से देखे जाने पर अच्छी वर्षा करता है ।

२८४-त्रिकोण वा केन्द्र में शनि हो सौम्य ग्रह अनुवर्त्तन करता हो और जलराशि स्थित हो तो शुक्र से देखे जाने पर अच्छी वर्षा करता है ।

२८५-कर्क, मकर, मीन कुंभ धन और वृष अधिक जल देते हैं, तुला और वृश्चिक अल्प-जल, शेष को जल रहित समझने चाहिये ।

इति चक्रवेध्याधिकरणम् ।

## षट्चक्रयोगाः ।

समुद्रस्तुम्बुरुः कालः पातसंघट्टनाडिकाः ।
षट् चक्रवेधा उच्यन्ते द्रष्टुं वृष्टि च वेधजाम् ॥२८६॥

### समुद्रचक्रम्—( १ )

कृत्तिकादिभचक्रे द्वे द्वे एकं द्वे इति क्रमात् ।
सिन्धुस्तटं गिरिः संधिश्चतुर्धैव पुनः पुनः ॥ २८७ ॥

शनिचन्द्रौ गिरिस्थौ चेत् सूर्यो वा मङ्गलोऽथवा ।
तदा प्रवर्द्धते वृष्टिः सुभिक्षं सस्यसंपदः ॥ २८८ ॥
मेषसंक्रांतिदिवसे दिनभं यत्र दृश्यते ।
तद्वशाद् वृष्टिविज्ञानं वृष्टिकालेऽनुभावयेत् ॥२८९॥
समुद्रभेऽतिवृष्टिः स्यात् सुवृष्टिस्तटभे सति ।
सन्धिभे खण्डवृष्टिः स्यादनावृष्टिस्तु पर्वते ॥२९०॥
राशिचक्रं लिखित्वादौ मेषसंक्रान्तितः क्रमात् ।
अष्टाविंशतिकं तत्र लिखेन्नक्षत्रसंकुलम् ॥ २९१ ॥
सिन्धौ द्वयं लिखित्वादौ तत एकैकमुल्लिखेत् ।
तटे सिन्धौ गिरौ सन्धौ तटे चेति पुनः पुनः ॥२९२॥
चत्वारः सागरास्तत्र तटान्यष्टाष्टसन्धयः ।
चत्वारि गिरिशृङ्गाणि रोहिणीं तत्र दर्शयेत् ॥२९३॥
संधिस्थाने खण्डवृष्टिः पर्वते बिन्दुमात्रकम् ।
तटे सुवृष्टी रोहिण्यां महावृष्टिस्तु सागरे ॥ २९४ ॥

२८६-वेधज वृष्टि जानने के लिये समुद्र, तुंबुरु, काल, पात, संघट्ट और नाडी ये छः चक्र-वेध कहे गये हैं।

समुद्रचक्र ( १ )

२८७-कृत्तिका से प्रारम्भ करके नक्षत्रों को दो, दो, एक और फिर दो इस क्रम से विभक्त करदे और इन चारों भागों को सिन्धु, तट, गिरि और सन्धि इस चक्र में बांट दें।

२८८-शनि और चन्द्रमा अथवा सूर्य या मङ्गल गिरि पर स्थित हों तो वृष्टि खूब होती है सुभिक्ष और धान्य की सम्पत्ति होती है।

२८९-मेष की संक्राति के दिन दैनिक नक्षत्र जहां दिखाई देता हो, उसके अनुसार वर्षा काल में वृष्टि की पहिचान करनी चाहिये।

२९०-समुद्रनक्षत्र होने से अतिवृष्टि, तटका नक्षत्र होने से सुवृष्टि सन्धि का नक्षत्र होने से खण्डवर्षा और पर्वत का नक्षत्र होने से अवर्षा होती है।

## समुद्रचक्र ( २ )

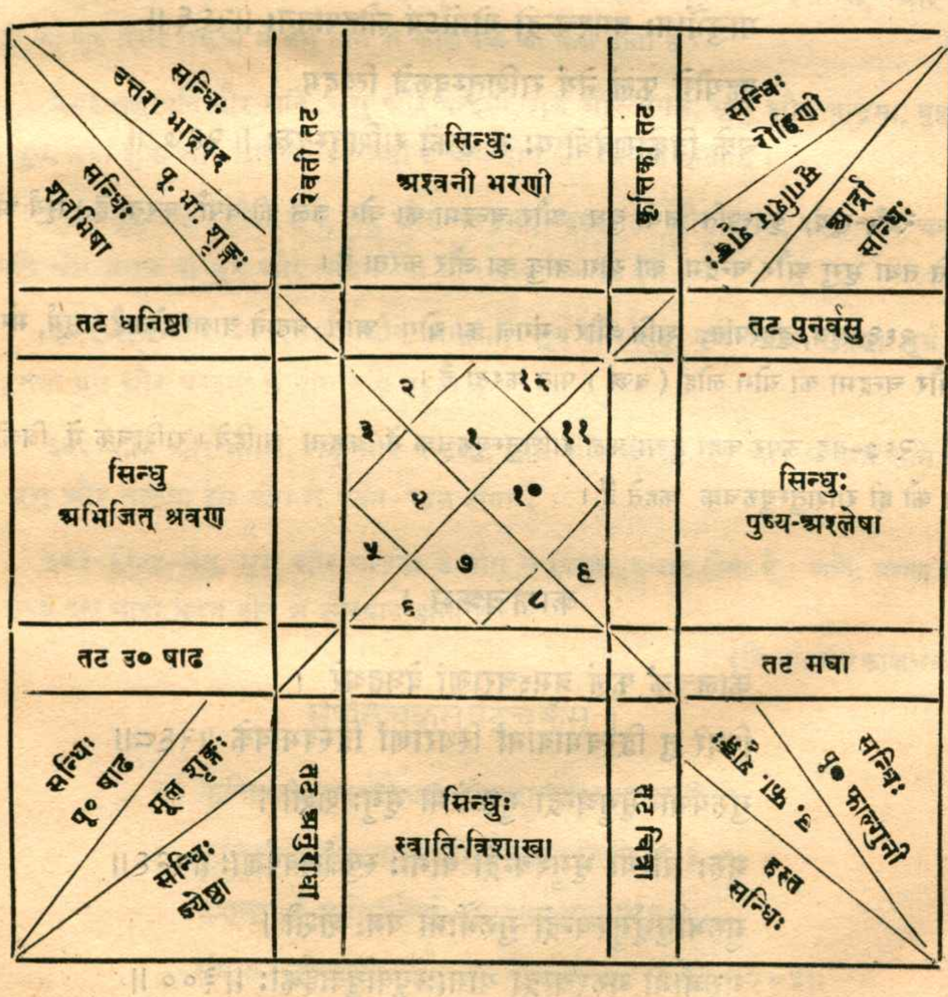
२९१-मेष संक्रांति से राशि चक्र लिखकर उन में क्रमानुसार २८ नक्षत्र लिखने चाहिये।

२९२-प्रारम्भ में दो नक्षत्र समुद्र में लिखकर फिर एक-एक लिखने चाहिये। अर्थात् तटपर एक, समुद्र पर दो, पर्वत (शृङ्ग) पर एक और सन्धि में एक यह क्रम लिखते समय रखना चाहिये।

२९३-इस क्रम से चार सागर, आठ तट आठ सन्धि और चार गिरिशृङ्ग होते हैं। इस चक्र में रोहिणी नक्षत्र को देखना चाहिये।

यह चक्र इस प्रकार बनेगा—

समुद्रचक्रम्—( द्वितीयम् )



२९४-रोहिणी यदि सन्धि स्थान में होतो खण्डवृष्टि, पर्वत पर हो तो बिन्दु मात्र वर्षा तट पर होने से सुबर्षा और समुद्र पर होने से महावृष्टि होती है।

इति समुद्र चक्र द्वितीयम्।

## राशितुम्बुरुचक्रम् ।

भानुर्जीवो बुधश्चन्द्रो योगोऽयं जलवर्षणः ।
भानुर्जीवो भृगुश्चन्द्रो योगोऽयं वायुवाहकः ॥ २९५ ॥
भानुर्जीवो यमश्चन्द्रो योगोऽयं वह्निवर्धनः ।
भानुर्भौमः तमश्चन्द्रो योगोऽयं लोहपातनः ॥२९६॥
ग्रहयोगे फलं नेयं राशितुम्बुरुजे त्विदम् ।
चक्रे त्रिकोणवेधो यः स उक्तो राशितुम्बुरुः ॥ २९७ ॥

२९५-सूर्य, बृहस्पति तथा बुध और चन्द्रमा का योग जल की वर्षा करता है। सूर्य और बृहस्पति तथा भृगु और चन्द्रमा का योग वायु का जोर करता है।

२९६-सूर्य, बृहस्पति, शनि और मंगल का योग आगे बढाने वाला होताहै। सूर्य, मंगल राहु और चन्द्रमा का योग लोह ( वज्र ) पात करता है।

२९७-यह ऊपर कहा हुआ फल राशितुम्बुरुचक्र में कहना चाहिये। राशिचक्र में त्रिकोण के वेध को ही राशितुम्बुरुचक्र कहते हैं।

## कान्तचक्रम् ।

कालचक्रं फलं ब्रूमश्चराणां बेधतश्चरे ।
स्थिरे तु द्विस्वभावानां स्थिराणां द्विस्वभावके ॥२९८॥
गुरुर्यमो भृगुश्चन्द्रो गुरुर्भौमो भृगुः शशी ।
गुरुः सौम्यो भृगुश्चन्द्रो योगाः स्युर्जलवर्षणाः ॥२९९॥
गुरुर्भानुर्भृगुश्चन्द्रो गुरुर्भौमो यमः शशी ।
गुरुर्भौमो गुरुश्चन्द्रो योगाःस्युर्वायुवाहकाः ॥ ३०० ॥

भानुर्भौमो गुरुश्चन्द्रो भानू राहुर्बुधः शशी ।
भानुर्यमो बुधश्चन्द्रो योगाः स्युर्वह्निवर्धनाः ॥३०१॥
यमो भौमस्तमश्चन्द्रो यमो भौमो गुरुः शशी ।
यमः केतुर्भृगुश्चन्द्रो योगाः स्युः शैलपातनाः ॥३०२॥
भौमः केतुर्भृगुश्चन्द्रो योगो विद्युत्प्रचारकः ।
यमो भौमो भृगुश्चैकनाडीस्थाः शैलपातनाः ॥३०३॥

२९८–चर नक्षत्रों का चर नक्षत्रों में, चर स्थिर नक्षत्रों का स्थिर नक्षत्रों में, और स्थिर नक्षत्रों का चर स्थिर नक्षत्रों में बेध होने से कालचक्र का फल होता है ।

२९९–बृहस्पति और शनि, भृगु और चन्द्रमा, गुरु और मंगल, भृगु और चन्द्रमा, बृहस्पति और बुध, तथा शुक्र और चन्द्रमा–इन ग्रहों के योग होने से जलवर्षा होती है ।

३००–बृहस्पति और सूर्य, राहु और चन्द्रमा, बृहस्पति और मंगल, शनि और चन्द्रमा, बृहस्पति और मंगल वा गुरु और चन्द्रमा का योग वायु चलाता है ।

३०१–सूर्य और मंगल, गुरु और चन्द्रमा, सूर्य और राहु, बुध और चन्द्रमा सूर्य और शनि, तथा बुध और चन्द्रमा के योग वह्नि बढ़ाते हैं ।

३०२–शनि और मंगल, राहु और चन्द्रमा, शनि और मंगल, गुरु और चन्द्रमा शनि और केतु, भृगु और चन्द्रमा इस योग से पर्वत–पतन होता है ।

३०३–मंगल–केतु, भृगु और चन्द्रमा के योग से विद्युत् प्रचार होता है । शनि, मंगल और शुक्र इनके एक नाड़ी स्थित होने से शैलपात होता है ।

इति द्वादशारकालचक्रम् ।

## संपातचक्रसंघट्टचक्रम् ।

कृत्तिकायाम्ययोर्वेधात् फाल्गुन्योरप्यषाढयोः ।
कृत्तिकापूषयोः पूफोषयोर्याम्योफयोरपि ॥ ३०४ ॥
नक्षत्राणां ततोऽन्येषां वेधास्तत्क्रमयोगतः ।
संपातनाडीचक्रं स्यात् तत्र योगात् फलं वदेत् ॥३०५॥

कृत्तिकापातजो नाडीवेधः प्राचामयं मते ।
अर्वाचामश्विनीपातनाडीवेधो विधीयते ॥ ३०६ ॥

अश्विनीपौष्णयोः श्लेषामघयोः शाक्रमूलयोः ।
अश्विनीशाक्रयोः श्लेषामूलयोः पित्र्यपौष्णयोः ॥ ३०७ ॥

नक्षत्राणां ततोऽन्येषां वेधात् तत्क्रमयोगतः ।
संपातनाडीचक्रं स्यात् तत्र योगात् फलं वदेत् ॥ ३०८ ॥

एकनाडीसमारूढौ भवेतां चन्द्रमङ्गलौ ।
यदि तत्र गतो जीवस्तत्र वृष्टिर्न संशयः ॥ ३०९ ॥

एकनाडीसमारूढा बुधः शुक्रो बृहस्पतिः ।
यदि तत्र गतश्चन्द्रस्तत्र वृष्टिः प्रजायते ॥ ३१० ॥

एकनाडीसमारूढा रविमङ्गलराहवः ।
यदि तत्र गतश्चन्द्रस्तत्र युद्धं विनिर्दिशेत् ॥ ३११ ॥

एकनाडीसमारूढाः शुक्रसूर्यबुधा यदि ।
अनावृष्टिस्तदा तोयं शुष्कं भवति सर्वतः ॥ ३१२ ॥

एकनाडीसमारूढौ कुरुतो राहुमङ्गलौ ।
अग्निपातं तथा युद्धं कुरुतः शनिमङ्गलौ ॥ ३१३ ॥

शनिमङ्गलजीवाः स्युरार्द्रायां मृगशीर्षिणि वा ।
विद्युता सह वृष्टिः स्याल्लग्नयोः कुम्भमीनयोः ॥ ३१४ ॥

केतुना मङ्गलेनाग्निं गुरुणा भृगुणा जलम् ।
सूर्येण शशिना लोहं युक्तः प्रकुरुते शशि ॥ ३१५ ॥

धीविक्रमव्ययद्यूनधर्मशत्रुतनूषु यः ।
शशाङ्कादपसव्येन स्थितः सोऽपि युतो मतः ॥ ३१६ ॥

एकनाडीसमारूढा सूर्येन्दुशनिराहवः ।
वह्निने दुर्दिनं ज्ञेयमभ्रच्छन्नं समन्ततः ॥ ३१७ ॥

इति पातनाडीयोगः ।

३०४-३०५-कृत्तिका और भरणी का, दोनों फल्गुनी और आषाढों का, कृतिका और रेवती का तथा पूर्व फल्गुनी एवं पूर्वाषाढ और भरणी एवं उत्तरफल्गुनी इन नक्षत्रों के वेध से एवं अन्य नक्षत्रों के वेध से भी इस क्रम के अनुसार संपातनाडीचक्र बनता है। इस चक्र के योग से भी वृष्टि के निमित्त देखे जाते हैं। यह चक्र कृत्तिकानक्षत्र से प्रारम्भ किया जाता है।

३०६-प्राचीन ऋषियों के मतानुसार यह कृत्तिकापातज नाडीवेध कहा गया है। अर्वाचीन ऋषियों के मत में अश्विनीपातज नाडीवेध माना जाता है।

३०७-३०८-अश्विनी और रेवती, अश्लेषा और मघा, ज्येष्ठा और मूल, अश्विनी और ज्येष्ठा, अश्लेषा और मूल तथा मघा और रेवती. इन नक्षत्रों के वेधसे एवं और भी नक्षत्रों के वेध से उक्त क्रमानुसार संपातनाडीचक्र बनता है। यह चक्र अश्विनी नक्षत्र से शुरू होता है। इस योग से भी फल कहते हैं।

३०९-एक नाडी पर चन्द्रमा और मंगल आरूढ हों और यदि बृहस्पति भी वहाँ आजावें तो वहाँ निःसन्देह वर्षा होती है।

३१०-एक नाडी पर बुध, शुक्र और बृहस्पति आरूढ हों और चन्द्रमा भी वहाँ आजावे तो वर्षा अवश्य होती है।

३११-एक नाडी पर सूर्य, मंगल और राहु आरूढ हों और चन्द्रमा उनके साथ आजावे तो युद्ध कहना चाहिये।

३१२-एक नाडी पर शुक्र, सूर्य, बुध आजावे तो अनावृष्टि कहनी चाहिये। चारों ओर से जल सूख जाता है।

३१३-एक नाडी पर आये हुए राहु-मंगल अग्निपात करते हैं और शनि-मंगल युद्ध करते है।

३१४-शनि, मंगल और बृहस्पति यदि आर्द्रा वा मृगशिर नक्षत्र पर आजावें तो कंभ और मीनलग्नमें बिजली के सहित वर्षा होती है।

३१५-केतु और मंगल के साथ होने पर चन्द्रमा अग्नि का भय करता है गुरु और भृगु के साथ होकर चन्द्रमा जल करता है, तथा सूर्य और शनि के साथ होकर चन्द्रमा वज्रपात का भय करता है।

३१६–जो चन्द्रमा से बाईं ओर पाँचवे, तीसरे, बारहवें, सातवें, नवें, छठे और पहिले स्थान में स्थित है वह भी युक्त ही माना गया है।

३१७–सूर्य, चन्द्रमा, शनि और राहु ये जब एक नाड़ी पर आरूढ हों तब दुर्दिन समझना चाहिये– अर्थात् चारों ओर आकाश मेघों से आच्छादित रहता है।

इति पातनाडीयोगः।

## सप्तनाडीचक्रम्।

चण्डा–समीरा–दहना–सौम्या–नीरा–जलाऽमृताः।
नाड्यः शनीज्यभौमर्कशुक्रज्ञशशिनां क्रमात् ॥ ३१८ ॥
कृत्तिकातोऽनुराधातः सप्तसप्तक्रमादिमाः।
मघातस्तु धनिष्ठातो विपरीतक्रमेण ताः ॥ ३१९ ॥
मध्यमार्गे स्थिता सौम्या तन्नाड्या अग्रपृष्ठतः।
सौम्ययाम्यगतं ज्ञेयं नाडिकानां त्रिकं त्रिकम् ॥ ३२० ॥
क्रूरा याम्यगता नाड्यः सौम्याः सौम्यदिगाश्रिताः।
मध्यनाडी तु मध्यस्था ग्रहयोगात् फलप्रदाः ॥ ३२१ ॥
द्वित्राधिकाः स्थिताः कुर्युश्चण्डायां चण्डमारुतम्।
वायुनाड्यां तथा वायुं दहनायां तथोष्मकम् ॥३२२॥
सौम्यायां समतां कुर्युर्नीरायां मेघसंचयम्।
जलायां वर्षणं ते चामृतायामतिवर्षणम् ॥ ३२३ ॥
एकोऽप्येतत्फलं दत्ते स्वनाडीसंस्थितो ग्रहः।
मङ्गलः सर्वनाडीषु धत्ते नाडीसमं फलम् ॥ ३२४ ॥
रवौ चन्द्रादिहस्तान्ते स्थिते नक्षत्रमण्डले।
ग्रहयोगवशादेव फलवैचित्र्यमिष्यते ॥ ३२५ ॥
पुंग्रहा गुरुभौमार्काः स्त्रीग्रहौ शशिभार्गवौ।
नपुंसकौ शनिबुधावौष्ण्यशैत्यादिकल्पनात् ॥ ३२६ ॥

वायुः पुंसां मिथोयोगे क्लीवयोर्धूमिकोद्भवः ।
वृष्टिः स्त्रीपुंसयोर्योगे छाया स्यात् संगमे स्त्रियोः ॥३२७॥

क्रूरसौम्यत्रिमिश्रास्तु यत्र नाड्यां स्थिता ग्रहाः ।
तत्र चन्द्रसमायोगे तद्दिने वृष्टिरुत्तमा ॥ ३२८ ॥

ग्रहाणामेकनक्षत्रे संयोगो यदि जायते ।
तत्र काले महावृष्टिर्यावत् तस्यांशके शशी ॥ ३२६ ॥

चन्द्रो विद्धो यदा पापैः सौम्यर्वा केवलैर्ग्रहैः ।
तदा स्याद्वर्षणं तुच्छं दुर्दिनं तु भवेद् ध्रुवम् ॥३३०॥

चन्द्रो यद् ग्रहनाडीस्थस्तद्ग्रहेण स युज्यते ।
दृश्यते वा न चेत् क्षीणो जलं स जनयेत् तदा ॥३३१॥

चन्द्रे चामृतनाडीस्थे तत्र खेटाः शुभाशुभाः ।
द्विचतुःपञ्च वर्षन्ति दिनेष्वेकत्रिसप्तसु ॥ ३३२ ।

जलनाडीस्थिते चन्द्रे तावन्मिश्रग्रहान्विते ।
दिनार्द्धं दिवसं पञ्च दिवसानि जलं पतेत् ॥ ३३३ ॥

नीरनाडीस्थिते चन्द्रे क्रूरसौम्यग्रहैर्युते ।
यामं दिनार्द्धं त्रिदिनं जलं पतति योगतः ॥ ३३४ ॥

अमृतादित्रये यत्र ग्रहाः सर्वे भवन्ति चेत् ।
तत्र वृष्टिः क्रमात् ज्ञेया धृत्यर्करसवासरान् । ३३५ ।

मध्यनाडीगताः सर्वे वृष्टिदास्ते दिनत्रयम् ।
शेषनाड्यां महावातदुष्टवृष्टिप्रदा ग्रहाः ॥ ३३६ ॥

योगे शुभाधिके नाडी निर्जलापि जलप्रदा ।
क्रूराधिकसमायोगे सजला अपि दाहिकाः ॥ ३३७ ॥

याम्यनाडीगताः क्रूरा अनावृष्टिप्रसूचकाः ।
शुभयुक्ता जलांशस्था किंचिद्वृष्टिप्रदा अपि ॥३३८॥

चन्द्रशुक्रौ युतौ दृष्टौ क्रूरैर्नाड्यां स्थितौ यदि ।
जलायां तत्र वृष्टिः स्यादल्पैव क्रूरयोगतः ॥ ३३९ ॥

जलनाडीसमारूढा बुधः शुक्रो बृहस्पतिः ।
तत्र चन्द्रसमायोगे जायते वृष्टिरुत्तमा ॥ ३४० ॥
जलनाडीसमारूढौ भवेतां चन्द्रमङ्गलौ ।
तत्र जीवसमायोगे जायते वृष्टिरुत्तमा ॥ ३४१ ॥
जलनाड़ीगताः खेटा महावृष्टिविधायिनः ।
अपने संक्रमे वक्रे मार्गे चास्ते तथोदये ॥ ३४२ ॥

३१८-शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा इनकी क्रम से चण्डा, समीरा, दहना, सौम्या, नीरा, जला और अमृता ये नाडियाँ समझनी चाहिये ।

३१९-३२१-कृत्तिका से प्रारंभ कर के ( अभिजित् के सहित ) २८ नक्षत्रों को उपरिलिखित सात नाडियों में ४ बार घुमाकर के विभक्त कर देना चाहिये । इस चक्र में नक्षत्रों का यह क्रम रखना चाहिये- कृत्तिका से अनुराधा तक सरलक्रम से और मघा से धनिष्ठा तक विपरीत क्रम से नक्षत्रों को लिखे। सात नाडियों के मध्य में सौम्यनाडी रहेगी और इसके आगे पीछे तीन-तीन नाडियाँ। दक्षिण दिशा में गई हुई नाडियाँ क्रूर कहलायेंगी और उत्तर दिशा में गई हुई सौम्य कहलायेंगी. मध्य में रहने वाली मध्यनाडी कहलायेंगी। ये ग्रहयोग से फल देती हैं। कोष्ठों में यह चक्र इस प्रकार होगा—

## सप्तनाडीचक्र—

| दिशा | दक्षिण में निर्जलनाडी | | | मध्य | उत्तर में सजलनाडी | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नाडी के नाम | चण्डा | समीरा | दहना | सौम्या | नीरा | जला | अमृता |
| स्वामी | शनि | गुरु या सूर्य | मंगल | सूर्य या गुरु | शुक्र | बुध | चन्द्रमा |
| नक्षत्र | कृत्तिका | रोहिणी | मृगशिर | आर्द्रा | पुनर्वसु | पुष्य | अश्लेषा |
| | विशाखा | स्वाति | चित्रा | हस्त | उ० फा० | पू० फा० | मघा |
| | अनुराधा | ज्येष्ठा | मूल | पू० षा० | उ० षा० | अभिजित् | श्रवण |
| | भरणी | अश्विनी | रेवती | उ० भा० | पू० भा० | शतभिषा | धनिष्ठा |

नोटः-किसी ग्रंथ का मत है कि समीरा नाडी का स्वामी सूर्य है और सौम्य नाडी का स्वामी गुरु है ।

३२२–अब प्रत्येक नाड़ी का फल कहते हैं— चण्डनाड़ी में दो-तीन से अधिक स्थित हुए ग्रह प्रचण्ड हवा चलाते हैं। समीर (वायु) नाड़ी में स्थित होने पर वायु और दहननाड़ी पर स्थित होने से ऊष्मा पैदा करते हैं।

३२३–सौम्यनाड़ी में स्थित होने से समता करते हैं, नीरा नाड़ी में स्थित होने पर मेघों का संचय करते हैं, जलनाड़ी में प्रविष्ट होने से वर्षा करते हैं तथा वे ही दो तीन से अधिक एकत्रित हुए ग्रह अमृतनाड़ी में स्थित होने पर अतिवृष्टि करते हैं।

३२४–अपनी नाड़ी में स्थित हुआ एक भी ग्रह उस नाड़ी का फल दे देता है। किन्तु मंगल सभी नाड़ियों में स्थित नाड़ी के अनुसार ही फल देता है।

३२५–सूर्य के चन्द्रादि हस्तान्त नक्षत्रमण्डल में स्थित होने पर ग्रहों के योग के कारण ही फल की विचित्रता मानी गई है।

३२६–गुरु, मंगल और सूर्य ये पुंग्रह कहलाते हैं, चन्द्रमा और शुक्र स्त्री ग्रह कहलाते हैं तथा शनि और बुध नपुंसक ग्रह कहलाते हैं। यह कल्पना ग्रहों की उष्णता तथा उनके शैत्य के कारण की गई है।

३२७–आपस में पुंग्रहों के योग से धूआँ स्त्री और पुंग्रहो के योग से वर्षा तथा केवल स्त्री ग्रहों के आपस के योग से छाया होती है।

३२८–जिस नाड़ी में क्रूर और सौम्य ग्रह मिले हुए स्थित हों उनमें जिस दिन चन्द्रमा का समागम हो उस दिन अच्छी वर्षा समझनी चाहिये।

३२९–एक नक्षत्र में यदि ग्रहों का संयोग हो तो उस काल में महावृष्टि समझनी चाहिये, जब तक कि चन्द्रमा के अंश उन ग्रहों के अंशों के तुल्य हों।

३३०–चन्द्रमा जब पापग्रहों से वा केवल सौम्य ग्रहों से विद्ध हो तब वर्षा तो साधारण समझनी चाहिये, किन्तु दुर्दिन (मेघाच्छादित आकाश) अवश्य होता है।

३३१–चन्द्रमा जिस ग्रह की नाड़ी में स्थित हो, उस ग्रह से यदि वह युक्त होजावै तथा क्षीण न दिखाई देता हो तो वह अवश्य वर्षा करता है। अर्थात् पूर्वकला (शुक्ल पक्ष की ६ से कृष्ण पक्ष की १० तक) का चन्द्रमा जिस नाड़ी में हो और उस नाड़ी का स्वामी चन्द्रमा के साथ बैठा हो वा उसे देखता हो तो वह अवश्य वर्षा करता है।

३३२से३३४–चन्द्रमा सौम्य एवं क्रूर ग्रहों के साथ यदि अमृतनाड़ी में हो तो एक, तीन वा सात दिन में दो, चार वा पाँच बार वर्षा करता है । यदि ऐसा ही चन्द्रमा जल नाड़ी में हो तो आधे दिन, पूरे दिन वा पाँच दिन तक भी वर्षा करता है । इसी प्रकार यदि चन्द्रमा क्रूर और सौम्य ग्रहों से युक्त हो और जल नाड़ी में स्थित हो तो इस योग से आधा दिन, १ प्रहर वा ३ दिन तक वर्षा होती है ।

३३५–अमृतादि ( अमृत, जल, नीर ) तीन नाड़ियों में यदि सब ग्रह आजावें तो क्रम से १८, १२, और ६ दिन तक वर्षा समझनी चाहिये । अर्थात् अमृत नाड़ी में हो तो १८ दिन, जल में हो तो १२ और नीर में हो तो ६ दिन वर्षा हो ।

३३६–मध्यनाड़ी में गये हुए सब ग्रह ३ दिन तक वर्षा करते हैं । शेष नाड़ियों में गये हुए सब ग्रह महावायु और दुष्टवृष्टि करते हैं ।

३३७–अधिक शुभ ग्रहों के योग में निर्जला भी नाड़ी जलदायिनी हो जाती है । तथा अधिक क्रूर योग में सजला भी नाड़ी दाह करने वाली बन जाती है अर्थात् निर्जल नाड़ियों में भी क्रूर ग्रहों की अपेक्षा सौम्य अधिक हों तो वर्षा होती है और सजल नाड़ियों में भी यदि सौम्य की अपेक्षा क्रूर अधिक हों तो वर्षा नहीं होती ।

३३८–दक्षिण की ३ नाड़ी में गये हुए केवल क्रूर ग्रह अनावृष्टि के सूचक होते हैं । और वे ही क्रूर ग्रह शुभ ग्रहों से युक्त हों और जलांश में अर्थात् उत्तर की तीन नाड़ियों में स्थित हों तो कुछ वर्षा करदेते हैं ।

३३९–जलनाड़ी में स्थित चन्द्र और शुक्र यदि क्रूर ग्रहों से युक्त हो जावें तो वे इस क्रूर-योग से अल्प वृष्टि ही करते हैं ।

३४०–जलनाड़ी में स्थित हुए बुध, शुक्र और बृहस्पति ये चन्द्रमा से युक्त होने पर उत्तम वर्षा करते हैं ।

३४१–जलनाड़ी में चन्द्रमा और मङ्गल आरूढ़ हों तो वे चन्द्रमा से समागम होने पर अच्छी वर्षा करते हैं ।

३४२–अयन ( गमन ) काल में, संक्रम ( मेल ) काल में, वक्रगतिकाल में, मार्गगति-काल में ( सीधी गति ) अस्त वा उदय काल में इन सभी दशाओं में जलनाड़ी में प्राप्त हुए सब ग्रह महावृष्टि करने वाले होते हैं ।

इति सप्तनाड़ीचक्रम् ।

## ग्रहभक्तिदेशाः ।

अनूपो जाङ्गलो मिश्रस्त्रिधा देशो निसर्गतः ।
बहूदकस्त्वनूपः स्याज्जाङ्गलोऽल्पजलो मतः ॥ ३४३ ॥
मिश्रः साधारणो देशः समशीतोष्णमारुतः ।
जाङ्गलानूपधर्माणाम धिक्यात् स द्विधा मतः ॥ ३४४ ॥
ग्रहयोगे समानेऽपि विषमा वृष्टिरिष्यते ।
अनूपादिषु देशेषु कालात् क्षेत्रे बलिष्ठता ॥ ३४५ ॥
अनूपे भूयसी वृष्टिः स्वल्पा वृष्टिस्तु जाङ्गले ।
मध्यमा मिश्रदेशे तु स्वभावैरेव जायते ॥ ३४६ ॥
दुर्बलोऽप्यशुभो योगो मरुदेशेऽत्ववृष्टिकृत् ।
प्रबलोऽप्यशुभो योगोऽनूपदेशेऽल्पवृष्टिकृत् ॥३४७॥
योगायोगफलं योगकर्ता जनयति ग्रहः ।
निजे देशे न सर्वत्र निजो देशः स्वभक्तिगः ॥३४८॥
पूर्वार्द्धो द्रविडानां च नर्मदाशोणयोरपि ।
यमुनादक्षिणप्रान्तस्तथैवेक्षुमती नदी ॥ ३४९ ॥
श्रीशैलविन्ध्यवद्देशाश्चम्पपुण्ड्राश्च चेदयः ।
कौशाम्बी मगधा औड्रा सुह्मा वङ्गाः कलिङ्गकाः॥३५०॥
प्राग्ज्योतिषाश्च शबराः किराता मेकला अपि ।
चीनवाह्लीकयवनकाम्बोजशकनीवृतः ॥ ३५१ ॥
सूर्यस्येन्दोस्तु दुर्गाद्रिद्वीपार्णवजलाशयाः ।
तुषाररोमस्त्रीराज्यभरुकच्छाश्च कोशलाः ॥ ३५२ ॥
मङ्गलस्य तु नासिक्यदण्डकाश्मककेरलाः ।
कुन्तलाः कौङ्कणा आन्ध्राः कान्तिरुत्तरपाण्डयकाः ।३५३।

पश्चार्द्धो द्रविडानां च नर्मदाशोणयोरपि ।
भीमरथ्याश्च निर्विन्ध्या शिप्रा वेत्रवती नदी ॥३५४॥

वेणा गोदावरी मन्दाकिनी तापी महानदी ।
पयोष्णी गोमती विन्ध्यमहेन्द्रमलयोपगाः ॥ ३५५ ॥

बुधस्य सिन्धुलोहित्यौ गङ्गा गम्भीरका रया ।
सरयूः कौशिकीप्रान्ताश्चित्रकूटो हिमालयः ॥ ३५६ ॥

गोमन्तशैलः सौराष्ट्रं मथुरापूर्वभागकः ।
गुरोस्तु सिन्धुपूर्वार्द्धो मथुरा पश्चिमार्द्धकः ॥ ३५७ ॥

विपाट्छतद्रूर्मत्स्यार्द्धमुदीच्या अर्जुनायनम् ।
सारस्वतं वाटधानं रमटाम्बष्ठपारताः ॥ ३५८ ॥

सुघ्नसौवीरभरतसाल्वत्रैगर्तपौरवाः ।
यौधेया अथ शुक्रस्य वितस्तेरावती नदी ॥ ३५९ ॥

चन्द्रभागा तक्षशिला गान्धारः पुष्कलावतम् ।
मालवोशीनरशिबिप्रस्थलं मार्तिकावतम् ॥ ३६० ॥

दशार्णाः कैकया देशा अथ सूर्यसुतस्य तु ।
वेदस्मृती च विदिशा चैत्रं विनशनोपगम् ॥ ३६१ ॥

प्रभासः पश्चिमा देशाः सौराष्ट्राभीरशूद्रकाः ।
आनर्तः पुष्करप्रान्तोऽर्बुदरैवतकाचलौ ॥ ३६२ ॥

अथ केतोः प्रदेशाः स्युर्मरुदुर्गाचलादयः ।
अवगाणश्वेतहूणपह्लवाश्चीनचोलकाः ॥ ३६३ ॥

शुभः शुभोदयः स्थाने शुभे युक्तेक्षितः शुभैः ।
यो ग्रहस्तस्य देशेषु सर्वानन्दः शुभः शुभः ॥ ३६४ ॥

३४३–प्रकृति से ही अनूप, जांगल और मिश्र ये तीन तरह के देश होतेहैं। इनमें अधिक जलवाला अनूप और अल्पजल वाला जांगल देश कहलाता है।

३४४–शीत, उष्ण और हवा की समानता वाला अर्थात् जिसमें ये तीनों साधारण रूप में समान हों वह मिश्र देश कहलाता है। यह मिश्र देश जांगल और अनूप देश के धर्मों की अधिकता से दो प्रकार का माना गया है।

३४५–समान ग्रह योग होने पर भी विषम वर्षा हो सकती है। क्योंकि अनूपादि देशों में काल के प्रभाव से क्षेत्र में बलिष्ठता हो जाती है।

३४६–अनूप देशों में अधिक वर्षा, जांगल देशों में अल्पवर्षा और मिश्रदेशों में मध्यम वर्षा स्वभाव से ही होजाती है।

३४७–मरुदेश मारवाड़ में दुर्बल अर्थात् मामूली भी अशुभयोग वर्षा को नष्ट कर देता है, और अनूप देश में प्रबल अर्थात् जबरदस्त अशुभ योग होने पर भी अल्पवर्षा तो हो ही जाती है।

३४८–योग करने वाला ग्रहयोग और अयोग अर्थात शुभ और अशुभ फल को अपने देश में ही पैदा करता है, सर्वत्र नहीं। अपनी भक्ति ( हिस्से ) का देश उस ग्रह का देश कहलाता है।

३४९–३५२–द्रविड़ देश का पूर्वार्द्ध, नर्मदा और शोण नदी का पूर्वार्द्ध, यमुना के दक्षिण का हिस्सा, इक्षुमती नदी, श्रीशैल तथा विन्ध्याचल के देश, चम्प, पुण्ड्र, चेदी देश, कौशाम्बी, मगध, औड्र, सुह्म, बंग, कलिङ्ग, प्रागज्योतिष, शबर, किरात, मेकल, चीन, बाह्लीक, यवन, काम्बोज और शक ये देश सूयभक्ति के समझने चाहिये।

दुर्ग, अद्रि, द्वीप, समुद्र जलाशय, तुषार, रोम, खोराज, भरुकच्छ और कोशल देश ये चन्द्रभक्ति के देश हैं।

३५३–३५५–नासिक, दण्डक, अश्मक, केरल, कुन्तल, कौंकण, आन्ध्र, काश्चि, उत्तर पाण्डय, द्रविड, नर्मदा, शोण नदी, और भीमरथी का पश्चिम अर्धभाग, निर्विन्ध्या, शिप्रा, वेत्रवती, वेणा, गोदावरी, मन्दाकिनी, तापी, महानदी, पयोष्णी, गोमती तथा विन्ध्य, महेन्द्र और मलयाचल की नदियाँ ये सब मंगल की भक्ति के हैं।

३५६-३६२–सिन्धु और लौहित्य, गंगा, गंभीरका, रया, सरयू और कौशिकी के प्रान्त के देश, तथा चित्रकूट, हिमालय और गोमन्तपर्वत, सौराष्ट्रदेश और मथुरा का पूर्व भाग ये सब बुध की भक्ति में आये हुए देश हैं।

सिन्धु का पूर्वार्द्ध, मथुरा का पश्चिमार्द्धभाग, तथा विराट् और शतद्रुनदी, मत्स्यदेश (जयपुर-प्रान्त) का आधा भाग, उदीच्यदेश, अर्जुनायन, सारस्वत, वाटधान, रमट, अम्बष्ठ, पारत स्त्रुघ्न, सौवीर भरत, साल्व, त्रैगर्त पौरव, और यौधेय ये देश बृहस्पति की भक्ति में आये हुए समझने चाहिये।

वितस्ता, इरावती और चन्द्रभागा नदी, तथा तक्षशिला, गान्धार, पुष्कलावत, मालवा, उशीनर, शिबि, प्रस्थल, मार्तिकावत, दशार्ण और कैकेय देश ये शुक्रभक्ति के देश हैं।

वेदस्मृति, विदिशा, कुरुक्षेत्र का समीपवर्ती देश, प्रभास क्षेत्र, पश्चिम देश, सौराष्ट्र आभीर, शूद्रकदेश तथा आनर्त्त से पुष्करप्रान्त तक के देश, अर्बुद (आबू) और रैवतक पर्वत ये शनि की भक्ति के देश समझने चाहिये।

३६३-मरुस्थल (मारवाड़) दुर्गाचलादिक, अवगाण, श्वेत हूणदेश तथा पल्लव चोल और चौलक देश ये सब केतु की भक्ति में आये हुए देश समझने चाहिये।

३६४-शुभस्थान में जिस ग्रह का शुभ उदय हुआ हो और शुभग्रह ही उसे देख रहे हों तो उस ग्रह की भक्ति के सब देशों में शुभ ही शुभ तथा आनन्द होता है।

इति ग्रहभक्तिदेशाधिकरणम्।

## उपसंहारः (ग्रन्थशेषः)।

इत्थं कादम्बिनी पूर्णा पूर्णपञ्चग्रहेन्दुभिः (वि. सं. १९५०)
प्रमिते वैक्रमे वर्षे तया तुष्यतु चर्षणिः ॥ ३६५ ॥
यस्य कादम्बिनी पूर्णाऽर्पिता विष्णुपदे परा।
तस्य वर्षोदयादायपूर्णानन्दपरम्परा ॥ ३६६ ॥
प्राचां निबन्धानालोक्य नूतनैः प्रतनैरपि।
श्लोकैः कादम्बिनीमेतामकरोन्मधुसूदनः ॥ ३६७ ॥
कादम्बिनीदर्शितेऽर्थे बहुत्र स्खलनं बहु।
संभाव्यते तथाप्यत्र नावहेला विधीयताम् ॥ ३६८ ॥
दुर्गे वैज्ञानिके मार्गे चरतां स्खलने क्वचित्।
त एवोपहसन्त्यत्राशक्तैर्जातु न यैर्गतम् ॥ ३६९ ॥

दुरूहखेटचरितविज्ञानविकटाध्वनि ।
नाप्राप्तं स्खलनं सोढ्वाऽप्यग्रे श्लाघ्या पुनर्गतिः ॥३७०॥
भूयो भूयः स्खलित्वापि मार्गो यैः प्रथमैः कृतः ।
कृतज्ञस्तत्पदं गत्वा तं मार्गं परिमार्जयेत् ॥ ३७१ ॥
ज्यौतिषं लोकमालेख्यमिति भुवनकोशकम् ।
पञ्चाङ्गानि विदन् सम्यङ्निमित्तज्ञानमश्नुते ॥ ३७२ ॥
निमित्तशास्त्रनिष्णातो निमित्तज्ञानचक्षुषा ।
त्रिनेत्रः पूज्यतां याति सर्वज्ञः स यथा शिवः ॥ ३७३॥
विद्यावाचस्पतिः श्रीमान् महार्घ्यमधुसूदनः ।
समीक्षाचक्रवर्तीमां समगृह्णात् परीक्षितुम् ॥ ३७४ ॥

३६५–इस प्रकार इस कादम्बिनी की रचना १९५० विक्रमीय सम्बत् में समाप्त हुई । इस रचना से ( चर्षणि ) विद्वज्जनसमूह प्रसन्न होवें ।

मूलपाठ में चर्षणीशब्द वैदिक है । इसका शब्दार्थ है–जनता । जैसे "आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्"। ( यजुर्वेद )

३६६–जिस व्यक्ति के विष्णुपद पर अर्थात् आकाश में खस्वस्तिक पर मेघमाला पूरी छायी हुई है उस व्यक्ति को वर्षा के उदय होने के कारण आमदनी से भरी हुई आनन्द की खूब परम्परा प्राप्त होती है । इसी तरह उत्कृष्टता पूर्ण कादम्बिनी नामक ग्रन्थ को जिसने भगवच्चरणारविन्द में अर्पित किया है उसको भी वर्षा के उदय होने से आमदनी से पूर्ण आनन्द की परम्परा प्राप्त होगी यह आशा की जाती है ।

३६७-प्राचीन ऋषियों के वृष्टिविद्यासम्बन्धी निबन्धों को देखकर नवीन और प्राचीन पद्यों से श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पति ने इस कादम्बिनी की रचना की है ।

३६८–इस कादम्बिनी के दिखाये हुए विषय में यद्यपि बहुत जगह त्रुटियाँ रहजाने की सम्भावना है, तथापि विद्वान लोग उपेक्षा न करके उन त्रुटियों को सुधार कर इसका अवश्य आलोचन करें ।

३६९–वैज्ञानिक कठिन मार्ग में चलने वालों का कहीं पर स्खलन हो ही जाता है, किन्तु उन्हें देखकर वही हँसते हैं जो अशक्त मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते ।

३७०-दुरूह ग्रह जहाँ विचरण करते हैं ऐसे विज्ञान के विकट मार्ग में स्खलन हो जाना अवश्यंभावी है। किन्तु इस स्खलन को सहकर आगे बढ़ने से फिर श्लाघनीय गति प्राप्त हो जाती है।

३७१-बारम्बार ठोकरें खाकर के भी जिन पूर्वाचार्यों के द्वारा मार्ग बना दिया गया है, बुद्धिमान् कृतज्ञ मनुष्य को चाहिये कि वह उस रास्ते से जाकर और भी उसे सुधार कर सरल बनावै ।

३७२-ज्योतिष, लोक, आलेख्य ( नकशा ) मिति ( क्षेत्रमिति ) और भुवनकोष इन पाँच अङ्गों को जानने वाला ही निमित्तशास्त्र को अच्छी तरह प्राप्त करता है ।

३७३-निमित्तशास्त्र में निष्णात ( कुशल ) मनुष्य निमित्तज्ञानरूप तीसरे नेत्र से त्रिनेत्र बन कर महादेव की तरह सर्वत्र समादरणीय होता है ।

३७४-समीक्षाचक्रवर्ती श्रीमान् महार्घ्य मधुसूदन विद्यावाचस्पति ने इस कादम्बिनी की परीक्षार्थ रचना की है।

समीक्षाचक्रवर्त्ति विद्वद्वर पं० श्री मधुसूदन शर्मा ओझा जी विद्यावाचस्पति के द्वारा विरचित कादम्बिनी नामक वृष्टिविद्या सम्बन्धी भावार्थबोधक भाषानुवाद ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

॥ इति ॥

# शुद्धिपत्रम्

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| सिद्धमश्नुते | सिद्धिमश्नुते | १ | ५ |
| प्रकाराः | प्रकारा | ४ | २ |
| ऽभ्रषु | ऽभ्रेषु | ४ | ५ |
| गजिते | गर्जिते | ४ | ९ |
| कातिक | कार्तिक | ८ | १६ |
| मा | ऽमा | २० | २४ |
| तिस्थ्या | तिथ्या | ३५ | १५ |
| चेन्निरभ्र | चेन्निरभ्रं | ३५ | २१ |
| सिंद्धये | सिद्धये | ४१ | २१ |
| दन्यया | दन्यथा | ४२ | ६ |
| वामराः | वासरः | ४२ | २३ |
| पुष्प | पुष्य | ४८ | १८ |
| गभं | गर्भ | ४८ | २० |
| नभ्र | नभ्रं | ४९ | २२ |
| शलभाशुकाः | शलभाःशुकाः | ५२ | २१ |
| षहि | बर्हि | ५८ | ५ |
| दधस्याप्यं | दधःस्थाप्यं | ५९ | ४ |
| उत्तास्थः | उत्तरस्थः | ५९ | १४ |
| मुत्तमम् | मुत्तमाम् | ६१ | १० |
| दौर्लं | दौर्लं | ६१ | २० |
| कातिके | कार्तिके | ६१ | १५ |
| श्रुत्वां | श्रुत्यां | ७१ | २१ |
| द्रोणाः | द्रोणा | ७२ | १२ |
| पुष्या जयोः | पुष्याऽजयोः | ७२ | २१ |
| बिन्दवः | बिन्दवः | ७३ | १ |
| रवावुष्मा | रवावूष्मा | ७३ | १५ |
| बुधेच्छया | बुधेच्छायो | ७१ | १५ |
| चतुर्थां | चतुर्थी | ७३ | १८ |
| ऽस्तु | ऽस्त | ७३ | १८ |
| दक्षिणस्या | दक्षिणस्यां | ७४ | ५ |
| वषति | वर्षति | ७५ | १७ |
| वृष्टिदुर्भिक्षं | वृष्टिर्दुर्भिक्षं | ७६ | ४ |
| उष्मा | ऊष्मा | ८५ | १८ |
| भवेत | भवेत् | ८६ | ५ |
| विदुपाते | बिन्दुपाते | ८६ | १३ |
| दक्षिणौ | दक्षिणो | ८६ | १७ |
| व्याधि | व्याधि | ८७ | ७ |
| सस्याया | सस्याय | ८७ | ६ |
| प्रवल | प्रबल | ८८ | १४ |
| शनैवृष्टौ | शनैर्वृष्टौ | ८८ | १६ |
| विन्दुपाते | बिन्दुपाते | ८८ | १७ |
| स्वाति | स्वाती | ८९ | १४ |
| बर्धयेत् | वर्धयेत | ८९ | १५ |
| आद्या | भाद्रया | ९० | ६ |
| सम्वत्सरं | सम्बत्सरं | ९१ | १ |
| माग्नि | मग्नि | ९३ | ११ |
| निहत्येषा | निहत्यैषा | ९४ | १० |
| वीजं | बीजं | ९६ | ४ |
| तादिश्य | तद्दिश्य | ९६ | १० |
| भ्रात | भ्रात | ९६ | २२ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| सुएडा | शुएडा | ६७ | ३ |
| रोहिणी | रोहिणीं | ९७ | १६ |
| द्वादशी | द्वादशी | ६८ | २२ |
| कृष्णै | कृष्णे | ११५ | १५ |
| प्रतिपद् | प्रतिपत् | १२० | १२ |
| विगलता | विगलिता | १२८ | १७ |
| मवेश | प्रवेश | १३१ | १८ |
| प्रवषति | प्रवर्षति | १३१ | २१ |
| भवेदुत्पातको | भवेदुत्पादको | १३६ | १७ |
| बसन्तः | वसन्ते | १४१ | ७ |
| पूवजः | पूर्वजः | १४१ | १४ |
| सस्य | सस्यं | १४१ | २१ |
| पश्चिमतः | पश्चिमतो | १४२ | ५ |
| धराधगे | धाराधरो | १४२ | १२ |
| सस्थाना | संस्थाना | १४३ | १६ |
| ददिणोत्था | दक्षिणोत्था | १४५ | १६ |
| स्विष्टयोनिषु | स्त्विष्टयोनिषु | १४७ | ३ |
| तीव्रार्क | तीव्राकं | १४८ | ६ |
| गर्भरूपा | गर्भरूपा | १४८ | २२ |
| सवलाहकम् | सबलाहकम् | १५६ | ७ |
| सैन | सैन्य | १५६ | १६ |
| यातिः | याति | १६० | ४ |
| नाडिकद्वयी | नाडिकाद्वयी | १६३ | ५ |
| पुराकरा | पुराकारा | १६४ | १६ |
| रक्ताः | रक्ता | १६५ | १५ |
| विघ्नति | विघ्नन्ति | १६६ | १९ |
| बज्रं | वज्रं | १७७ | ८ |
| संकासा | संकाशा | १७७ | १७ |
| सूर्यविम्बगाः | सूर्यबिम्बगा | १८१ | ६ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| स्त्र्यस्त्र्याः | स्त्र्यस्त्रा | १८१ | १८ |
| अचिष्मानग्नि | अर्चिष्मानग्नि | १८२ | ११ |
| कलिंगोश्चान्यत्र | कलिङ्गाश्चान्यत्र | १८२ | १८ |
| बङ्गजान् | वङ्गजान् | १८२ | २३ |
| बङ्गाश्च | वङ्गाश्च | १८३ | ११ |
| वाल्हीक | बाह्लीक | १८३ | १२ |
| ऽशुभा | ऽशुभाः | १८३ | १६ |
| अघत्वे | अद्यत्वे | १८४ | २४ |
| भरण्यते | भरण्यन्ते | १८५ | ६ |
| स्वत्याद्ये | स्वात्याद्या | १८७ | ६ |
| सहस्र | सहस्रं | १८७ | २१ |
| मेक | मेकं | १८७ | २१ |
| मृत्युदा | मृत्युदाः | १८८ | ३ |
| विसर्पका | विसर्पकाः | १८८ | ४ |
| स्तीव्र | स्तीव्र | १८८ | २० |
| एकपंचाशद् | एकपञ्चाशत् | १८६ | १ |
| पांडवः | पाण्डवाः | १८६ | १ |
| अग्निप्रभा | अग्निप्रभाः | १८६ | ४ |
| चन्द्रं | चन्द्रे | १८६ | ९ |
| भव | भवे | १९० | ६ |
| आष्टा | अष्टा | १९१ | ३ |
| यज्ञोत्सव | यज्ञोत्सवं | १९२ | १५ |
| प्रोष्या | प्रोष्य | १९२ | २३ |
| वासा | वसा | १९३ | १ |
| ऽसाया | ऽमाया | १९३ | ६ |
| संवतः | संवर्तः | १९४ | ८ |
| प्रकापनम् | प्रकोपनम् | १९४ | १२ |
| ध्रुवकतुः | ध्रुवकेतुः | १९४ | १६ |
| चैद्येश्वकैकयौ | चैद्येशकैकयौ | १९५ | ७ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| बंगाण | वगाण | १६५ | १२ |
| कुलहिभाः | कुलाहिभाः | १६७ | १७ |
| बंगांग | वङ्गाङ्ग | १६८ | २ |
| चैदि | चेदि | १६८ | ६ |
| मन्योयं | मन्योन्य | १६८ | ७ |
| षष्ठि | षष्टि | २१८ | ६ |
| स्याद्वहूदकम् | स्याद्बहूदकम् | २२१ | १८ |
| बृष्टि | वृष्टि | २२१ | २३ |
| रक्रूरै | रक्रूरैः | २२२ | ५ |
| बापि | वापि | २२२ | ११ |
| लग्ननायः | लग्ननाथः | २२२ | १३ |
| महावृष्टया | महावृष्टया | २२२ | १६ |
| चतुथर्थौ | चतुर्थस्थौ | २२२ | १७ |
| चातुर्थतः | चतुर्थतः | २२३ | ७ |
| वलं | बलं | २२३ | ८ |
| शुक्राद् | शुक्रात् | २२४ | ५ |
| वर्षा | वर्षां | २२६ | १८ |
| अत्यभ्र | अत्यभ्रं | २२६ | २२ |
| मुदीद्यन्ते | मुदीच्यन्ते | २३४ | २१ |
| ऽत्युष्मणा | ऽत्यूष्मणा | २३५ | १४ |
| ध्रुव | ध्रुवं | २३५ | १९ |
| नैऋतं | नैऋतः | २३८ | २३ |
| रात्रो | रात्रौ | २३९ | २ |
| रात्रो | रात्रौ | २३९ | ३ |
| वायुश्चति | वायुश्चरति | २३९ | ७ |
| यावत्नैर्ऋतो | यावन्नैर्ऋतो | २३९ | १६ |
| बिन्दवः | बिन्दवः | २३९ | १७ |
| रोच्छ | रोऽच्छ | २४२ | ६ |
| वहि | बहि | २४२ | ६ |
| तदुपोद्वलकाः | तदुपोद्बलकाः | २४३ | २ |
| स्वाभावादिति | स्वभावादिति | २४३ | ४ |
| अतिवारगताः | अतिचारगताः | २४५ | २३ |
| शताभिषज्ज्येष्ठा | शतभिषग्ज्येष्ठा | २४७ | २० |
| पुर्बाषाढ | पूर्वाषाढ | २४७ | २२ |
| बापि | वापि | २५७ | ६ |
| सिहे | सिंहे | २६२ | २ |
| ध्रुवमू | ध्रुवम् | २६५ | २१ |
| दुभिक्ष | दुर्भिक्ष | २६६ | १ |
| प्रवषति | प्रवर्षति | २६६ | ७ |
| वायुनो | वायुना | २६७ | ३ |
| स्तरका | स्तारका | २६९ | ५ |
| वाण | बाण | २७३ | २२ |
| दक्सूत्रसत्या | दृक्सूत्रसत्या | २७५ | २१ |
| सहयौगिता | सहयोगिता | २७९ | २५ |
| अदृष्टवयुतौ | अदृष्टावयुतौ | २८१ | २२ |
| अदृष्टवयुतौ | अदृष्टावयुतौ | २८१ | २४ |
| वृष्टि | वृष्टि | २८२ | १६ |
| मौमे | भौमे | २८६ | ४ |
| वृष्टिदुभिक्ष | वृष्टिदुर्भिक्ष | २९१ | २० |
| वृष्टि | वृष्टि | २९३ | २१ |
| धनिष्ठतो | धनिष्ठातो | ३०० | १० |
| तन्नड्या | तन्नाड्या | ३०० | ११ |
| क्रर | क्रूर | ३०१ | १५ |
| क्रमात् | क्रमाद् | ३०१ | १८ |
| अपने | अयने | ३०२ | ६ |
| धर्माणामधिक्यात् | धर्माणामाधिक्यात् | ३०५ | ५ |

॥ श्रीः ॥

# समीक्षाचक्रवर्ती स्वर्गीय विद्वद्वर पं० मधुसूदनजी ओझा विद्यावाचस्पति के मुद्रित ग्रन्थों का—

## सूचीपत्र

| नाम | ❀ विवरण ❀ | मूल्य |
|---|---|---|
| १-इन्द्रविजय-- | में भौम, दिव्य और शारीरिक तीनों त्रिलोकियों का वर्णन है और (द्वयादवैदेवा) इस श्रुति के प्रमाण से पृथ्वी के ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदिकों का त्रिपुरासुरादि पृथ्वी के असुरों के साथ वेदों में उल्लिखित १२ महासंग्रामों का निरूपण है। तथा अनेक प्रमाणों से सिंहलद्वीप के लङ्का होने के भ्रम का खण्डन किया गया है और दिव्यास्त्रों तथा नाना प्रकार की औषधियों का विज्ञान बतलाया गया है। पूर्वकाल के इतिहास को जानने की इच्छा रखने वालों के लिये यह अति उपयोगी है। | ३) |
| गीताविज्ञानभाष्य- | में श्रीमद्भगवतगीता का प्रतिपाद्य क्या है इसे नवीन ढंग से सिद्ध किया है। गीतामें चार विद्या, २४ उपनिषद् और १६० उपदेशों का विभाग दिखाया है। भगवान् कृष्ण के अवतार होने का रहस्य समझाया गया है। | |
| २-प्रथमकाण्डः- | | २) |
| ३-द्वितीयकाण्डः- | | २) |
| शारीरकविज्ञानभाष्य- | में ब्रह्मसूत्र का व्याख्यारूप शंकर, रामानुज वल्लभादि मतों का और कहीं २ अपने मत का प्रदर्शन पूर्वक वैज्ञानिक रीति से विवेचन किया है। | |
| ४-प्रथमभागः- | | १॥) |
| ५-द्वितीयभागः- | | १) |
| ६-सदसद्वाद— | में पहले सत् पदार्थ ही था अथवा असत् से सत् उत्पन्न होता है, अथवा उस समय जब सृष्टि हुई न सत् था न असत् था इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण पर सत्, असत् और सदसत् इन तीन सृष्टि तत्त्वों का वैज्ञानिक मत से निरूपण | |

| नाम | * विवरण * | मूल्य |
|---|---|---|
| | किया गया है। और प्रसङ्गवश जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मोह, मूर्च्छा, मृत्यु और मोक्ष इस प्रकार की जीवात्मा की ७ अवस्थाओं के वर्णन हैं। | ॥) |
| ७-अपरवाद | —में " वागेवेदं सर्वम् " इस सिद्धान्त के अनुसार वाक् (शब्द) से सृष्टि का होना मानकर विवेचन किया गया है। | ।) |
| ८-अहोरात्रवाद | -इस ग्रन्थ में दैवी और आसुरी संपत्ति के मूलभूत प्रकाश और अन्धकार के परस्पर योग से सारी सृष्टि की उत्पत्ति होती है इस प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार दिन और रात ये दो सृष्टि तत्त्व हैं ये प्रतिपादन किया गया है। और यह पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ फिरती है और सूर्य बृहती-छन्द अर्थात् भूमध्य रेखा के समीपवर्ती विषुवद्वृत्त पर स्थित होकर तपता है इस वैदिक सिद्धान्त को दिखलाकर मूलात्मा, हंसात्मा और शिवात्मा इन तीन भेदों में विभक्त तीनों आत्माओं का सुविशद् निरूपण है। | ॥) |
| ९-संशयतदुच्छेदवाद | -में जन्म, मरण, सुख, दुःख आदि जोड़ों को आत्मा भोगती है या नहीं भोगती है तथा यह आत्मा ससङ्ग है वा निःसङ्ग है, मरने के पीछे आत्मा की सत्ता रहती है या नहीं इत्यादि नाना प्रकार के ऐसे प्रश्नो का कि जिनका समाधान नहीं होता है उन सब का निरूपण कर वैज्ञानिक रीति से उत्तर दिया गया है। | १) |
| १०-दशवादरहस्य | -में जैसे आज कल षड्दर्शन हैं वैसे वैदिककाल में दशवाद प्रचलित थे उनका इतिहास और संक्षिप्त विवेचन है। | ॥) |
| ११-देवतानिवित् | -में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन भेदों में विभक्त चारों वेदों में प्रतिपादन किये हुये देवताओं का अच्छे प्रकार से ज्ञान कराया गया है। प्रसङ्गवश अच्छी बुरी गति का विज्ञान तथा पितरों का निरूपण और आत्मषोड़शी का निरूपण किया गया है। | १) |
| १२-यज्ञमधुसूदन स्मार्तकुण्डाध्याय | -में यज्ञ के कुण्ड, मण्डप आदिकों के बनाने का विषय सचित्र प्रमाण पूर्वक वर्णित है। | १) |
| १३-यज्ञमधुसूदन उपकरणाध्याय | -यह यज्ञविटप, यज्ञ, कर्मानुक्रमणिका इन तीन अध्यायों में विभक्त हैं। इनमें क्रम से यज्ञ के पदार्थों का, यज्ञ के भेदों का, याज्ञिक कर्मों के क्रमों का सचित्र वर्णन है। | १) |

| नाम | * विवरण * | मूल्य |
|---|---|---|
| १४-अत्रिख्याति- | में दिव्य, अत्रि प्राण के रहस्य का प्रतिपादन कर उस प्राण से चन्द्रमा की उत्पत्ति कैसे हुई इसका निरूपण किया गया है और बुध तथा इला आदि के चरित्रों का वर्णन है। | १) |
| १५-वैदिककोष-- | में वैदिकनिघण्टु के शब्दों का श्लोक बद्ध संग्रह है वेद के अर्थ जाननेवालों को अतिउपयुक्त है। | ॥) |
| १६-पितृसमीक्षा- | में क्रमशः पितृतत्त्व का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। | ॥) |
| १७-विज्ञानविद्युत्- | में 'चतुष्टयं वा सर्वं' इस श्रुति की व्याख्या है वैदिक विज्ञान में प्रविष्ट होनेवाले व्यक्तियों के बोधसौकर्य के लिये वैदिक-परिभाषायें सरलता से समझाई गई हैं। | ॥) |
| १८-ऐतरेयोपनिषद्- | में प्राचीन ग्रन्थों के इन वैज्ञानिक भागों को संकलित करके उत्तम रूप से संपादित किये गये हैं। जिससे इसका अभिप्राय भली प्रकार समझा जासके। | ।) |
| १९-कौषीतकोपनिषद् | | ।≈ |
| २०-ब्रह्मविज्ञानप्रवेशिका- | में ब्रह्मविज्ञान का प्रारम्भिक-परिभाषा हिन्दी में समझाया गया है। | ॥) |
| २१-कादम्बिनी- | में वर्षा सम्बन्धी सभी विषय बहुत ही स्पष्ट और सरलता से बताये गये हैं। वर्षा के गर्भधारण, १२ महीनों के प्रत्येक दिन के लक्षण तथा योग, गर्भ आदि के अच्छे शकुन होते हुए भी वर्षा के न होने का कारण और अनेक प्रकार के प्रश्नों से शीघ्र वर्षा का होना जाना जाय ऐसी वर्षा के जानने के लिये बहुतसी बातें लिखी गई हैं। भिन्न २ देशों के सुभिक्ष दुर्भिक्ष आदि के विषय में भी लिखा गया है प्रसंगवश भूकम्प, उल्कापात आदि कई विषयों का भी कारण बताया गया है। | ४) |
| | | २३॥≈ |

इनके अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थ विभिन्न प्रेसों में छप रहे हैं, जो शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं।

पुस्तक प्राप्तिस्थान—

मैनेजर,

श्री मधुसूदन वैदिक-विज्ञान प्रकाशक कार्यालय,
विद्याधर रोड़ जयपुर सिटी
( राजपूताना )

Printed by D. N. MENWAL,
AT THE
HARI MOHAN PRINTING WORKS,
JAIPUR.